॥ श्री भुवनेश्वरी विजयतेतराम् ॥

॥ योग तरंगिणी संहिता ॥

मूल मात्रा

श्री त्रिमल्ल भट्ट विरचिता

आचार्यश्री श्रीचरणतीर्थ महाराजेन संशोधिता

॥ आयुर्वेद रहस्य-ग्रन्थमाला पुस्तक १२६ द्वारा प्रकाशिता ॥

प्रकाशक

रसशाला औषधाश्रम,
गोंडल - सौराष्ट्र.

प्रथमावृत्तिः ।

वि. संवत २०१२ — आश्विनः ।

मूल्य : रु. ६-०-०

इस्वी १९५५ — नवम्बर

Yoga Tarangini Samhita

Mula-Matra

by

Shri Trimalla Bhatt

Edited by

Acharya Shri Shricharantirth Maharaj

"Ayurveda Rahasya" Series No. 136

Published by

THE RASASHALA AUSHADHASHRAM,

GONDAL–Saurashtra (India)

FIRST EDITION

V. S. 2012 Ashwin | **Price : Rs. 6-0-0** | 1956 A. D. November

॥ योग तरंगिणी संहिता ॥

मूल मात्रा

श्री त्रिमल्ल भट्ट विरचिता

आचार्यश्री श्रीचरणतीर्थ महाराजेन संशोधिता

॥ आयुर्वेद रहस्य-ग्रन्थमाला पुस्तक १२६ द्वारा प्रकाशिता ॥

प्रकाशक

रसशाला औषधाश्रम,

गोंडल - सौराष्ट्र.

प्रथमावृत्तिः ।

वि. संवत २०१२
आश्विनः ।

इस्वी १९५६
नवम्बर

माननीय श्रीमान मोरारजी भाई देशाई साहब

बम्बई स्टेटके भू. प्रधान तथा विद्यमान भारत सरकारके महा उद्योगके प्रधान

" आयुर्वेदके लिये मुझे गौरव है। भारतके लाखों गांव प्रदेशके निवासी करोडों मनुष्योंको नीरोगी बनानेवाली यह प्राचीन विद्या है। आयुर्वेदके आधार पर जीवन बितानेको प्रत्येक प्रजाजनको मैं आग्रह करता हूं।" महात्मा गांधीजी, गोंडल
ता. २७ वी जनवरी १९१५

॥ अर्पण पत्रिका ॥

आयुर्वेदके लिये २७ वी जनवरी १९१५ को पुण्यश्लोक महात्मा गांधीजीने उच्चारित उपर्युक्त वचनोंको सत्य बनानेके मार्गमें अग्रसर और मनसा वाचा कर्मणा आयुर्वेदका कल्याण करनेको उत्सुक माननीय श्रीमान मोरारजी भाई देशाई साहबको यह ग्रन्थ सस्नेह समर्पित करते हैं।

रसशाला औषधाश्रम, गोंडल—सौराष्ट.

योग तरंगिणि संहिता

प्रथम पत्र पानुं

योग तरंगिणी संहिता

छेलुं पत्र १०६। जेमां लेखक मिति संवत १८२३ चैत्र वदी १ छे.

भूमिका

॥ योग तरंगिणी संहिता ॥

यह ग्रन्थ छोटा होने पर भी उपचारके लिये उत्तम है । इस ग्रन्थका रचयिता श्री त्रिमल्ल भट्टने प्रारम्भमें अपना परिचय देते हुए लिखा है कि वे आपस्तम्ब शाखाके ब्राह्मण थे और उनके कुटुम्बका उपनाम अब्दखेल था । वह श्री सिंगण भट्टके पुत्र थे । श्री सिंगण भट्ट तैलंग देशके काकरल्ली नामक ग्रामके निवासी थे । वे तेजस्वी शंकरभक्त, बहुतसे राजामहाराजाओंमें सम्मान प्राप्त और भारतवर्षमें चारों ओर जिनकी कीर्ति फैली हुई थी ऐसे थे । वे काशीमें निवास करते थे । और वहा हि उनको तीन पुत्र हुए थे । सबसे बडा त्रिमल्ल भट्ट, दूसरा राम भट्ट तीसरा गोप भट्ट । इनमें त्रिमल्ल भट्टने बहुत ग्रन्थोंसे अनुभव प्राप्त कर यह लघु योगतरंगिणी संहिता रची है ।

श्री त्रीमल्ल भट्टका जन्म काशीमें होनेसे और वहा ही उन्होने अभ्यास कर वैद्यके नाते अपना व्यवसाय चलाया था । काशीमें देशके भिन्न प्रान्तमें रहनेवाले विद्वान वैद्योंका आना जाना होना स्वाभाविक था । उनके संपर्कसे और अनेक हस्तलिखित ग्रन्थोंके अवलोकनका सुयोग मिलनेसे उनका वैद्यकीय अभ्यास पूर्ण हुआ था । यह पंडित संस्कृतके भी अच्छे विद्वान थे ऐसा इस ग्रन्थकी रचना शैलीसे मालूम होता है । श्री त्रिमल्ल भट्ट सोलहवी शताब्दीके मध्यमें हुआ था ऐसा योगतरंगिणीके हस्तलिखित प्रतोंके आधारसे मान सकते हैं । हमारी प्रत २२३ वर्षकी पुरानी है, और पंडित रघुवंक गुरुनाथ कालेकी हस्तलिखित प्रतिको ४१७ वर्ष हो गये है ।

एक अंग्रेज रीसर्च स्कोलरने इस ग्रन्थकारको इस्वीसन १७५१में अर्थात् संवत १८०७में होनेका लिखा है । इसके आधारसे गोंडलके स्व महाराजा श्री भगवतसिंहजी साहेबने अपने ग्रन्थ History of Aryan Medical Science में योगतरंगिणी कारका समय इ. स १७५१ देनेकी भूल की थी । हस्तलिखित ग्रन्थ देखनेसे उन्होने अपनी भूल अंग्रेज विद्वान प्रेरित होनेका स्वीकार किया था ।

पश्चिमके विद्वान और उनके आधारको ब्रह्मवाक्य माननेवाले हमारे हिन्दी विद्वान लोग प्राचीन विद्वानों और ग्रन्थोंकी काल गणनामें बहुत सी गलतियां करते है इस बातके बहुतसे इस प्रकार के दृष्टान्त दिये जा सकते है ।

इस ग्रन्थमे नीचे लिखे ग्रन्थो से इस ग्रन्थकारने कई जगह आधार लिया है। अश्विनी संहिता अथवा आश्विन संहिता, कल्पतरु, कृष्णात्रेय, चक्रदत्त, चरक, चिकित्साकलिका, बौद्धसर्वस्व, मतिमुकुर, योगशत, योगरत्नावलि, रसरत्नप्रदीप, रसेन्द्रचिंतामणि, राजमार्तंड, रुग्विनिश्चय, वृन्द, वैद्यदर्शन, वैद्यादर्श, वैद्यालंकार, शार्ङ्गधर संहिता, सारसंग्रह, सुश्रुत आदि ग्रन्थोके अवतरणो–उद्धरणोसे ज्ञात होता है कि, इस ग्रन्थकारके अस्तित्वमें अर्थात् ४०० साल पहिले आयुर्वेदके बहुतसे ग्रन्थोंका अस्तित्व था । जिनमेंसे कई ग्रन्थ आजकल उपलब्ध नहीं होते । यदि इन और अन्य आयुर्वेदिक ग्रन्थोंके बारेमें खोज की जाय तो बहुतसे ग्रन्थ बहुत स्थानोंसे आज भी प्राप्त हो सकते है जो हमारे ध्यानमें है ।

इस ग्रन्थकारने योगतरंगिणीके अलावा दूसरे भी ग्रन्थ रचे हो यह शक्य है । श्री त्रिमल्ल भट्ट रचित योगतरंगिणी दो प्रकारकी है—बृहत् और लघु । दोनों प्रकारकी हस्तलिखित प्रतियां श्री भुवनेश्वरी ग्रन्थभंडारमें विद्यमान है । हमने प्रकाशित की हुइ इस **योगतरंगिणी संहिताकी** हस्तप्रतमें वि. सं. १८२३ चैत्र वदी प्रतिपदाका लेखन काल दिया है, इसके १०६ पत्रा है और **बृहद्योग तरंगिणी संहिताकी** हस्तप्रतमें वि. सं.१७९१ श्रावण सुदि पौर्णमासी शनिवारका लेखनकाल है जिसके २५६ पत्र है। हमने मुद्रित की हुइ इस योगतरंगिणीके प्रारंभके और अन्तके पत्रोंका ब्लोक इस ग्रन्थमें दिये गये है। हमने उपर किये हुये उल्लेखानुसार हमारे स्वर्गस्थ मित्र श्री त्र्यंबक गुरुनाथ श्री काले के पास शाके १४६१ अर्थात् विक्रम १५९६की हस्तप्रत थी । जो श्री कालेकी आयुर्वेदकी प्रायः ५५ हस्तलिखित पुस्तकें हमारे स्वर्गस्थ मित्र श्री जादवजी त्रिकमजी आचार्य के पास रही थी उनमे यह बृहत् योगतरंगिणी भी थी । श्री कालेकी इस हस्तप्रतिके बारेमें उन्हे पूछने पर श्री जादवजीभाईने किसी विद्वानको बांचनेके लिये देनेका और वहांसे वापस नहीं आनेका लिखा था । इस कारण विशेष हस्तलिखित प्रतका उपयोग इस प्रकाशनमें कर नहीं पाया । और श्री भुवनेश्वरी ग्रन्थ भण्डारकी वि. सं. १८२३ सालकी हस्तलिखित प्रतको आधार ग्रन्थ रख कर यह ग्रन्थ मुद्रित किया है ।

श्री भुवनेश्वरी ग्रन्थ भंडारकी श्री त्रिमल्ल भट्ट रचित बृहत् योगतरंगिणीके आधारसे हम आगे बृहत् योगतरंगिणी भी प्रगट करना चाहते है, परंतु हमारे पास उपर लिखे अनुसार संवत १७९१ सालकी एक ही हस्तप्रत है । ऐसा बड़ा ग्रन्थ प्रसिद्ध करनेके पहिले तीन चार हस्तलिखित प्रतोंका मिलान करना आवश्यक है । बृहत् योगतरंगिणी पूनाके आनंदाश्रम प्रेसने ४६ सालके पहिले अर्थात् इ. स. १९१३–१४ में दो भागमें प्रगट की थी । परंतु उस छपी हुई प्रतके साथ हमारी

हस्तलिखित प्रतका मिलान करनेसे बहुतसे पाठभेद और न्यूनाधिकता दृष्टिगोचर होती है। इस लिये यह बडा ग्रन्थ प्रसिद्ध करनेके पहिले तीन चार हस्तलिखित प्रतियां प्राप्त करनेका प्रयत्न हम कर रहे है।

यह ग्रन्थ रोगोपचारके लिये बहुत ही उत्तम प्रमाणभूत और अनुभवसिद्ध है। इस ग्रन्थकी काव्य रचना भी उत्तम कोटि की है। भाषा सरल होनेपर भी कई औषधीय घटक द्रव्य और क्रियाएं कठिन है, समझमें लानेमें कष्ट होता है। इसलिये इस ग्रन्थका हिंदी या गुजराती भाषांतर करनेका बहुत स्थानोसे और वैद्योंकी ओरसे आग्रह होता रहा हैं। केवल रसशाला प्रिन्टिंग प्रेस रसशालाके काममें ही अधिक प्रवृत्त रहनेसे ऐसे मौलिक ग्रन्थोके प्रकाशनमें बहुत विलंब हुआ करता है। इसका दृष्टान्त रसोद्धार तंत्र है। जिसकी गुजराती १९ आवृत्ति प्रगट हो चूकी है और इसको संस्कृत हिंदी अथवा अंग्रेजीमें प्रसिद्ध करनेकी मांग बहुत वर्षोंसे होने पर भी अबतक हम इसका प्रकाशन गुजरातीके सिवाय अन्य भाषाओंमें नहीं कर सके।

आजतक रसशालाकी ओरसे करीब १२५ छोटी बडी पुस्तकें प्रगट की है। जिनमें आयुर्वेदकी भी ३५–४० पुस्तके है। इस प्रकार यह योगतरंगिणी संहिता नामक उत्तम ग्रन्थ भी हमारे ग्राहकवर्ग और हितेच्छुओंकी सेवामें सादर करते है।

रसशाला औषधाश्रम,
गोंडल
कार्तिक शुक्ल २
संवत २०१३

निवेदक
वैद्य माहेश्वर जी. व्यास

॥ योग तरंगिणी संहिता ॥

॥ विषयसूचिः ॥

॥ योग तरंगिणी संहिता ॥

॥ अकारादिक्रमेण विषयसूचिः ॥

फ

ब

य

र

ल

विषयः	पृष्ठं
व	

॥ अथ श्री त्रिमल भट्ट ग्रथिता ॥

॥ योग तरंगिणी संहिता ॥

॥ रस संहिता ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

अथ प्रथमस्तरंगः ॥१॥

मंगलम् ।

कपोलविगलद्धोलदानपानीयपिच्छलम् ॥
भ्रमद्भ्रमरझंकारं वन्देहं द्विरदाननम् ॥१॥

वंशवर्णनं ।

आपस्तंबस्याब्दखेलोपनाम्नो
धाम्नो भासां कांडपल्लीभवस्य ॥
तैलंगस्य प्रीतिभाजो गिरीशे
काशीवासं कुर्वतो भूरिकीर्त्तेः ॥२॥

राज्ञां मान्यस्यात्र रिंगणभट्ट-
स्यासीत्पुत्रो वल्लभो वेदविद्यः ॥
तस्यासीरन्सूनवोऽमी त्रिमल्लो
रामो गोपश्चेति नाम्ना त्रयोऽपि ॥३॥

तेषु त्रिमल्लभट्टेन नाम्ना योगतरंगिणी ॥
चिकित्सा लिख्यते भूरिग्रन्थेभ्यः स्वपरार्थिना ॥४॥

अतो मम श्रमस्तोमश्चिकित्सायां जयत्ययम् ॥
संक्षिप्ता रसयुक्तेयं संहिता भुवि जृंभताम् ॥५॥

चिकित्साफलं ।

देहादुत्पद्यते पुंसः पुरुषार्थचतुष्टयम् ॥
न नीरोगः स कुत्रापि तच्छान्तिस्तु चिकित्सया ॥६॥

क्वचिद्धर्मं क्वचिन्मैत्री क्वचिदर्थः क्वचिद्यशः ॥
कर्माभ्यासः क्वचिच्चेति चिकित्सा नास्ति निष्फला॥७॥

रोगपंकार्णवे मग्नं यः समुद्धरते नरम् ॥
कस्तेन न कृतो धर्मः कां च पूजा न सोऽर्हति ॥८॥

जन्मान्तरकृतं पापं व्याधिरूपेण बाधते ॥
तच्छांतिरौषधैर्दानैर्जपहोमसुरार्चनैः ॥९॥

हारीतात्

अष्टांग ।

शल्यं शालाक्यमगदं कुमारभरणं तथा ॥
कायभूतक्रिया वाजीकरणं च रसायनम् ॥१०॥

चिकित्सा पाद ।

वैद्यो व्याध्युपसृष्टश्च भेषजं परिचारकः ॥
एते पादाश्चिकित्सायाः कर्मसाधनहेतवः ॥११॥

वैद्य ।

ज्ञातशास्त्रः शुचिः शूरो लघुहस्तः कृतोद्यमः ॥
दृष्टकर्मा कृती धर्मी स भिषक्पाद उच्यते ॥१२॥

रोगी ।

आढ्यो रोगी भिषग्वश्यो दक्षिणो ज्ञापको रुजाम् ॥
असर्वलक्षणः पथ्यशीलः पादोऽपरो मतः ॥१३॥

भेषज ।

दोषकालवयोदेशमात्राप्रकृतिरेतसाम् ॥
सात्म्यं यद्भेषजं तत्स्यात्परः पादश्चिकित्सिते ॥१४॥

परिचारक ।

अवद्याशी जितस्वप्नो हितो धर्मार्थकोविदः ॥
बहुदर्शी कर्मदक्षः पादः स्यात्परिचारकः ॥१५॥

त्रयो दोषाः ।

वातः पित्तं कफश्चेति त्रयो दोषाः समासतः ॥
विकृताऽविकृता देहं घ्नन्ति ते वर्धयन्ति च ॥१६॥

चयप्रकोपोपशमा वायोर्ग्रीष्मादिषु त्रिषु ॥
वर्षादिषु च पित्तस्य श्लेष्मणः शिशिरादिषु ॥१७॥

ते व्यापिनोपि हृन्नाभ्योरधोमध्योर्ध्वसंस्थिताः ॥
वयोहोरात्रभुक्तानामंतमध्यादिगाः क्रमात् ॥१८॥

देशः ।

जांगलं वातभूयिष्ठमनूपं च कफोल्बणम् ॥
साधारणं सममलं त्रिधा भूदेशमादिशेत् ॥१९॥

मात्रा ।

मात्रा चतुर्विधा ज्ञेया समा मंदा च तीक्ष्णका ॥
विषमा चेति संप्रोक्ता तत्तद्वह्निविशेषतः ॥२०॥

जन्म ।

शुक्रार्त्तवस्थैर्जन्मादौ विषेणेव विषक्रिमेः ॥
तैः स्युः प्रकृतयस्तिस्रो हीनमध्योत्तमाः पृथक् ॥२१॥

मलः शुक्रं चिकित्सा योगः ।

मलायत्तं बलं पुंसां शुक्रायत्तं तु जीवितम् ॥
अतश्चिकित्सितं कार्यं संरक्ष्य मलरेतसी ॥२२॥

जातमात्रश्चिकित्स्यस्तु नोपेक्ष्योऽल्पतया गदः ॥
वह्निशत्रुविषैस्तुल्यः स्वल्पोपि विकरोत्ययम् ॥२३॥

यावज्जीवं चिकित्स्यस्तु नोपेक्ष्यो भिषजा गदी ॥
कदाचिद्दैवयोगेन दृष्टारिष्टोऽपि जीवति ॥२४॥

कृतघ्न रोगी ।

चिकित्सितं शरीरं यो न निष्क्रीणाति दुर्मतिः ॥
स यत्करोति सुकृतं तत्सर्वं भिषगश्नुते ॥२५॥

चिकित्सापुण्य ।

नैव कुर्वीत लोभेन चिकित्सापुण्यविक्रयम् ॥
ईश्वराणां वसुमतां लिप्सेतार्थं तु वृत्तये ॥२६॥

परीक्षा ।

रोगमादौ परीक्षेत ततोऽनन्तरमौषधम् ॥
ततः कर्म भिषक्कुर्यात् ज्ञानपूर्वं समाचरेत् ॥२७॥

रोगभेदा ।

कर्मप्रकोपजाः केचित्केचिद्दोषप्रकोपजाः ॥
कर्मदोषोद्भवाः केचिन्मनःकायस्थिता गदाः ॥२८॥
कर्मक्षयात्कर्मकृता दोषजाः स्वघमौषधं ॥
कर्मदोषोद्भवा यांति कर्मदोषक्षयात्क्षयम् ॥२९॥
यथाशास्त्रं तु निर्णीतो यथाव्याधि चिकित्सितः ॥
न शमं याति यो व्याधिः स ज्ञेयः कर्मजो बुधैः ॥३०॥
पुण्यैश्च भेषजैः शांतास्ते ज्ञेयाः कर्मदोषजाः ॥
विज्ञेया दोषजास्त्वन्ये केवला वाथ संकराः ॥३१॥
रोगस्तु दोषवैषम्यं दोषसाम्यमरोगता ॥
निजागन्तुविभेदेन ते च रोगा द्विधा मताः ॥३२॥
याभिः क्रियाभिर्जायन्ते शरीरे धातवः समाः ॥
सा चिकित्सा विकाराणां कर्म तद्भिषजां मतम् ॥३३॥
स्वहेतूपचितान् दोषान् सामान् रसपथानुगान् ॥
रसमामं पाचयित्वा कुर्याद् दोषान् पृथक्पृथक् ॥३४॥

स एव पाचनो ज्ञेयो न च दोषान्विपाचयेत् ॥
दोषपाकाद् धातुपाकान्मरणं सर्वथा नृणाम् ॥३५॥

विकारनामाकुशलो न जिह्रीयात् कदाचन ॥
न हि सर्वविकाराणां नामतोऽस्ति ध्रुवा स्थितिः ।३६॥

दर्शनस्पर्शनप्रश्नैर्व्याधिविज्ञानं त्रिधा मतम् ॥
आयुरादि दृशा स्पर्शाच्छीतादि प्रश्नतोऽपरम् ॥३७॥

स्वभावाद् व्याधयः साध्याः केचिद्याप्या उपेक्षिताः॥
साध्या याप्यत्वमायांति याप्याश्चासाध्यतां तथा ॥३८॥

निवृत्तोपि पुनर्व्याधिः स्वल्पेनायाति हेतुना ॥
दोषैर्मार्गीकृते देहे शेषः सूक्ष्म इवानलः ॥३९॥

व्याधेस्तत्त्वपरिज्ञानं वेदनायाश्च निग्रहः ॥
एतद्वैद्यस्य वैद्यत्वं न वैद्यः प्रभुरायुषः ॥४०॥

नास्ति रोगो विना दोषैर्यस्मात्तस्माद्विचक्षणः ॥
अनुक्तमपि दोषाणां लिंगैर्व्याधिमुपाचरेत् ॥४१॥

यथाह तीसटाचार्यः ।

वातस्य पित्तस्य कफस्य चापि
विकारिणां कायवतां हि देहे ॥
प्रकोपहेतुः कुपितस्य लिंगं
चिकित्सितं चेति निरूपणीयम् ॥४२॥

वात पित्त कफ प्रकोप हेतवः ।

रूक्षैस्तिक्तैः कषायैः कटुभिरनशनैर्वेगसंधारणैश्च
व्यायामैश्च व्यवायैः प्रतरणबलवद्विग्रहैर्जागरैश्च
श्यामानीवारकंगुप्रभृतिभिरशनैरुल्लसद्भिः पयोदै-
रन्ने जीर्णे च जंतोरिति भवति तनौ मारुतस्य प्रकोपः॥४३॥

कट्वम्लोष्णविदाहि तीक्ष्णलवणक्रोधोपवासातप-
स्त्रीसंपर्कतिलातसीदधिसुराशुक्तारनालादिभिः ॥
भुक्ते जीर्यति भोजने च शरदि ग्रीष्मे सति प्राणिनां
मध्याह्ने च तथार्धरात्रसमये पित्तप्रकोपो भवेत् ॥४४॥

गुरुमधुरातिशीतदधिदुग्धनवान्नपय-
स्तिलविकृतीक्षुभक्षणाति दिवाशयनैः ॥
समविषमाशनाध्यशनपायसपिष्टकृतै-
रपि च कफः प्रकुप्यति मधौ च दिवादिषु च ॥४५॥

इति प्रकोपकारणैः प्रकोपमेत्य सर्वगा ॥
समीरणादयस्ततो रुजः सृजन्ति जन्तुषु ॥४६॥

वातपित्तकफकोपलक्षणं
सूचितं यदिह सूत्रसंग्रहे ॥
प्रोच्यते तदिह सांप्रतं मया
रुक्परीक्षणमनेन कारयेत् ॥४७॥

वातप्रकोप लक्षणं ।

दृशि शिरसि च शङ्खश्रोत्रनेत्रांतरेषु
भुवि हृदि हनुमन्यास्कन्धमूर्धोर्ध्वसन्धौ ॥
रुगति निशि दिवाल्पा स्यादकस्मात्प्रशांतो
भवति हि भुजजङ्घास्तब्धसंकोचता च ॥४८॥

कटिविटपयकृत्सु क्रोम्नि च प्लीह्नि पृष्ठे
जठरवृषणवक्षःकुक्षिकक्षांतरेषु ॥
प्रसरति गुरु शूलं नाभिबस्तिस्तनेषु
त्रिकगुदवलिगुल्फोपांतपक्षद्वयेषु ॥४९॥

वदनविरसता स्याद्वर्चसः कर्कशत्वं
भवति वपुषि कार्श्यं रात्रिनिद्रानिवृत्तिः ॥
त्वचि च परुषता स्यात्स्याच्च वैषम्यमग्ने-
रिति पवनविकारे लक्षणं प्रोक्तमेतत् ॥५०॥

पित्तप्रकोप लक्षणं ।

भ्रममदमुखशोषस्वेदसंतापमूर्छा
मुखनयननखत्वङ्मूत्रविट्पीतता च ॥
प्रलपनमतिसारश्चारुचिश्च ज्वरः स्यात्
तृडति शिशिरवांछा पित्तरोगस्य लिङ्गम् ॥५१॥

कफप्रकोप लक्षणं ।

अङ्गस्य गौरवमपाटवमन्तराग्ने-
रुत्क्लेशता च हृदयस्य मुखप्रसेकः ॥
आलस्यमास्यमधुरत्वमकांडकंडू-
रापांडुता नयनयोरतिरोमहर्षः ॥५२॥

मज्ञाप्लुतिर्वमथुपीनसकासनिद्रा-
तंद्रादयश्चुलचुलायनमुल्बणं च ॥
स्यादोष्ठकंठरसनारदमूलतालु-
घ्राणेक्षणश्रवणशष्कुलिकान्तरेषु ॥५३॥

श्लेष्मोल्बणे भवति लिङ्गमिदं नराणां
संसर्गजेषु च गदेषु भवेद् द्विदोषम् ॥
जंतोरिदं पवनपित्तकफप्रकोप-
लिङ्गं त्रिदोषजरुजि प्रविभज्य योज्यम् ॥५४॥

तथा च चरकाचार्यः ।

कफवातौ वातकफौ वातः पित्तं च वृद्धिसमौ ॥
त्रिभिराद्यैस्त्रिभिरंत्यैस्त्रिभिराद्यपरैस्तदन्यैश्च ॥५५॥

अंत्याद्याद्यमध्यांत्यावंत्यकोपसमौ मलम् ॥
मध्ये मध्येतरौ मध्यं प्रयोगान्नयतस्त्रिकौ ॥५६॥

आद्यमध्यं नयत्यंत्यं मधुराद्याः शमेतरौ ॥
आद्यं मध्यांत्यमाद्य च मध्यमांतिममंतिमम् ॥५७॥

आद्यमध्य मध्यमांत्यमाद्यं मध्यांतिमं क्रमात् ॥
आद्य दोष रसाः प्रायः प्रयोगपरिशीलिताः॥५८॥युग्मं॥

रात्र्यह्नोरादिमध्यांते पुनश्चांत्याद्यमध्यमे ॥
मध्ये चांते तथादौ च दोषैर्नल्पातिरुक् क्रमात् ॥५९॥

भुक्ते जीर्यति जीर्णेन्ने जीर्णे भुक्ते च जीर्यति ॥
जीर्णे जीर्यति भुक्ते च दोषैर्नाल्पातिशूलरुक् ॥६०॥

कफपित्तानिलाः पूर्वमध्यांतेषु व्यवस्थिताः ॥
देहाहोरात्रवयसां सन्धिष्वपि कफानिलौ ॥६१॥

आदावन्ते च दौर्बल्यं विसर्गादानयोर्नृणाम् ॥
मध्ये मध्य बलं त्वते श्रेष्ठमादौ च निर्दिशेत् ॥६२॥

चिकित्साक्रम ।

हेत्वादिरूपाकृतिसात्म्यजाति-
भेदैः समीक्ष्यातुरसर्वरोगान् ॥
चिकित्सितं कर्षणबृंहणाख्यं
कुर्वीत वैद्यो विधिवत्सुयोगैः ॥६३॥

दिव्यौषधीनां बहवः प्रभेदा
वृन्दारकाणामिव विस्फुरन्ति ॥
ज्ञात्वेति सदेहमपास्य धीरैः
सम्भावनीया विविधप्रभावाः ॥६४॥

स्वाभाविकागन्तुककायिका नृणां
रोगा भवेयुः किल कर्मदोषजाः ॥
तच्छेदनार्थं दुरितापहारिणः
श्रेयोमयान् योगवरान्नियोजयेत् ॥६५॥

॥ इति शार्ङ्गधरात् ॥

वात पित्त कफ शमनानि ॥

तत्र तावदनिलः शममेति
स्नेहबस्तिपरिषेकनिरूहैः ॥
भुक्तमात्रबलदेन नराणा-
मोदनेन मृदुमांसरसेन ।६६॥

द्राक्षया त्रिफलया त्रिवृता च
स्रंसनेन रुधिरस्रुतिभिश्च ॥
सर्पिषा च सितया पयसा च
स्वादुना भवति पित्तनिवृत्तिः ॥६७॥

लंघनेन वमनेन यवान्न-
प्राशनेन शिरसश्च विरेकैः ॥
कट्फलादिकवलैरहिमाभि-
श्चाद्भिरत्र शममेति कफश्च ॥६८॥

इति सूत्रस्थाने चिकित्सा कलिकातः ॥

इति योगतरंगिणी संहितायां ग्रंथावतारिका नाम प्रथमस्तरंगः ॥१॥
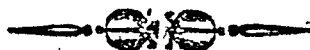
अथ द्वितीयस्तरंगः ॥२॥

॥ परिभाषा ॥

अथ मागधमानं ।

न मानेन विना युक्तिर्द्रव्याणां जायते क्वचित् ॥
अतः प्रयोगकार्यार्थं मानमत्रोच्यते मया ॥ १ ॥

मान च द्विविध प्रोक्तं कालिङ्ग मागध तथा ॥
कालिङ्गान्मागध श्रेष्ठमिति मानविदो विदुः ॥ २ ॥

त्रसरेणुर्बुधैः प्रोक्तस्त्रिंशता परमाणुभिः ॥
त्रसरेणोस्तु पर्यायैर्नाम्ना वंशी निगद्यते ॥ ३ ॥

जालांतरगतैः सूर्यकरैर्वंशी विलोक्यते ॥
षड्वंशीभिर्मरीचिः स्यात्ताभिः षड्भिश्च राजिका ॥४॥

तिसृभी राजिकाभिश्च सर्षपः प्रोच्यते बुधैः ॥
यवोऽष्टसर्षपः प्रोक्तो गुञ्जा स्यात्तच्चतुष्टयम् ॥ ५ ॥
षड्भिस्तु रक्तिकाभि: स्यान्माषको हेमधान्यकौ ॥
माषैश्चतुर्भिः शाणः स्याद्धरणः स निगद्यते ॥ ६ ॥
टंकः स एव कथितस्तद्द्वयं कोल उच्यते ॥
क्षुद्रको वटकश्चैव वक्षणः स निगद्यते ॥ ७ ॥
कोलद्वयं च कर्पः स्यात्स प्रोक्तः पाणिमानिकः ॥
अक्षः पिचुः पाणितल किंचित्पाणिश्च तिंदुकम् ॥ ८ ॥
विडालपदकं चैव तथा षोडशिका मता ॥
करमध्यो हंसपदं सुवर्ण कवलग्रहः ॥ ९ ॥
उदुंबरं च पर्यायैः कर्प एव निगद्यते ॥
स्यात्कर्पाभ्यामर्धपल शुक्तिरष्टमिका मता ॥१०॥

शुक्तिभ्यां च पलं ज्ञेयं मुष्टिराम्रं चतुर्थिका ॥
प्रकुंचः षोडशी बिल्वं पलमेवात्र कीर्त्यते ॥११॥

पलाभ्यां प्रसृतिर्ज्ञेया प्रसृतं च निगद्यते ॥
प्रसृतिभ्यामंजलिः स्यात्कुडवोर्धशरावकः ॥१२॥

अर्धमानं च विज्ञेयं कुडवाभ्यां च माणिका ॥
शरावोष्टपलं तद्वत् ज्ञेयमत्र विचक्षणैः ॥१३॥

शरावाभ्यां भवेत्प्रस्थश्चतुःप्रस्थैस्तथाढकम् ॥
भाजनं कांस्यपात्रं च चतुःषष्टिपलश्च सः ॥१४॥

चतुर्भिराढकैर्द्रोणः कलशो नल्वणोर्मणः ॥
उन्मानं च घटो राशिर्द्रोणपर्यायसंज्ञितः ॥
द्रोणाभ्यां सूर्पकुंभौ च चतुःषष्टिशरावकः ॥१५॥

सूर्पाभ्यां च भवेद्द्रोणी वहो गोणी च सा स्मृता ॥
द्रोणीचतुष्टयं खारी कथिता सूक्ष्मबुद्धिभिः ॥१६॥

चतुःसहस्रपलिका षण्णवत्यधिका च सा ॥
पलानां द्विसहस्रेण भार एकः प्रकीर्त्तितः ॥१७॥

तुला पलशतं ज्ञेया सर्वत्रैवैष निश्चयः ॥
माषटंकाक्षबिल्वानि कुडवः प्रस्थमाढकम् ॥१८॥

राशिर्गोणी खारिकेति यथोत्तरचतुर्गुणाः ॥
गुंजादिमानमारभ्य यावत्स्यात्कुडवस्थितिः ॥१९॥

द्रवार्द्रशुष्कद्रव्याणां तावन्मानं समं मतम् ॥
प्रस्थादिमानमारभ्य द्विगुणं तद्द्रवार्द्रयोः ॥२०॥

मानं तथा तुलायास्तु द्विगुणं न क्वचित्स्मृतम् ॥
मृद्वृक्षवेणुलोहादेर्भाण्डं यच्चतुरंगुलम् ॥२१॥

विस्तीर्णं च तथोच्चं च तन्मानं कुडवं वदेत् ॥
यदौषधं तु प्रथमं यस्य योगस्य कथ्यते ॥२२॥
तन्नाम्नैव स योगो हि कथ्यते क्वचिदन्यथा ॥

अथ कलिंगमानं शार्ङ्गधरात् ॥

यवो द्वादशभिर्गौरसर्षपैः प्रोच्यते बुधैः ॥
यवद्वयेन गुंजा स्यात्त्रिगुञ्जो वल्ल उच्यते ॥२३॥

माषो गुंजाभिरष्टाभिः सप्तभिर्वा भवेत्क्वचित् ॥
स्याच्चतुर्माषकैः शाणः स निष्कष्टङ्क एव च ॥२४॥

गद्याणो माषकैः षड्भिः कर्षो द्वादशमाषकः ॥
चतुःकर्षैः पलं प्रोक्तं शाणद्वादशकं च तत् ॥२५॥

चतुःपलैश्च कुडवं प्रस्थाद्याः पूर्ववन्मताः ॥
त्रुटिः स्यादणुभिः षड्भिर्लिक्षा तत्षड्भिरीरिता ॥२६॥

ताभिः षड्भिर्भवेद्यूका षड्यूकाभिरतो मतम् ॥
जालांतरगतैः सूर्यकरैर्वंशी विलोक्यते ॥२७॥
तस्या नामान्तरं ज्ञेयं त्रसरेणू रजस्तथा ॥

अथ कृष्णत्रेयात् ॥

रजांसि त्रीणि सिकता ताभिः षोडशभिस्तथा ॥२८॥

सर्षपश्च भवेद्गौरस्ते चाष्टौ तण्डुलं विदुः ॥
तद्द्वयं धान्यकं माषं तद्द्वयं रक्तिका मता ॥२९॥

रक्तिकाद्वितयेनापि वल्लः प्रोक्तो विशारदैः ॥
चतुर्भिश्चाद्रिका तैः स्यादेवं मानपरंपरा ॥३०॥

इति योगतरंगिणी संहितायां मान परिभाषाकथनंनाम द्वितीयस्तरंगः ॥२॥

अथ तृतीयस्तरंगः ॥३॥

॥ अथ युक्तायुक्तकथनम् ॥

नवान्येव हि योज्यानि द्रव्याण्यखिलकर्मसु ॥
विना विडंगकृष्णाभ्यां गुडधान्याज्यमाक्षिकैः ॥ १ ॥

गुडूची कुटजो वासा कूष्माण्डश्च शतावरी ॥
अश्वगंधा सहचरी शतपुष्पा प्रसारणी ॥ २ ॥

प्रयोक्तव्या सदैवार्द्रा द्विगुणां नैव कारयेत् ॥
शुष्कं नवीनं द्रव्यं च योज्यं सकलकर्मसु ॥ ३ ॥

आर्द्रं च द्विगुणं युंज्यादेव सर्वत्र निश्चयः ॥
कालेऽनुक्ते प्रभातं स्यादंगेऽनुक्ते जटा भवेत् ॥ ४ ॥

भागेऽनुक्ते हि साम्यं स्यात् पात्रेनुक्ते तु मृन्मयम् ॥
एकमप्यौषधं योगे यस्मिन् यत्पुनरुच्यते ॥ ५ ॥

मानतो द्विगुणं प्रोक्तं तद् द्रव्यं तत्त्वदर्शिभिः ॥
गुणहीनं भवेद्वर्षादूर्ध्वं तद्रूपमौषधम् ॥ ६ ॥

मासद्वयात्तथा चूर्णं हीनवीर्यत्वमाप्नुयात् ॥
हीनत्वं गुटिकालेहौ लभेते वत्सरात्परम् ॥ ७ ॥

हीनाः स्युर्घृततैलाद्याश्चतुर्मासाधिकास्तथा ॥
औषध्यो लघुपाकाः स्युर्निर्वीर्या वत्सरात्परम् ॥
पुराणाः स्युर्गुणैर्युक्ता आसवा धातवो रसाः ॥ ८ ॥

व्याधेरयुक्तं यद्द्रव्यं गुणोक्तमपि तत्त्यजेत् ॥
अनुक्तमपि युक्तं हि योजयेत्तत्र तद्बुधः ॥ ९ ॥

अथ गोरक्षमतात् ॥

वज्राभावे तु वैक्रान्त स्वर्णाऽभावे तु माक्षिकम् ॥
हेममाक्षिकज सत्त्वं मतं हेमसमं गुणैः ॥१०॥

विमलामाक्षिक ज्ञेयं ध्रुव रजतवद्गुणैः ॥
मुक्ताऽभावे क्षिपेन्नून मुक्ताशुक्ति च तद्गुणाम् ॥११॥

अभावेभ्रकसत्त्वस्य कान्तलोहं प्रयोजयेत् ॥
कांताभावे तीक्ष्णलोहमित्युक्तं रसदर्पणे ॥१२॥
अभावे मधुनो योज्यो गुडो जीर्णश्च तद्गुणः ॥
सिताभावे भवेत् खण्ड शाल्यभावे च पष्टिकाः ॥१३॥

असंभवे तु द्राक्षाया प्रदेयं काश्मरीफलम् ॥
वृक्षाम्लं न भवेद्यत्र दाडिमाम्लं प्रयोजयेत् ॥१४॥
वेतसाम्लस्य चाभावे हरिमन्थाम्लमादिशेत् ॥
अभावे चन्दनस्यापि मेलयेद्रक्तचन्दनम् ॥१५॥

अभावे सति पित्तानां रसादेर्भावनाविधौ ॥
विषमुष्टिकषायेण षड्गुणा भावना भवेत् ॥१६॥

अथ वैद्यालंकारात् ॥

मेदाजीवककाकोलीद्वयाऽभावे प्रयोजयेत् ॥
यष्टीविदार्यश्वगंधा बलावाराहिका नवाः ॥१७॥
फलमाममपुष्टं च त्यजेद्विल्वादृते सदा ॥
द्राक्षाबिल्वशिवादीनां फल शुष्कं गुणोत्तरम् ॥१८॥

आदिशब्दाद्विभीतकपरूषकादेरपि ॥

अंतःसंमार्जने मोदास्थाने योज्या जवानिका ॥
बहिःसंमार्जने मोदा ह्यजमोदैव गृह्यते ॥१९॥

अंतःसंमार्जने योज्यं वचास्थाने कुलिञ्जनम् ॥
बहिःसंमार्जने सैव प्रयोज्या च मनीषिभिः ॥२०॥

कृष्णजीरकयोगेन कर्तव्ये भक्ष्यभेषजे ॥
तस्य स्थाने प्रदातव्यो जीरकः कुशलैः सदा ॥२१॥

सारश्च खदिरादीनां निंबादीनां त्वचः स्मृताः ॥
फलं च दाडिमादीनां पटोलादेर्दलं मतम् ॥२२॥

॥ इति भद्रशौनकात् ॥

क्वचित्पत्रं क्वचिन्मूलं क्वचित्पुष्पं क्वचित्फलम् ॥
क्वचिद्बीजं क्वचिद्वल्कं क्वचित्क्वाथं क्वचिज्जलम् ॥२३॥

क्वचिन्नालं योजनीयं क्षीरं क्षारं क्वचित्क्वचित् ॥
एकैकस्यौषधस्यैव यथायोगं प्रयोजयेत् ॥२४॥

अर्धं सिद्धरसस्य तैलघृतयोर्लोहस्य भागोष्टमः
संसिद्धाखिललेहचूर्णगुटिकादीनां तथा सप्तमः ॥
यो दीयेत भिषग्वराय सरुजा निर्दिश्य धन्वन्तरिं ॥
देहारोग्यसुखाप्तये निगदितो भागः स धान्वन्तरिः ॥२५॥

क्रीतद्रव्यस्य भैषज्यभागश्चैकादशो हि यः ॥
वणिग्भ्यो गृह्यते वैद्यै रुद्रभागः स कथ्यते ॥२६॥

गृहीत्वाधिकमीशांशाद्योऽसमीचीनमौषधम् ॥
दापयेल्लुब्धह्वद्वैद्यः स स्याद्विश्वासघातकः ॥२७॥

॥ इति वैद्यालंकारात् ॥

इतिश्री योगतरंगिणी संहितायां युक्तायुक्तकथनं नाम तृतीयस्तरंगः ॥३॥

अथ चतुर्थस्तरंगः ॥४॥

स्नेहाद्या अथ कथ्यन्ते योगा रोगापघातकाः ॥
स्नेहश्चतुर्विधः प्रोक्तो घृतं तैलं वसा तथा ॥ १ ॥
मज्जा च तं पिबेन्मर्त्यः किंचिदभ्युदिते रवौ ॥
स्थावरो जंगमश्चेति द्वियोनिः स्नेह उच्यते ॥
तिलतैलं स्थावरेषु जंगमेषु घृत वरम् ॥ २ ॥
द्वाभ्यां त्रिभिश्चतुर्भिस्तैर्यमकस्त्रिवृतो महान् ॥
पिबेत्त्र्यहं चतुरहं पञ्चाहं षडह तथा ॥ ३ ॥
सप्तरात्रात्परं स्नेहः सात्म्योभवति सेवितः ॥
दोषकालाग्निवयसां बल दृष्ट्वा प्रयोजयेत् ॥ ४ ॥
हीनां च मध्यमां ज्येष्ठां मात्रां स्नेहस्य बुद्धिमान ॥ ५ ॥
अमात्रया तथाऽकाले मिथ्याहारविहारतः ॥
स्नेहः करोति शोफार्शस्तंद्रानिद्राविसंज्ञताः ॥ ६ ॥
देया दीप्ताग्नये मात्रा स्नेहस्य पलसंमिता ॥
मध्यमा च त्रिकर्षा स्यात् जघन्या च द्विकार्षिकी ॥ ७ ॥
केवल पैत्तिके सर्पिर्वातिके सैन्धवान्वितम् ॥
पेयं बहुकफे चापि व्योषक्षारसमन्वितम् ॥ ८ ॥
रूक्षक्षतविषार्तानां वातपित्तविकारिणाम् ॥
हीनमेधास्मृतीनां च सर्पिःपाने प्रशस्यते ॥ ९ ॥
कृमिकोष्ठानिलाविष्टाः प्रवृद्धकफमेदसः ॥
पिबेयुस्तैलसात्म्या ये तैल दार्ढ्यार्थिनश्च ये ॥१०॥
व्यायामकर्षिता शुष्का रेतोरिक्ता महारुजः ॥
महाग्निमारुतप्राणा वसायोग्या नरा मताः ॥११॥

क्रूराशयाः क्लेशसहा वातार्ता दीप्तवह्नयः ॥
मज्जानमपि पिबेयुस्ते सर्पिर्वा सर्वतो हितम् ॥१२॥
शीतकाले दिवा स्नेहमुष्णकाले पिबेन्निशि ॥
वातपित्ताधिके रात्रौ वातश्लेष्माधिके दिवा ॥१३॥
नस्याऽभ्यंजनगंडूषैर्मूर्द्धकर्णाक्षितर्पणैः ॥
तैलं घृतं वा युंजीत दृष्ट्वा दोषबलाबलम् ॥१४॥
घृते कोष्णं जलं पेयं तैले यूषः प्रशस्यते ॥
वसामज्जाविधौ मंडमनुपानं सुखावहम् ॥१५॥
वृद्धबालकृशा रूक्षाः क्षीणास्त्राः क्षीणरेतसः ॥
वातार्तास्तिमिरार्ता ये तेषां स्नेहनमुत्तमम् ॥१६॥
रूक्षस्य स्नेहनं स्नेहैरतिस्निग्धस्य रूक्षणम् ॥१७॥

अतिस्निग्धस्य लक्षणं चिकित्सा च ।

भक्तद्वेषो मुखस्रावो गुदे दाहः प्रवाहिका ॥
तंद्रातीसारपांडुत्वं भृशं स्निग्धस्य लक्षणम् ॥१८॥
श्यामाकचणकाद्यैश्च भक्तपिण्याकसक्तुभिः ॥
रूक्षणं कारयेदेतैर्यथादोषं बलाबलम् ॥१९॥
स्नेहे व्यायामसंशीतवेगाघातप्रजागरान् ॥
दिवास्वप्नमभिष्यंदि रूक्षान्नं च विवर्जयेत् ॥२०॥

अथ स्नेहपाकविधिः ।

विघ्नेशक्षेत्रपालौ बटुकमपि शुभे वासरे पूजयित्वा
तैलस्याज्यस्य किंवा रचयतु निपुणः संस्कृतिं संप्रदायात् ॥
आदौ वह्निं प्रदद्यात्प्रदवधि शनकैः शब्दफेनक्षयः स्या-
त्तश्चान्मृत्पिंडकैस्तद्दशभिरलघुभिर्नीतिपीनै पचेच्च ॥२१॥

एक संस्थाप्य पात्रे विधिवदथ पचेद्वासरादग्निमात्तत्
काथैः कल्कैश्च दुग्धैस्तदनु सुरभिभिः शोधनीयैर्विशोध्यम् ॥
कस्तूरी चन्दनं वैलाजलजलदशठीरक्तपाटीरकुष्ठ-
त्वक्मंजिष्ठातुरुष्कागुरुनखरदल श्वेतकंकोलमुख्यैः ॥२२॥

जलस्नेहौषधीनां च प्रमाणं यत्र नोदितम् ॥
षड्गुणश्चौषधात्स्नेहः स्नेहात् क्वाथश्चतुर्गुणः ॥२३॥

स्नेहाच्चतुर्गुणं क्वाथ्यं सदा च स्नेहसविधौ ॥
चतुर्गुणं जलं दत्वा क्वाथः क्वाथ्यसमो मतः ॥२४॥

इति चरकात् ॥

कल्काच्चतुर्गुणः स्नेहः स्नेहात्क्वाथ्यं चतुर्गुणम् ॥
क्वाथ्याच्चतुर्गुणं वारि क्वाथः क्वाथ्यसमो मतः ॥२५॥
मृदौ चतुर्गुणं देयं कठिनेऽष्टगुणं जलम् ॥
कठिनात्कठिने द्रव्ये वारि षोडशभागिकम् ॥२६॥
स्नेहकल्को यदाऽङ्गुल्यावर्तितो वर्तिवद्भवेत् ॥
वह्नौ क्षिप्ते च नोशब्दस्तदा सिद्धं विनिर्दिशेत् ॥२७॥

अथ अन्यच्च ।

शब्दव्युपरमे प्राप्ते फेनस्योपशमे तथा ॥
गन्धवर्णरसादीनां सम्पत्तौ सिद्धिमादिशेत् ॥२८॥
घृतस्यैवं विपक्वस्य संसिद्धिं कुशलो भिषक् ॥
फेनोद्गमे च तैलस्य शेषं घृतवदादिशेत् ॥२९॥

इति योगरत्नावलीतः ॥

अकल्कयोग्यद्रव्याणां कठिनानां विशारतः ॥
क्वाथो विधीयतेन्येषां कल्क एव भिषङ्मतः ॥३०॥

इति वैद्यालंकारात् ॥

आदौ संचारयेत् क्वाथं दुग्धं कल्कं ततः क्रमात् ॥
ततोन्यत्सुरभि द्रव्यमेष स्नेहविधौ क्रमः ॥३१॥
इति मतिमुकुरात् ॥

क्षीरं स्नेहसमं दद्यादनुक्ते स्नेहसंविधौ ॥
शकृद्रसं मांसरसं मूत्रं सौवीरकादिकम् ॥३२॥

स्नेहादष्टगुणं देयं जलं च द्विगुणं क्षिपेत् ॥
अर्धावशिष्टः कर्तव्यः पाको गंधांबुकं ततः ॥३३॥

चन्द्रकस्तूरिकादीनां सहस्रांशं प्रयोजयेत् ॥
पुष्पाणि गन्धनिर्यासं सिद्धे शीतेवतारिते ॥३४॥

दृषत्पिष्टो भवेत्कल्कः क्वाथोग्निकथितो मतः ॥
स्नेहपाकस्त्रिधा प्रोक्तो मृदुर्मध्यः खरस्तथा ॥३५॥

ईषत्सरसकल्कस्तु स्नेहपाको मृदुर्भवेत् ॥
मध्यपाकस्य संसिद्धिः कल्के नीरसकोमले ॥३६॥

ईषत्कठिनकल्कश्च स्नेहपाको भवेत्खरः ॥
तदूर्ध्वं दग्धपाकः स्याद्दाहकृन्निष्प्रयोजयेत् ॥३७॥

आमपाकश्च निर्वीर्यो वह्निमांद्यकरश्च सः ॥
नस्यार्थे स्यान्मृदुः पाको मध्यमः सर्वकर्मसु ॥३८॥

अभ्यंगार्थे खरः प्रोक्तो युंज्यादेवं यथोचितम् ॥
घृततैलगुडादींस्तु साधयेन्नैकवासरे ॥
प्रकुर्वन्त्युषिता ह्येते विशेषाद् गुणसंचयम् ॥३९॥

इति योगतरंगिणी संहितायां स्नेहपाकविधिर्नाम चतुर्थस्तरंगः ॥४॥

॥ अथ पञ्चमस्तरंगः ॥५॥

॥ पंच कर्माणि ॥

॥ अथ स्वेदविधिः ॥ प्रथमं कर्मः ॥१॥

स्वेदभेदा गुणाः ।

स्वेदश्चतुर्विधः प्रोक्तस्तापोष्णस्वेदसंज्ञकौ ॥
उपनाहो द्रवस्वेदः सर्वे वातार्तिहारिणः ॥ १ ॥
स्वेदौतापोष्मजौ प्रायः श्लेष्मघ्नौ समुदीरितौ ॥
उपनाहस्तु वातघ्नः पित्तसंज्ञे द्रवो हितः ॥ २ ॥
महाबले महाव्याधौ शीते स्वेदो महान्मतः ॥
दुर्बले दुर्बलस्वेदो मध्ये मध्यतमो मतः ॥ ३ ॥
स्वेद्या पूर्वं प्रयोपीह भगंदरर्शसं तथा ॥
अश्मर्या चातुरो जंतुः समये शस्त्रकर्मणः ॥ ४ ॥
पश्चात्स्वेद्या हृते शल्ये मूढगर्भगदे तथा ॥
काले प्रसूताऽकाले वा पश्चात्स्वेद्या नितंबिनी ॥ ५ ॥
सर्वान्स्वेदान्नियाते च जीर्णाहारे च कारयेत् ॥
स्विद्यमानशरीरस्य हृदयं शीतलैः स्पृशेत् ॥ ६ ॥
स्नेहाभ्यक्तशरीरस्य शीतैराच्छाद्य चक्षुषी ॥

अस्वेद्याः ।

अजीर्णी दुर्बलो मेही क्षतक्षीणः पिपासितः ॥ ७ ॥
अतीसारी रक्तपित्ती पांडुरोगी तथोदरी ॥
मदार्तो गर्भिणी चैव न हि स्वेद्या विजानता ॥ ८ ॥
एतानपि मृदुस्वेदैः स्वेदसाध्यानुपाचरेत् ॥
मृदुस्वेदं प्रयुञ्जीत तथा हृन्मुष्कदृष्टिषु ॥ ९ ॥

अतिस्वेदोपद्रवाः ।

अतिस्वेदात्संधिपीडा दाहस्तृष्णा क्लमो भ्रमः ॥
पित्तासृक्पिडकाकोपस्ततः शीतैरुपाचरेत् ॥१०॥
तेषु तापाभिधः स्वेदो वालुकावस्त्रपाणिभिः ॥
प्रस्तरैरम्लसिक्तैश्च कायेरल्लकवेष्टिते ॥११॥
अथवा वातनिर्नाशिद्रव्यक्वाथरसादिभिः ॥
उष्णैर्घटं पूरयित्वा पार्श्वे छिद्रं निधाय च ॥१२॥
विमुद्र्यास्यं त्रिखंडां च धातुजां काष्ठजामथ ॥
षडंगुलास्यां गोपुच्छां नाडीं युंज्यात् त्रिशुंडिकाम् ॥१३॥
सुखोपविष्टमभ्यक्तं गुरुप्रावरणावृतम् ॥
हस्तिशुंडिकया नाड्या स्वेदयेद्वातरोगिणम् ॥१४॥

अपर ऊष्मस्वेदप्रकारः ॥ महाशाल्वणस्वेदः

पुरुषायाममात्रं वा भूमिमुत्कीर्य खादिरैः ॥
काष्ठैर्दग्ध्वा तथाभ्युक्ष्य क्षीरधान्याम्लवारिभिः ॥१५॥
वातघ्नपत्रैराच्छाद्य शयानं स्वेदयेन्नरम् ॥
एवं माषादिभिः स्विन्नैः शयानं स्वेदमाचरेत् ॥१६॥
तथोपनाहस्वेदं च कुर्याद्वातहरौषधैः ॥
प्रदिग्धस्नेहवातार्तं क्षीरमांसरसान्वितैः ॥१७॥
अम्लपिष्टैः सलवणैः सुखोष्णैः स्नेहसंयुतैः ॥
उपग्राम्यानूपमांसैर्जीवनीयगणेन च ॥१८॥
दधिसौवीरकक्षीरैर्वीरतर्वादिना तथा ॥
कुलत्थमाषगोधूमैरतसीतिलसर्षपैः ॥१९॥
शतपुष्पादेवदारुशेफालीस्थूलजीरकैः ॥
एरंडमूलबीजैश्च रास्नामूलकशिग्रुभिः ॥२०॥

सुकुमारं कृशं बाल वृद्ध भीरुं न वामयेत् ॥

वमन प्रयोगाः ।

पीत्वा यवागूमाकंठं क्षीरतक्रदधीनि च ॥१०॥
असात्म्यैः श्लेष्मलैर्भोज्यैर्दोषानुत्क्लेश्य देहिनः ॥
स्निग्धस्विन्नाय वमन दत्त सम्यक्प्रवर्तते ॥११॥

वमनेषु च सर्वेषु सैंधव मधु वा हितम् ॥
बीभत्सं वमनं दद्याद्विपरीत विरेचनम् ॥१२॥

क्वाथ्यद्रव्यस्य कुडव स्थापयित्वा जलाढके ॥
अर्धभागावशिष्ट च वमनेष्ववतारयेत् ॥१३॥

क्वाथपाने नवप्रस्थाः श्रेष्ठा मात्रा प्रकीर्तिता ॥
मध्यमा षण्मिता प्रोक्ता त्रिप्रस्था च कनीयसी ॥१४॥

कल्कचूर्णावलेहानां त्रिपलं श्रेष्ठमात्रया ॥
मध्यमं द्विपल विद्यात्कनीयस्तु पल भवेत् ॥१५॥

वमने चापि वेगाः स्युरष्टौ पित्तात उत्तमाः ॥
षड्वेगा मध्यवेगाश्च चत्वारस्त्ववरा मताः ॥१६॥

वमने च विरेके च तथा शोणितमोक्षणे ॥
अर्ध त्रयोदशीपलं प्रस्थमाहुर्मनीषिणः ॥१७॥

कफं कटुकतीक्ष्णोष्णैः पित्तं स्वादु हिमैर्जयेत् ॥
सुस्वादुलवणाम्लोष्णैः संसृष्टं वायुना कफम् ॥१८॥

कृष्णाराढफलं सिंधुकफे कोष्णजलैः पिबेत् ॥
पटोलवासानिम्बैश्च पित्ते शीत जलं पिबेत् ॥१९॥

सश्लेष्मवातपीडायां सक्षीरं मदन पिबेत् ॥
अजीर्णे कोष्णपानीय सिंधु पीत्वा वमेत्सुधीः ॥२०॥

वामनं पाययित्वा तु जानुमात्रासने स्थितम् ॥
कंठमेरंडनालेन स्पृशंतं वामयेद्भिषक् ॥२१॥

अति वमने उपद्रवाः ।

प्रसेको हृद्ग्रहः कोठः कंडूर्दुश्छर्दिते भवेत् ॥
अतिवांते भवेत्तृष्णा हिक्कोद्गारौ विसंज्ञता ॥२२॥
जिह्वानिःसर्पणं व्याक्ष्णोर्व्यावर्तिर्हनुसंहतिः ॥
रक्तच्छर्दिः ष्ठीवनं च कंठपीडा च जायते ॥२३॥

अति वमन चिकित्सा ।

वमनस्यातियोगेन मृदु कुर्याद्विरेचनम् ॥
वमनांतःप्रविष्टायां जिह्वायां कवलग्रहः ॥२४॥
स्निग्धाम्ललवणैर्हृद्यैर्घृतक्षीररसैर्हितः ॥
फलान्यम्लानि खादेयुस्तस्य चान्येग्रतो नराः ॥२५॥
निःसृतां तु तिलैर्द्राक्षाकल्कलिप्तां प्रवेशयेत् ॥
व्यावर्तेक्ष्णोर्घृताभ्यक्ते पीडयेच्च शनैः शनैः ॥२६॥
हनोर्मोक्षे स्मृतः स्वेदो रक्तच्छर्दिविधौ पुनः ॥
धात्री रसांजनोशीरलाजाचन्दनवारिभिः ॥२७॥
काथं कृत्वा पाययेच्च सघृतक्षौद्रशर्करम् ॥
शाम्यंत्यनेन तृष्णाद्याः पीडाश्छर्दिसमुद्भवाः ॥२८॥

सम्यग्वान्त लक्षणं ।

हृत्कंठशिरसां शुद्धिर्दीप्ताग्नित्वं च लाघवम् ॥
कफपित्तविनाशश्च सम्यग्वांतस्य चेष्टितम् ॥२९॥

सम्यग्वांतस्य पथ्यविधानं ।

ततोपराह्णे दीप्ताग्निं मुद्गषष्टिकशालिभिः ॥
हृद्यैश्च जांगलरसैः कृत्वा यूषं च भोजयेत् ॥३०॥

तंद्रा निद्रास्यदौर्गंध्यं पांडुश्च ग्रहणीगदः ॥
सुवांतस्य न पीडायै भवंत्येते कदाचन ॥३१॥

अजीर्णं शीतपानीयं व्यायामं मैथुनं तथा ॥
स्नेहाभ्यंगान्प्रदेहांश्च दिनैक वर्जयेत्सुधीः ॥३२॥

इति श्री योगतरंगिणी संहितायां वमनविधिकथनं नाम षष्ठस्तरंगः ॥६॥

॥ अथ सप्तमस्तरंगः ॥७॥

॥ अथ विरेकविधिः तृतीयं कर्म ॥३॥

विरेचन आवश्यकं ।

स्निग्धस्विन्नस्य वांतस्य दद्यात्सम्यग्विरेचनम् ॥
अवांतस्य त्वधःस्रस्तो ग्रहणीं छादयेत्कफः ॥१॥

मंदाग्निं गौरवं कुर्याज्जनयेद्वा प्रवाहिकाम् ॥
अथवा पाचनैराम बलास च विपाचयेत् ॥२॥

पित्ते विरेचनं युज्यादामोद्भूते गदे तथा ॥
उदरे च तथाध्माने कोष्ठाशुद्धौ विशेषतः ॥३॥

दोषाः कदाचित्कुप्यंति जिता लंघनपाचनैः ॥
ये तु संशोधनैः शुद्धा न तेषां पुनरुद्भवः ॥४॥

विरेचने अयोग्या ।

बालवृद्धावतिस्निग्धः क्षतक्षीणो भयान्वितः ॥
श्रांतस्तृषार्तः स्थूलश्च गर्भिणी च नवज्वरी ॥५॥

नवप्रसूता नारी च मंदाग्निश्च मदात्ययी ॥
शल्योद्धृतश्च रूक्षश्च न विरेच्या विजानता ॥६॥

विरेचन योग्याः ।

जीर्णज्वरी गरव्यासो वातरक्ती भगंदरी ॥
अर्शःपांडूदरग्रन्थीहृद्रोगारुचिपीडिताः ॥७॥
योनिरोगप्रमेहार्ता गुल्मप्लीहव्रणार्दिताः ॥
विद्रधिच्छर्दिविस्फोटविसूचीकुष्ठसंयुताः ॥८॥
कर्णनासाशिरोवक्त्रगुदमेद्रामयान्विताः ॥
प्लीहशोफाक्षिरोगार्ताः कृमिक्षारानिलार्दिताः ॥९॥
शूलिनो मूत्रघातार्ता विरेकार्हा नरा मताः ॥

कोष्ठाः ।

बहुपित्तो मृदुः प्रोक्तो बहुश्लेष्मा च मध्यमः ॥१०॥
बहुवातः क्रूरकोष्ठो दुर्विरेच्यः स कथ्यते ॥
मृद्वी मात्रा मृदौ कोष्ठे मध्यकोष्ठे तु मध्यमा ॥११॥
क्रूरे तीक्ष्णा मता द्रव्यैर्मृदुमध्यमतीक्ष्णकैः ॥

मृदु मध्य क्रूर रेचनानि ।

मृदुर्द्राक्षापयश्चारुतैलैरपि विरिच्यते ॥१२॥
मध्यमस्त्रिवृतातिक्ताराजवृक्षैर्विरिच्यते ॥
क्रूरस्नुक्पयसा हेमक्षीरीदन्तीफलादिभिः ॥१३॥
मात्रोत्तमा विरेकस्य त्रिंशद्वेगैः कफांतका ॥
वेगैर्विंशतिभिर्मध्या हीनोक्ता दशवेगकैः ॥१४॥
द्विपलं श्रेष्ठमाख्यातं मध्यमं तु पलं भवेत् ॥
पलार्धं च कषायाणां कनीयस्तु विरेचनम् ॥१५॥
कल्कमोदकचूर्णानां कर्षं मध्वाज्यलेहतः ॥
कर्षद्वयं पलं वापि देयो रोगाद्यपेक्षया ॥१६॥

पित्तोदरे त्रिवृच्चूर्णं द्राक्षाकाथादिभिः पिबेत् ॥
त्रिफलाकाथगोमूत्रैः पिबेद्व्योषं कफार्दितः ॥१७॥
त्रिवृत्सैंधवशुंठीनां चूर्णमम्लैः पिबेन्नरः ॥
वातार्दितो विरेकाय जांगलानां रसेन वा ॥१८॥

एरंडतैलं त्रिफलाकाथेन द्विगुणेन वा ॥
युक्तं पीतं पयोभिर्वा न चिरेण विरिच्यते ॥१९॥
त्रिवृता कौटज बीज पिप्पली विश्वभेषजम् ॥
समृद्वीकारसः क्षौद्रं वर्षाकाले विरेचनम् ॥२०॥

त्रिवृद्दुरालभोदीच्यशर्करामुस्तचंदनम् ॥
द्राक्षांबुना सयष्ट्याह्व शीतलं च घनात्यये ॥२१॥

पिप्पली नागरं सिंधु श्यामा त्रिवृतया सह ॥
लिहेत्क्षौद्रेण शिशिरे वसंते च विरेचनम् ॥२२॥
त्रिवृता शर्करातुल्या ग्रीष्मकाले विरेचनम् ॥

अथ अभयामोदकः ।

अभया मरिच शुंठी विडंगामलकानि च ॥२३॥
पिप्पली पिप्पलीमूलं त्वक् पत्रं मुस्तमेव च ॥
एतानि समभागानि दंती च त्रिगुणा भवेत् ॥२४॥

त्रिवृदष्टगुणा ज्ञेया षड्गुणा चात्र शर्करा ॥
मधुना मोदकान्कृत्वा कर्षमात्रप्रमाणतः ॥२५॥
एकैकं भक्षयेत्प्रातः शीतं चानुपिबेज्जलम् ॥
तावद्विरिच्यते जंतुर्यावदुष्णं न सेवते ॥२६॥
पानाहारविहारेषु भवेन्नियंत्रणः सदा ॥
विषमज्वरमदाग्निपांडुकासभगंदरान् ॥२७॥

वातामकुष्ठगुल्मार्शोगलगंडभ्रमोदरान् ॥
विदाहप्लीहमेहांश्च यक्ष्माणं नयनामयान् ॥२८॥
वातरोगांस्तथाध्मानं मूत्रकृच्छ्राणि चाश्मरीम् ॥
पृष्ठपार्श्वोरुजघनजंघोदररुजं जयेत् ॥२९॥
सततं शीलनादेषः पलितानि विनाशयेत् ॥
अभया मोदका ह्येते रसायनमनुत्तमाः ॥३०॥

मृद्वीकादिगण विरेचनं ।

मृद्वीका कटुरोहिणी जलधरः शंपाकमज्जा शिवा
कृष्णा मूलपटोलिके त्रिवृदिलावृश्चीयपत्रं समम् ॥
संक्वाथ्याशु निपीत एष तु गणः संरेचयेदाश्वयं
तांबूलाशिनमग्निसेविनमिलागेहस्थितं मानवम् ॥३१॥

विरेचने पथ्यं ।

कृत्वा विरेचनं शीतजलैः संसिच्य चक्षुषी ॥
सुगंधि किंचिदाघ्राय तांबूलं शीलयेन्नरम् ॥३२॥
निवातस्थो न वेगांश्च धारयेन्न स्वपेत्तथा ॥
शीतांबु न स्पृशेत्क्वाऽपि कोष्णं नीरं पिबेन्मुहुः ॥३३॥
वलासौषधपित्तानि वारि वांते यथा व्रजेत् ॥
रेकात्तथा मलं पित्तं भेषजं च कफो व्रजेत् ॥३४॥

दुर्विरिक्त लक्षणं चिकित्सा ।

दुर्विरिक्तस्य नाभेस्तु स्तब्धत्वं कुक्षिशूलता ॥
पुरीषवातसंगं च कंडूमण्डलगौरवम् ॥३५॥
विदाहोरुचिराध्मानं भ्रमश्छर्दिश्च जायते ॥३६॥
तं पुनः पाचनैः स्नेहैः पक्त्वा संस्नेह्य रेचयेत् ॥
तेनास्योपद्रवा यांति दीप्ताग्नेर्लघुता भवेत् ॥३७॥

अतिविरेचनोपद्रवा. चिकित्सा ।

विरेकस्यातियोगेन मूर्छा भ्रंशो गुदस्य च ॥
शूल कफातियोगः स्यान्मांसधावनसंनिभम् ॥३८॥

मेदोनिभ जलाभासं रक्तं चापि विरिच्यते ॥
तस्य शीतांबुभिः सिक्त्वा शरीर तंडुलांबुभिः ॥३९॥

मधुमिश्रैस्तथोशीरैः कारयेद्वमन मृदु ॥४०॥

सहकारत्वचः कल्को दध्ना सौवीरकेण वा ॥
पिष्टो नाभिप्रलेपेन हन्त्यतीसारमुल्बणम् ॥४१॥

अथ शार्ंगधरात् ।

अजाक्षीर विसं वापि वैष्किरं हारिणं तथा ॥
शालिभिः षष्टिभिः स्वल्पं मसूरैर्वापि भोजयेत् ॥४२॥

शीतैः संग्राहिभिर्द्रव्यैः कुर्यात्संग्रहणं भिषक् ॥

सुविरिक्तलक्षणं ।

लाघवं मनसस्तुष्टिरनुलोमं गतेनिले ॥४३॥

सुविरिक्तं नरं ज्ञात्वा पाचनं पाययेन्निशि ॥
इंद्रियाणां बलं बुद्धेः प्रसादो वह्निदीप्तिता ॥४४॥

धातुस्थैर्यं वयःस्थैर्यं भवेद्रेचनसेवनात् ॥
प्रवातसेवां शीतांबु स्नेहाभ्यंगमजीर्णतां ॥४५॥

व्यायामं मैथुन चैव न सेवेन विरेचितः ॥
शालिषष्टिकमुद्गाद्यैर्यवागूं भोजयेत्कृताम् ॥
जंघालचिष्किराणां वा रसैः शाल्योदनं हितम् ॥४६॥

इच्छाभेदी रसः ।

शंभोर्बीजं सटंकं बलिमरिचयुतं शृंगवेरं च तुल्यं
योज्यं नैकुंभबीजं शिखिशिखिसहितं मर्दितं याममेकं ॥
भुक्तं गुंजाद्विमात्रं शिशिरजलयुतं त्यक्तसत्वमुच्चै-
रिच्छाभेदी रसोऽयं प्रबलमलहरः सर्वरोगैकहर्ता ॥४७॥

अथ नाराचो रसः रसरत्नप्रदीपात् ।

जैपालेन समैः सूतव्योषटंकणगंधकैः ॥
नाराचः स्याद्रसो माषमात्रः सर्पिःसितायुतः ॥४८॥

हंति संग्रहमानाहमामशूलं नवज्वरम् ॥
वेलाज्वरं विरेकेण शीतलांबुनिषेवणात् ॥४९॥

अथ द्वितीय इच्छाभेदी रस ।

शुंठी तीक्ष्णरसेंद्रटंकणबलिप्रोक्तं समं तत्त्रिधा ॥
कुंभीबीजयुतं विमर्द्य स भवेदिच्छाविभेदी रसः ॥५०॥

वल्लः शर्करया निपीय चुलुकं पुंसः सुखं रेचये-
न्निःशेषं मलदोषमेव विनिहंत्युच्चैर्यथेभं हरिः ॥५१॥

इतिश्री योगतरंगिणी संहितायां विरेकविधिर्नाम सप्तमस्तरंगः ॥७॥
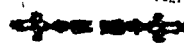
॥ अथ अष्टमस्तरंगः ॥८॥

॥ अथ वस्ति विधिः चतुर्थ कर्म ॥४॥

वस्ति लक्षणं ॥

वस्तिर्द्विधानुवासाख्यो निरूहश्च ततः परम् ॥
यः स्नेहैर्दीयते स स्यादनुवासननामकः ॥१॥

कषायक्षीरतैलैर्वा निरूहः स निगद्यते ॥
वस्तिभिर्दीयते यस्मात्तस्माद्वस्तिरिति स्मृता ॥२॥

अथ वस्तिनिर्माण ॥

मृगाऽजशूकरगव महिषस्यापि वा भवेत् ॥
मूत्रकोशस्तु वस्तिः स्यादलाभे चान्यचर्मज ॥३॥

नेत्रं कार्यं सुवर्णादि धातुवृक्षवेणुभि ॥
नलैर्दन्तैर्विषाणाग्रैर्मणिभिर्वा विधीयते ॥४॥

आतुरांगुष्ठमानेन मूले स्थूल विधीयते ॥
कनिष्ठिकापरीणाहमग्रे च गुटिकामुखम् ॥५॥

मुद्गच्छिद्रयुतं वक्त्रे गोपुच्छसदृशं दृढम् ॥
षडंगुलमितं तच्च किंवा स्याद् द्वादशांगुलम् ॥६॥

योजयेत्तत्र वस्तिं च बन्धद्वयविधानतः ॥
उत्तमस्य पलैः षड्भिर्मध्यमस्य पलैस्त्रिभिः ॥७॥

पलेनार्धेन हीनस्य युक्ता मात्राऽनुवासने ॥
भोजयित्वा यथाशास्त्र कृतचंक्रमणं ततः ॥८॥

उत्सृष्टानिलविण्मूत्रं योजयेत्स्नेहवस्तिना ॥
सुप्तस्य वामपार्श्वे वा वामजंघाप्रसारिणः ॥९॥

कुंचितस्यान्यजंघस्य नेत्रं स्निग्धे गुदे न्यसेत् ॥
वामेन पाणिना बस्तिकंठमालम्ब्य धीरधीः ॥१०॥
बस्तिं संपीडयेत्पश्चान्मध्यवेगोन्यपाणिना ॥
जंभाकासक्षवादींश्च बस्तिकाले न कारयेत् ॥११॥
त्रिंशन्मात्रोन्मितः कालः प्रोक्तो बस्तेस्तु पीडने ॥
याते विधाने तु ततः कुर्यान्निद्रां यथासुखम् ॥१२॥
सतैलः सपुरीषश्च स्नेहः प्रत्येति यस्य तु ॥
उपद्रवं विना चैव स सम्यगनुवासितः ॥१३॥
अनेन विधिना देयाः सप्त वाष्टौ च बस्तयः ॥
अनायाते त्वहोरात्रे स्नेहं संशोधनैर्हरेत् ॥१४॥
अतिसंक्षेपतः प्रोक्तो बस्तिरेषोऽनुवासनः ॥

इति अनुवासनबस्तिः ॥

अथ निरूहवस्तिः ॥

निरूहस्यापरं नाम प्रोक्तमास्थापनं बुधैः ॥
स्वस्थानस्थापनाद्दोषधातूनां स्थापनं मतम् ॥१५॥
निरूहस्य प्रमाणं तु प्रस्थं पादोत्तरं मतम् ॥
मध्यमं प्रस्थमुद्दिष्टं हीनं च कुडवास्त्रयः ॥१६॥

निरूहे अयोग्याः ॥

अतिस्निग्धः क्लिष्टदोषः क्षतोरस्कः कृशस्तथा ॥
आध्मानच्छर्दिहिक्कार्शःकासश्वासप्रपीडितः ॥१७॥
गुदे शोफातिसारार्तो विसूचीकुष्ठसंयुतः ॥
गर्भिणी मधुमेही च नास्थाप्यश्च जलोदरी ॥१८॥
वातव्याधावुदावर्ते वातासृग्विषमज्वरे ॥
मूर्छातृष्णोदरानाहमूत्रकृच्छ्राश्मरीषु च ॥
वृद्ध्यसृग्दरमंदाग्निप्रमेहेषु निरूहणम् ॥१९॥

गुडतिंतिडिकाकुडवस्तु भवे
दपि चात्र मूत्रकुडवद्वितयम् ॥
मिसिरामठराढकसिंधुयुतं
न्निरूहणं हि विहितं मुनिभिः ॥२०॥

इतिदिष्टमात्रो निरूहबस्तिः ॥

अथ उत्तर वस्ति । लिंगयोनि वस्तिः ।

अतः परं प्रवक्ष्यामि वस्तिमुत्तरसंज्ञिनम् ॥
द्वादशांगुलमानेन नेत्रं वा समकर्णिकम् ॥
मालतीपुष्पवृंताभं छिद्रं सर्षपनिर्गमम् ॥२१॥

पञ्चविंशतिवर्षाणामधोमात्रा द्विकार्षिकी ॥
तदूर्ध्वं पलमात्रा हि स्नेहस्यापि भिषग्वरैः ॥
स्थितस्य जानुमात्रे च पीठेऽन्विष्य शलाकया ॥२२॥

स्निग्धया मेढ्रमार्गे च ततो नेत्रं नियोजयेत् ॥
अनुवासक्रमः सर्वोऽप्यन्यो वापि निवेदितः ॥२३॥

स्त्रीणां दशांगुल नेत्रं स्थूलं प्रोक्तं कनिष्ठया ॥
मुद्गच्छिद्राननं योज्यं योन्यंतश्चतुरंगुलम् ॥२४॥

द्व्यंगुल मूत्रमार्गे तु सूक्ष्मं नेत्रं नियोजयेत् ॥
मूत्रकृच्छ्रविकारेषु बालानामेकमंगुलम् ॥२५॥

योनिमार्गेषु नारीणां स्नेहमात्रा द्विपालिका ॥
द्विकार्षिकी च बालानां मूत्रमार्गे निरूपिता ॥२६॥

बस्तौ शुक्ररुजः पुंसां स्त्रीणामार्तवजा रुजः ॥
हन्यादुत्तरवस्तिस्तु नोचितो मेहिनां क्वचित् ॥२७॥

इति उत्तरवस्ति ॥

अथ नेत्र बस्तिः ।

नेत्रसंतर्पणार्थं च नेत्रबस्तिं प्रकल्पयेत् ॥
वातातपरजोहीनदेशे चोत्तानशायिनः ॥२८॥

नेत्रक्षेत्रं परित्यज्य सार्धं च द्व्यमंगुलम् ॥
सर्वतश्चाप्यथ मसीं जलं दत्वा प्रमर्दयेत् ॥२९॥

तेन पिंडेनालवालं दृढं संधिविवर्जितम् ॥
कृत्वा नवीनतैलेन शुक्लभागं द्रवेण वै ॥३०॥

पूरयेच्च यथा पक्ष्म पूरितं चैव जायते ॥
नेत्रे यत्नं प्रकुर्वीत विकाशस्तु तथैव च ॥३१॥

वस्तौ कफे संधिरोगे मात्रा पंचशतं विदुः ॥
कफे वाते कृष्णरोगे सप्तमात्राशतं मतम् ॥३२॥

दृष्टिरोगेष्वष्टशतमधिमंथे सहस्रकम् ॥
शुक्लेतिकुटिले ह्रस्वे स्याद् द्वादशशती मता ॥३३॥

पित्तरोगे नवशतं सहस्रं वातरोगिणाम् ॥
एकाहं वा त्र्यहं वापि पंचाहं वेष्यतेथवा ॥३४॥

द्रवं चापांगतो नीत्वा नीलद्रव्यं विलोक्य च ॥
सुखं निरीक्षयेत्तावन्नेत्रबस्तिविधिस्त्वयम् ॥३५॥

निर्वृतिर्व्याधिशांतिश्च क्रियालाघवमेव च ॥
सम्यग्योगे सुखं सुप्तिर्वैशद्यं वर्णपाटवम् ॥३६॥

शोफाश्रुपातगुरुता मौढ्यं स्यादतितर्पिते ॥
रूक्षाविलं सरक्तं च नेत्रं स्याद्धीनतर्पितम् ॥
रूक्षः स्निग्धः क्रमश्चात्र प्रयोज्यः संप्रदायतः ॥३७॥

इति नेत्रबस्तिः वृहदात्रेयात् ॥

अथ शिरोवस्तिः ।

अभ्यंगः परिषेकश्च पिचुर्वस्तिरिति क्रमात ॥
तैल मूर्ध्नि चतुर्धवं बलवचोत्तरोत्तरम् ॥३८॥
एतेषां च परा मात्रा यावत्स्रावश्च नेत्रयोः ॥
सूचीभिरिव तोदश्च केशभूमिषु जायते ॥३९॥
स्नेह पिचुप्लुतं कृत्वा प्रदद्यान्मस्तकोपरि ॥
ऊर्ध्वजत्रुविकारे च पिचुतैलं प्रशस्यते ॥४०॥
शिरोवस्तिश्चर्मकृतो द्विमुखो द्वादशांगुलः ॥
शिरःप्रमाणं त कृत्वा चर्मबंधेन यत्रयेत् ॥४१॥
अथवा संधिरोधं च चमसीभिः प्रयोजयेत् ॥
ततस्तैलं न्यसेत्तत्र यावत्संपूर्णता भवेत् ॥४२॥
तावद्धार्यस्तु यावत्स्यात्कर्णनासामुखस्रुतिः ॥
वेदनोपशमो वापि मात्राणां वा सहस्रकम् ॥४३॥
विना भोजनमेवात्र शिरोवस्तिर्विधीयते ॥
विमोच्याथ शिरोवस्तिं युगपत्तु विमर्दयेत् ॥४४॥

इति शिरोवस्ति. ।

अथ वस्ति मात्रा काल' ।

दक्षजानुकरावर्तं कुर्यात् छोटिकया युतम् ॥
निमेषोन्मेषकालो वा एषा मात्रा कृता बुधैः ॥४५॥

अवगाहन वस्ति विधि' ।

कटाहे मृन्मये पात्रे किंवा पक्वकशूलके ॥
ताम्रादिजेऽथवा पात्रे किंवा पाषाणसंभवे ॥४६॥
आकठमग्नो निविशेत् प्रहरं प्रातरेव वै ॥
रोमातेष्वनुकूपेषु स्थित्वा मात्राशतत्रयम् ॥४७॥

ततः प्रविशति स्नेहश्चतुर्भिर्गच्छति त्वचम् ॥
पंचभिश्च भजेद्रक्तं षड्भिर्मांसं प्रपद्यते ॥४८॥

मेदःस्थानं सप्तशतैरष्टभिश्चास्थिषु व्रजेत् ॥
नवभिर्याति मज्जानं ततो मात्रां न कारयेत् ॥४९॥

ततस्तु हरते रोगान्वातपित्तकफोद्भवान् ॥
स्रोतसां मार्दवकरः कफवातविनाशनः ॥५०॥

धातूनां पुष्टिजननो बलवर्णकरः परः ॥
वातरोगानशेषांश्च जयेदेष विशेषतः ॥५१॥

इति प्रयोग पारिजातात् ॥

अथ कर्णपूरण मात्राः समयः विधिः ।

रसाद्यैः पूरणं कर्णे भोजनात्प्राक्प्रशस्यते ॥
तैलाद्यैः पूरणं कर्णे भास्करेस्तमुपागते ॥५२॥

स्वेदयेत्कर्णदेशं तु पर्श्वितनशायिनः ॥
मूत्रैः स्नेहै रसैः कोष्णैः पूरयेच्च ततो भिषक् ॥५३॥

स्वस्थस्य पूरणे स्नेहैर्मात्राशतमवेदने ॥
शतत्रयं श्रोत्रगदे शिरोरोगे तथैव च ॥५४॥

कर्णं प्रपूरयेत्सम्यक्स्नेहाद्यैर्मात्रयोक्तया ॥
नोच्चैः श्रुतिर्न बाधिर्यं स्यान्नित्यं कर्णपूरणात् ॥५५॥

अथ अभ्यंगः कृष्णात्रयात् ।

निद्राकरो देहसुखश्चक्षुष्यः पादरोगहा ॥
पादत्वङ्मृदुकर्ता च पादाभ्यंगः प्रशस्यते ॥५६॥

मृदौ समे सुपर्यंके गतः स्वस्थतमो नरः ॥
उत्तानशायी संभूय तैलाभ्यंगं समाचरेत् ॥५७॥

तद्विशेषो नखाभ्यंगः शिरोनासाग्थितापजित् ॥
शिरोभ्यक्तेन तैलेन नांगं किंचिदुपस्पृशेत् ॥
तपो विद्यां धन चक्षुरायुः कीर्ति प्रजां हरेत् ॥
श्रोत्राक्षिवलद पित्तश्रमतृड्दाहमेहनुत् ॥५८॥

वाते पित्ते कफे रक्ते सन्निपाते तथैव च ॥
मदमूर्च्छाप्रलापेषु तृष्णाजीर्णज्वरेषु च ॥५९॥

संतप्ते सततजीर्णे मार्गश्रांते विशेषतः ॥
बाले वृद्धे च तरुणे तैलाभ्यंगः सदोत्तमः ॥६०॥

इतिश्री योगतरंगिणी संहितायां संक्षेपतो बस्तिविधिर्नामाष्टमस्तरंगः ॥८॥

॥ अथ नवमस्तरंगः ॥ ९ ॥

॥ अथ नस्यं पंचमं नस्य कर्म ॥५॥

नस्य लक्षण ।

नस्यं तत्कथ्यते धीरैर्नासाग्राह्यं यदौषधम् ॥
नावनं सूक्ष्मकर्मेति नस्यनामद्वयं मतम् ॥ १ ॥

नस्य भेदाः ।

नस्य भेदद्वयं प्रोक्तं रेचनं स्नेहनं तथा ॥
रेचनं कर्षणं प्रोक्तं स्नेहनं बृंहणं मतम् ॥ २ ॥

नस्यसमयः ।

कफपित्तानिलध्वंसे पूर्वमध्यापराह्णके ॥
दिनस्य गृह्यते नस्यं रात्रावप्युत्कटे गदे ॥ ३ ॥

नस्ये अयोग्याः ।

नस्यं त्यजेद्भोजनादौ दुर्दिने चापतर्पितः ॥
तथा नवप्रतिश्यायी गर्भिणी गरदूषितः ॥ ४ ॥
अजीर्णी दत्तबस्तिश्च पीतस्नेहोदकासवः ॥
क्रुद्धः शोकाभिभूतश्च तृषार्तौ वृद्धबालकौ ॥ ५ ॥
वेगावरोधी स्नातश्च स्नातुकामश्च वर्जयेत् ॥
अष्टवर्षस्य बालस्य नस्यकर्म समाचरेत् ॥ ६ ॥
अशीतिवर्षादूर्ध्वं च नावनं नैव दीयते ॥

नस्य विधिः ।

अथ वैरेचनं नस्यं ग्राह्यं तैलैः सुतीक्ष्णकैः ॥ ७ ॥
तीक्ष्णभेषजसिद्धैर्वा स्नेहैः क्वाथै रसैस्तथा ॥
नासिकारंध्रयोरष्टौ षट्चत्वारश्च बिन्दवः ॥ ८ ॥
प्रत्येकं रेचनं योज्यं मुख्यमध्याल्पमात्रया ॥
नस्यकर्मणि दातव्यं शाणैकं तीक्ष्णमौषधम् ॥ ९ ॥
हिंगु स्याद्यवमात्रं तु माषैकं सैंधवं मतम् ॥
क्षीरं चैवाष्टशाणं स्यात्पानीयं च त्रिकार्षिकम् ॥१०॥
कार्षिकं मधुरं द्रव्यं नस्यकर्मणि योजयेत् ॥
षडंगुला द्विवक्त्रा या नली चूर्णं तया धमेत् ॥
तीक्ष्णं कोलमितं वक्त्रवातैः प्रधमनं हितम् ॥११॥

अथ विरेचनं नस्यं ।

नस्यं स्याद् गुडशुंठीभ्यां पिप्पल्या सैन्धवेन वा ॥
जलपिष्टेन तेनाक्षिकर्णनासाशिरोगदाः ॥१२॥
मन्याहनुगलोद्भूता नश्यंति भुजपृष्ठजाः ॥
मधूकसारकृष्णाभ्यां वचामरिचसैन्धवैः ॥१३॥

नस्य कोष्णजलैः पिष्टं दद्यात्सज्ञाप्रबोधनम् ॥
अपस्मारे तथोन्मादे सन्निपातेपतंत्रके ॥१४॥

सैंधव श्वेतमरिचं सर्षपाः कुष्ठमेव च ॥
वस्तमूत्रेण पिष्टानि नस्यं तन्द्रानिवारणम् ॥१५॥

रोहीतमत्स्यपित्तेन भावितं मरिच वचा ॥
कंकोल चेति चूर्णं हि देय प्रधमनं बुधैः ॥१६॥

अथ बृहण नस्य प्रकार। भेदा।

मर्शश्च प्रतिमर्शश्च द्वौ भेदौ स्नेहने मतौ ॥
मर्शस्य तर्पणी मात्रा मुख्या शाणैः स्मृताष्टभिः ॥१७॥

मध्यमा च चतुःशाणैर्हीना शाणमिता मता ॥
एकैकस्मिंस्तु मात्रेय देया नासापुटे बुधैः ॥१८॥

अथ मर्शः।

मर्शस्य द्वित्रिवेलं च दृष्ट्वा दोषबलाबलम् ॥
एकांतरे द्व्यंतरे वा नस्यं दद्याद्विचक्षणः ॥१९॥

त्र्यहं पंचाहमथवा सप्ताहं वा सुयंत्रितः ॥
मर्शः शिरोविरेके च व्यापदो विविधाः स्मृताः ॥२०॥

दोषोत्क्लेशात्क्षयाच्चापि विज्ञेयास्ता यथाक्रम ॥
शिरोनासाक्षिरोगेषु सूर्यावर्तार्धभेदके ॥२१॥

दंतरोगे बले क्षीने मन्याबाहूर्ध्वसजे गदे ॥
मुखशोषे कर्णनादे वातपित्तगदे तथा ॥२२॥

अकालपलिते चैव केशश्मश्रुप्रपातने ॥
युज्यते बृहणं नस्यं स्नेहैर्वा मधुरद्रवै ॥२३॥

अथ मर्श प्रयोगाः ।

सशर्करं पयः पिष्टं भृष्टमाज्येन कुंकुमम् ॥
नस्यप्रयोगतो हन्याद्वातरक्तभवां रुजं ॥२४॥
भ्रूशंखाक्षिशिरःकर्णसूर्यावर्त्तार्द्धभेदकाः ॥
नस्यं स्यात्तिलतैलेन तथा नारायणेन वा ॥२५॥
माषादिना वा सर्पिर्भिस्तत्तद्भेषजसाधितैः ॥
तैलं कफे स्याद्वाते च केवले पवने वसा ॥२६॥
दद्यान्नस्यं सदा पित्ते सर्पिर्मज्जानमेव च ॥
माषात्मगुप्तारास्नाभिर्बलारुचकरोहिषैः ॥२७॥
कृतोऽश्वगंधया क्वाथो हिंगुसैंधवसंयुतः ॥
कोष्णो नस्यप्रयोगेण पक्षाघातं सकंपनम् ॥२८॥
जयेदर्धितवातं च मन्यास्तंभाववाहुके ॥

अथ प्रतिमर्शः ।

प्रतिमर्शस्य मात्रा तु द्वित्रिबिंदुमिता मता ॥२९॥
प्रत्येकशो नासिकयोः स्नेहेनेति विनिश्चितम् ॥
स्नेहे ग्रंथिद्वयं यावन्निमग्नं चोद्धृतं ततः ॥३०॥
तज्जन्याश्च स्रवेत्तस्यात् यः स बिंदुरुदाहृतः ॥
एवंविधैरष्टसंख्यैर्बिंदुभिः शाण उच्यते ॥३१॥
स देयो मर्शनस्येषु प्रतिमर्शे द्विबिंदुकः ॥
समया प्रतिमर्शस्य बुधैः प्रोक्ताश्चतुर्दश ॥३२॥
प्रभाते दंतकाष्ठांते गृहान्निर्गमने तथा ॥
व्यायामाऽध्वव्यवायांते विण्मूत्रांतेऽजने कृते ॥३३॥
कवलांते भोजनांते दिवा स्वप्नोत्थिते तथा ॥
वमनांते तथा सायं प्रतिमर्शः प्रयुज्यते ॥३४॥

प्रतिमर्शेन शाम्यंति रोगाश्चैवोर्ध्वजत्रुजाः ॥
विभीतनिंबकभारीशिवाःशेलुश्च काकिनी ॥३५॥
एकैकतैलनस्येन पलितं नश्यति ध्रुवम् ॥
वमनं रेचन नस्यं निरूहश्चानुवासनम् ॥
एतानि पंचकर्माणि कथितानि मुनीश्वरैः ॥३६॥
स्वेदं च केश्चिदुदितं प्रथम पंचकर्मसु ॥
वस्ति कर्मद्वयं चैकं कर्मोक्त भिषगुत्तमैः ॥३७॥

इति श्री योगतरंगिणी संहितायां नस्यविधिर्नाम नवमस्तरंगः ॥९॥

॥ इति पंचकर्माणि ॥

॥ अथ दशमस्तरंगः ॥१०॥

॥ अथ धूमपानविधिः ॥

धूम प्रकाराः ।

धूमस्तु षड्विधः प्रोक्तो बृंहणः शमनस्तथा ॥
रेचनः कासहा चैव वामनो व्रणशोधनः ॥ १ ॥
शमनस्य तु पर्यायौ मध्यः प्रायोगिकस्तथा ॥
बृंहणस्य तु पर्यायौ स्नेहनो मृदुरेव च ॥ २ ॥
रेचनस्य च पर्यायौ शोधनस्तीक्ष्ण एव च ॥

धूमाय अयोग्या ।

अधूमार्हाश्च खल्वेते श्रांतो भीतश्च दुःखितः ॥ ३ ॥
दत्तबस्तिर्विरिक्तश्च रात्रौ जागरितस्तथा ॥
पिपासितश्च दाहार्तस्तालुशोषी तथोदरी ॥ ४ ॥

शिरोभितापी तिमिरी छर्द्याध्मानप्रपीडितः ॥
क्षतोरस्कः प्रमेहार्त्तः पांडुरोगी च गर्भिणी ॥ ५ ॥

रूक्षः क्षीणोभ्यवहृतक्षीरक्षौद्रघृतासवः ॥
भुक्तान्नदधिमत्स्यश्च बालो वृद्धः कृशस्तथा ॥ ६ ॥

अकाले चातिपीतश्च धूमः कुर्यादुपद्रवान् ॥
धूमो द्वादशभिर्वर्षादीयतेऽशीतितो न च ॥ ७ ॥

धूमगुणाः ।

कासश्वासप्रतिश्यायमन्याहनुशिरोरुजः ॥
वातश्लेष्मविकारांश्च हन्याद्धूमः सुयोजितः ॥ ८ ॥

धूमप्रयोगात्पुरुषः प्रसन्नेंद्रियवाङ्मनाः ॥
दृढकेशनखश्मश्रुः सुगंधिवदनो भवेत् ॥ ९ ॥

धूमपान विधिः ।

वदनेन पिबेद्धूमं वदनेनैव संत्यजेत् ॥
नासिकाभ्यां ततः पीत्वा मुखेनैव वमेत्सुधीः ॥१०॥

शरावसंपुटे क्षिप्त्वा कल्कमंगारदीपितम् ॥
छिद्रे नेत्रं निवेश्याथ व्रणं तेनैव धूपयेत् ॥११॥

एलादिकल्कं शमने स्निग्धं सर्जरसं मृदौ ॥
रेचने तीक्ष्णकल्कं च कासघ्ने क्षुद्रिकोषणम् ॥१२॥

वामने स्नायुचर्माद्यं दद्याद्धूमस्य पानकम् ॥
व्रणे निंबवचाद्यं च धूमपानं प्रशस्यते ॥१३॥

अन्योऽपि धूमो गेहेषु कर्तव्यो रोगशांतये ॥

अथ अपराजित धूपः ।

मयूरपिच्छ निम्बस्य पत्राणि बृहतीफलम् ॥१४॥
मरिचं हिंगु मांसी च बीज कार्पाससंभवम् ॥
छागनिर्मोणि निर्मोकं विष्ठा वैडालिकी तथा ॥१५॥
गजदंतश्च चूर्णं हि किंचित् घृतविमिश्रितम् ॥
गृहेषु धूपनं दत्तं सर्वान्व्यालग्रहाञ्जयेत् ॥
पिशाचान् राक्षसान्हत्वा सर्वज्वरहरं भवेत् ॥१६॥

धूमनली नेत्राणि ।

नेत्राणि धातुजान्याहुर्नलवंशभवान्यपि
चतुर्विंशत्यंगुलानि खडानि त्रीणि युक्तितः ॥
योजितानि त्रिखडेयं नलिका नेत्रसंज्ञका ॥१७॥

इतिश्री योगतरंगिणी संहितायां धूमपानविधिर्नाम दशमस्तरंगः ॥१०॥

॥ अथ एकादशस्तरंगः ॥११॥

॥ अथ रक्तस्रुतिः ॥

समयः ।

शरत्काले स्वभावेन कुर्याद्रक्तस्रुतिं नरः ॥
त्वग्दोषग्रंथिशोफाद्या न स्यू रक्तस्रुतेर्यतः ॥ १ ॥

रक्ते पंचमहाभूत तत्वं ।

विस्रता द्रवता रागश्चलनं विलयस्तथा ॥
भूम्यादिपंचभूतानामेते रक्ते गुणाः स्मृताः ॥ २ ॥

शुद्ध रक्त रूपं ।

इंद्रगोपप्रभं ज्ञेयं प्रकृतिस्थमसंहनम् ॥
अन्यत्सर्वमशुद्धं हि विज्ञेयं रुधिरं नृणाम् ॥ ३ ॥

रक्तस्राव योग्याः ।

शोथे दाहेंगपाके च रक्तवर्णेऽसृजः स्रुतौ ॥
वातरक्ते तथा कुष्ठे सपीडे दुर्जयेऽनिले ॥ ४ ॥
पाणिरोगे श्लीपदे च विषदुष्टे च शोणिते ॥
ग्रंथ्यर्बुदापचीक्षुद्ररोगरक्ताधिमंथिषु ॥ ५ ॥
विदारीस्तनरोगेषु वपुषश्चापि गौरवे ॥
रक्ताभिष्यंदतंद्रायां पूतिघ्राणास्यदेहके ॥ ६ ॥
यकृत्प्लीहविसर्पेषु विद्रधौ पिडिकोद्गमे ॥
कर्णौष्ठघ्राणवक्त्राणां पाके दाहे शिरोरुजे ॥ ७ ॥
उपदंशे रक्तपित्ते रक्तस्रावः प्रशस्यते ॥
एषु रोगेषु शृंगैर्वा जलौकालाबुकैरपि ॥ ८ ॥
अथवापि शिरावेधै रक्तमोक्षः प्रशस्यते ॥

रक्तस्रावे अयोग्याः ।

पंचकर्मविशुद्धस्य पीतस्नेहस्य चार्शसाम् ॥ ९ ॥
सर्वांगशोथयुक्तानामुदरश्वासकासिनाम् ॥
छर्द्यतीसारजुष्टानां पांडूनां स्विन्नदेहिनाम् ॥१०॥
ऊनषोडशवर्षस्य गतसप्ततिकस्य च ॥
आघातस्रुतरक्तस्य शिरामोक्षो न शस्यते ॥११॥

रक्तस्राव साधन गुणाः

गृह्णाति शोणितं शृंगं दशांगुलमितं बलात् ॥
जलौकाहस्तमात्रं तु तुंबं च द्वादशांगुलम् ॥१२॥
पदमंगुलमात्रं तु शिरा सर्वांगशोधनी ॥
रक्ते दुष्टेऽवशिष्टेपि व्याधिर्नैव प्रकुप्यति ॥१३॥
अतः स्थेयं सावशेषं रक्ते नाऽतिक्रमो हितः ॥

अतिस्रावस्य चिन्ह ।

आंध्यमाक्षेपकं तृष्णां तिमिरं च शिरोरुजम् ॥१४॥
पक्षाघातं श्वासकासौ हिक्कां दाहं च पांडुताम् ॥
कुरुतेऽतिस्रुत रक्तं मरणं वा करोति हि ॥१५॥
देहस्योत्पत्तिरसृजा देहस्तेनैव धार्यते ॥
विना तेन व्रजेज्जीवो रक्षेद्रक्तमतो बुधः ॥१६॥

अति रक्तस्राव चिकित्सा ।

शीतोपचारैः कुपिते स्रुतरक्तस्य मारुते ॥
कोष्णेन सर्पिषा शोथं श्वयथु परिषेचयेत् ॥१७॥
क्षीणस्यैणशशोरभ्रहरिणच्छागमांसजः ॥
रसः समुचितः पाने क्षीरं वा षष्टिका हिता ॥१८॥

रक्तस्राव गुणा ।

पीडाशांतिर्लघुत्वं च व्याधेरुद्रेकसंक्षयम् ॥
मनःस्वास्थ्यं भवेच्चिन्हं सम्यग्विस्राविते सृजि ॥१९॥

रक्तस्रावे पथ्य ।

व्यायाममैथुनक्रोधशीतस्नानमवातकान् ॥
एकासन दिवा निद्रां क्षाराम्लकटुभोजनम् ॥२०॥
शोक वापि मदाजीर्णं त्यजेद्यावद्वल भवेत् ॥
फेनि रूक्ष भवेत्सूचिनिस्तोदि पवनादसृक् ॥२१॥
विसृनापीतमाश्यान कोष्णं पित्तेन जायते ॥
मन्दगं बहुलं स्निग्धं मांसपेशीनिभ कफात् ॥२२॥
द्विदोषदुष्ट संश्लिष्टं त्रिदुष्ट पूतिगंधिकम् ॥
सर्वलक्षणसपन्न कांजिकाभ च जायते ॥२३॥
विषदुष्ट भवेच्छ्याव नासिकोन्मार्गग तथा ॥
विस्रं कांजिकसंकाश सर्वकुष्ठकर भवेत् ॥२४॥

इति शार्ङ्गधरात् ॥

इतिश्री योगतरंगिणी संहितायां रुधिरमोक्षविधिर्नामैकादशस्तरंग ॥११॥

॥ अथ द्वादशस्तरंगः ॥१२॥

॥ अथ नाडीपरीक्षा ॥

सद्यः स्नातस्य भुक्तस्य तथा स्नेहावगाहिनः ॥
क्षुत्तृषार्तस्य सुप्तस्य सम्यङ् नाडी न बुध्यते ॥ १ ॥

अंगुष्ठमूलमार्गे या धमनी जीवसाक्षिणी ॥
तच्चेष्टया सुखं दुःखं ज्ञेयं कायस्य पंडितैः ॥ २ ॥

स्त्रीणां भिषग्वामहस्ते पादे वामे च यत्नतः ॥
शास्त्रेण संप्रदायेन तथा स्वानुभवेन वै ॥ ३ ॥

एकांगुलं परित्यज्य हस्तादंगुष्ठमूलतः ॥
परीक्षेयत्नश्चासावभ्यासादेव जायते ॥ ४ ॥

अग्रे वातवहा नाडी मध्ये वहति पित्तला ॥
अंते श्लेष्मविकारेण नाडी ज्ञेया सदा बुधैः ॥ ५ ॥

सर्पजलौकादिगतिं वदंति विबुधाः प्रभंजने नाडीम् ॥
पित्तेन काकलावकमंडूकाद्यैस्तथा चपलाम् ॥ ६ ॥

राजहंसमयूराणां पारावतकपोतयोः ॥
कुक्कुटस्य गतिं धत्ते धमनी कफसंगिनी ॥ ७ ॥

मुहुः सर्पगतिं नाडीं मुहुर्भेकगतिं तथा ॥
वातपित्तसमुद्भूतां तां वदंति विचक्षणाः ॥ ८ ॥

सर्पहंसगतिं तद्वद्वातश्लेष्मगतिं वदेत् ॥
हरिहंसगतिं धत्ते पित्तश्लेष्मान्विता धरा ॥ ९ ॥

काष्ठकुट्टो यथा काष्ठं कुट्टते चातिवेगतः ॥
स्थित्वा स्थित्वा तथा नाडी सन्निपाते भवेद्ध्रुवम् ॥१०॥

इति वृद्धहारीतात् ॥

स्पदते चैकमानेन त्रिंशद्वारं यदा धरा ॥
स्वस्थानेन तदा नूनं रोगी जीवति नान्यथा ॥
स्थित्वा स्थित्वा वहति या सा ज्ञेया प्राणघातिनी ॥११॥

जिह्मं जिह्मं कुटिलकुटिलं व्याकुल व्याकुल वा
स्थित्वा स्थित्वा वहति धमनी याति नाश च सूक्ष्मा ॥
नित्यं कठे स्फुरति पुनरप्यंगुलीनां स्पृशेद्वा
भावैरेव बहुविधनरैः सन्निपातास्साध्या ॥१२॥

पूर्व पित्तगतिं प्रभञ्जनगतिं श्लेष्माणमाविभ्रती
स्वस्थानाद्भ्रमण मुहुर्विदधती चक्राधिरूढेव या ॥
भीमत्वं दधती कलापिगतिका सूक्ष्मत्वमातन्वती
नो साध्यां धमनीं वदति मुनयो नाडीगतिज्ञानिनः ॥१३॥

गंभीरा या भवेन्नाडी सा भवेन्मांसवाहिनी ॥
ज्वरवेगेन धमनी सोष्णा वेगवती भवेत् ॥१४॥

कामात्क्रोधाद्वेगवहा क्षीणा चिन्ताभयप्लुता ॥
मन्दाग्नेः क्षीणधातोश्च नाडी मन्दतरा भवेत् ॥१५॥

असृक्पूर्णा भवेत्कोष्णा गुर्वी सामा गरीयसी ॥
लघ्वी वहति दीप्ताग्नेस्तथा वेगवती मता ॥१६॥

चपला क्षुधितस्यापि तृप्तस्य वहति स्थिरा ॥
शीघ्रा नाडी मलापाते दिनार्द्धेऽग्निसमो ज्वरः ॥१७॥

दिनैकं जीवितं तस्य द्वितीये म्रियते भृशम् ॥
मरणे मरुकस्येव भवेदेकदिनेन च ॥१८॥

इतिश्री योगतरंगिणी संहितायां नाडीपरीक्षानाम द्वादशस्तरंगः ॥१२॥

॥ अथ त्रयोदशस्तरंगः ॥१३॥

॥ अथ जिह्वापरीक्षा ॥

पीता जिह्वा खरस्पर्शा स्फुटिता मारुताधिके ॥
रक्ता श्यामा भवेत्पित्ते कफे शुभ्रातिपिच्छला ॥१॥

कृष्णा सकंटका शुष्का सन्निपाताधिके तु सा ॥
मिश्रिते मिश्रिता ज्ञेयाऽरिष्टे लक्षणवर्जिता ॥ २ ॥

इतिश्री योगतरंगिणी संहितायां जिव्हापरीक्षानाम त्रयोदशस्तरंगः ॥१३॥

॥ अथ चतुर्दशस्तरंगः ॥१४॥

॥ अथ मूत्रपरीक्षा ॥

परीक्षा विधिवत्कार्या रोगिमूत्रस्य तत्त्वतः ॥
तृणेन दत्वा तैलस्य बिंदुं तत्रातिलाघवात् ॥ १ ॥

विकाशि चेत्तैलमथाशु मूत्रे
साध्यः स रोगी न विकाशि चेत्तत् ॥
स्यात्कष्टसाध्यस्तलगे त्वसाध्यो
नागार्जुनेनैव कृता परीक्षा ॥ २ ॥

अथ चर्पटीतः ।

नीलं च रूक्षं कुपिते च वायौ
पीतारुणं तैलसमं च पित्ते ॥
स्निग्धं कफात्पल्वलवारितुल्यं
स्निग्धोष्णरक्तं रुधिरप्रकोपे ॥ ३ ॥

मातुलुंगरसाभासं सौवीराभं जलोपमम् ॥
प्रपाकरहितानां च मूत्र चंदनसन्निभम् ॥ ४ ॥
अजीर्णप्रभवे रोगे मूत्रं तंदुलतोयवत् ॥
नवज्वरे धूम्रवर्णं बहुमूत्रं प्रजायते ॥ ५ ॥

पित्तानिले धूम्रजलाभमुष्णं
श्वेतं मरुत्श्लेष्मणि बुद्बुदाभं ॥
तच्छ्लेष्मपित्ते कलुषं सरक्तं
जीर्णज्वरेसृक्सदृशं च पीनम् ॥ ६ ॥
स्यात्सन्निपातादपि मिश्रवर्णं
तूर्णं विधिज्ञेन विचारणीयं ॥

पूर्वाशां वर्धते बिंदुर्यदा शीघ्रं सुखी भवेत्
दक्षिणाशां ज्वरो ज्ञेयस्तथारोग्यं क्रमाद्भवेत् ॥ ७ ॥
उत्तरस्यां यदा बिंदोः प्रसरः संप्रजायते ॥
अरोगिता तदा नून पुरुषस्य न संशयः ॥ ८ ॥
वारुण्यां प्रसरेद् बिंदुः सुखारोग्यं तदा दिशेत् ॥
ऐशान्यां वर्धते बिंदुर्ध्रुवं मासेन नश्यति ॥ ९ ॥
आग्नेय्यां तु तथा ज्ञेयं नैर्ऋत्यां प्रसरेद्यदा ॥
छिद्रितं च भवेत्पश्चाद् ध्रुवं मरणमेव च ॥१०॥
वायव्यां प्रसरेद्बिंदुः सुधापोपि विनश्यति ॥
विकाशितं हलं कूर्मसैरिभाकारसंयुतम् ॥११॥
करंडमंडल वापि नरं मूर्द्धविवर्जितम् ॥
गात्रखंडं च शस्त्रं च खङ्गं मुशलपट्टिशम् ॥१२॥
शरं च लगुडं चैव तथैव त्रिचतुष्पथम् ॥
बिंदुरूपं नरो दृष्ट्वा न कुर्वीत क्रियां क्वचित् ॥१३॥

हंसकारंडताडागं कमलं गजचामरम् ॥
छत्रं च तोरणं हर्म्यं सुपर्णं दृश्यते यदि ॥१४॥

आरोग्यता ध्रुवं ज्ञेया तदा कुर्यात्प्रतिक्रियाम् ॥
तैलबिंदुर्यदा मूत्रे चालनीसदृशो भवेत् ॥१५॥

कुलदोषो ध्रुवं ज्ञेयः प्रेतदोषसमुद्भवः ॥
नराकारं प्रजायेत किंवा स्यान्मस्तकद्वयम् ॥१६॥
भूतदोषं विजानीयाद् भूतविद्यां तदाचरेत् ॥

इतिश्री योगतरंगिणी संहितायां मूत्रपरीक्षानाम चतुर्दशस्तरंगः ॥१४॥

॥ अथ पंचदशस्तरंगः ॥१५॥

॥ अथ मलपरीक्षा ॥ रुद्रतंत्रात् ॥

पुटितं फेनिलं रूक्षं धूमलं वाततो मलम् ॥
परितपीतं च दुर्गंधि पित्तादुष्णं श्लथं भवेत् ॥ १ ॥

शीतं शुल्कं मलं सांद्रं स्निग्धं स्यात्कफकोपतः ॥
वातश्लेष्मविकारे च जायते कपिशं मलम् ॥ २ ॥

बद्धं संत्रुटितं पीतं श्यामं पित्तानिलाद्भवेत् ॥
पीतश्यावं श्लेष्मपित्तादोषत्सांद्रं च पिच्छलम् ॥ ३ ॥

श्यामं त्रुटितपीताभं बद्धं श्वेतं त्रिदोषतः ॥
दुर्गंधः शिथिलश्चैव विष्ठोत्सर्गो यदा भवेत् ॥ ४ ॥

तदाऽजीर्णं मलं वैद्यैर्दोषज्ञैः परिभण्यते ॥
कपिलं गुटिकायुक्तं यदि वर्चोऽवलोक्यते ॥ ५ ॥

प्रक्षीणमलदोषेण दूषितः परिकथ्यते ॥
सित महत्पूतिगंधं मलं ज्ञेयं जलोदरे ॥ ६ ॥

श्यामं क्षये त्वामवाते पीतं सकटिवेदनम् ॥
अतिकृष्णं चातिशुभ्रमतिपीतमथारुणम् ॥
मरणाय मल किंतु भृशोष्णं मृत्यवे ध्रुवम् ॥ ७ ॥

इतिश्री योगतरंगिणी संहितायां मलपरीक्षानाम पंचदशस्तरंगः ॥१५॥

॥ अथ षोडशस्तरंगः ॥१६॥

॥ अथ दृक्परीक्षा ॥ नेत्रपरीक्षा ॥

रूक्षा धूम्रा तथा रौद्रा चला चांतर्ज्वलत्यपि ॥
दृष्टिर्यदा तदा वाताद् रोगं रोगविदो विदुः ॥ १ ॥

दीपद्वेषि च संतप्तं पीतं पित्ते च लोचनम् ॥
ज्योतिर्हीने च शुक्लाभे जलपूर्णे सगौरवे ॥
मंदावलोकने नेत्रे भवतः कफकोपतः ॥
जलार्द्रं ज्योतिषा हीनं स्निग्ध मद कफेन तत् ॥ २ ॥

द्वंद्वदोषे भवेन्मिश्रवर्णं तूर्णं विलोचनम् ॥
श्यामवर्णं च निभुग्न तंद्रामोहसमन्वितम् ॥ ३ ॥

रौद्रं च रक्तवर्णं च भवेच्चक्षुस्त्रिदोषतः ॥
एकं चक्षुर्यदा भीमं द्वितीयं मिलितं भवेत् ॥ ४ ॥

त्रिमिर्दिनैस्तदा रोगी स याति यममंदिरम् ॥
ज्योतिर्विहीनं सहसा रोगिणो यस्य लोचनम् ॥ ५ ॥

ईषत्कृष्णं स नियतं प्रयाति यमशासनं ॥
सरक्तं कृष्णवर्णं च रौद्रं च प्रेक्षते तथा ॥ ६ ॥
इति लिंगैर्विजानीयान्मृत्युरेव न संशयः ॥
एकदृष्टिरचैतन्यो भ्रमस्फुरिततारकः ॥
एकरात्रेण नियतं परलोकपथं व्रजेत् ॥ ७ ॥

यामलात् ॥

शुष्कौष्ठः श्यामकोष्ठोप्यसितरदतातिःशीतनासाग्रदेशः
शोणाक्षश्चैकनेत्रो लुलितकरपदः श्रोत्रपातित्वयुक्तः ॥
शीतश्वासोथ वोष्णश्वसनसमुदयः शीतगात्रः सकंपः
सोद्वेगो निष्प्रपञ्चः प्रभवति मनुजः सर्वथा मृत्युकाले ८॥

इति श्री योगतरंगिणी संहितायां दृक्परीक्षा नाम षोडशस्तरंगः ॥१६॥
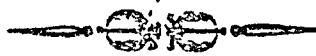
॥ अथ सप्तदशस्तरंगः ॥१७॥

॥ अथ धातुशोधनम् । तत्र प्रथमं पारदः ॥

रस प्रभावः ॥

जयेदयं संहितयाप्यजेया-
न्गदान्महापातकजान्क्षणेन ॥
शुद्धस्ततः शोधनमस्य कार्य-
मार्यैरशुद्धो न सुखाय सूतः ॥ १ ॥
अंतःसुनीलो बहिरुज्ज्वलो यो
मध्यान्हसूर्यप्रतिमप्रकाशः ॥
शस्तोथ धूम्रः परिपांडुरश्च
चित्रो न योज्यो रसकर्मसिद्धैः ॥ २ ॥

रसे दोषाः ॥

स्वाभाविकाः सप्तगुणा रसेस्मि-
न्नागाग्निवंगा विषजा मलोत्थाः ॥
नागाद्भवेयुर्गलगंडरोगाः
कुष्ठ च वंगान्मरणं विषेण ॥ ३ ॥

मलेन मूर्छा दहनेन दाहो
वीर्यच्युतिः स्यादसह्यचलत्वात् ॥
स्यात्कञ्चुकाज्जाड्यमथोदराणि
ततो विशुद्धोभिमतो रसेंद्रः ॥ ४ ॥

शुभेह्नि हृदि परिचिंत्य सम्यक्
कुर्यात्कुमारीवटुकार्चनं च ॥
विधाय रक्षां विधिमंत्रपूतां
कर्मारभेदस्य रसस्य तज्ज्ञः ॥ ५ ॥

रस शोधनं ॥

निशेष्टिकाधूमरजोम्लपिष्टो
विकञ्चुकः स्याद्दिवसेन सोर्णः ॥
वरारनालानलकन्यकाभिः
सञ्चूर्णनाभिर्मर्दितस्तु पूतः ॥ ६ ॥

स्विन्नो वराद्यैरथ दोलिकायां
दिनैर्मलाद्यै रहितस्त्रिभिः स्यात् ॥
तत्र्यशतांशेन विमर्द्य सूतं
जवीरनीरेण ततः प्रगाढम् ॥ ७ ॥

संरुध्य भांडद्वयगर्भमध्ये
पिष्टिं ततः संपुटमव्रणं तत् ॥
निवेश्य चुल्ल्यां तु शनैः प्रदीप-
प्रमाणमग्निं च तले प्रदध्यात् ॥ ८ ॥

ततः शिरस्थस्य जलार्द्रमेकं
वस्त्रं क्षिपेदल्पमनुष्णमेव ॥
वाङ्गयेणोरगवंगसंज्ञौ
न स्तः प्रदिष्टो ह्ययमूर्ध्वपातः ॥९॥

कदर्थनेनैव नपुंसकत्वं
प्रादुर्भवेदस्य रसस्य पश्चात् ॥
बलप्रकर्षाय च दोलिकायां
स्वेदो जले सैंधवचूर्णगर्भे ॥१०॥

वंध्याहिनेत्रांबुजमार्कवानां
सतिक्तकानां द्रवसंप्रपक्वे ॥
स्विन्नस्थिरत्वं लभतेऽग्नितोऽथे
सकांजिके दीप्तिमुखोऽतितीक्ष्णः ॥११॥

रसविद्या ध्रुवं गोप्या मातृगुह्यमिव ध्रुवं ॥
भवेद्वीर्यवती गुप्ता निर्वीर्या स्यात्प्रकाशनात् ॥१२॥

रसगुणाः ।

यः श्लेष्मानिलपित्तदोषशमनो रोगापहो मूर्छितः
पंचत्वं च गतो ददाति विपुलं राज्यं चिरं जीवितं ॥
बंद्धे खे गमनं करोति विदुषां विद्याधरत्वं नृणां
सोऽयं पातु सुरासुरेन्द्रनमितः श्रीसूतराजः प्रभुः ॥१३॥

रसे सप्त कंचुकाः तेषां दोषाः ।

मृत्पाषाणजलाख्याश्च अलीकोपालिका तथा ॥
श्यामा कपालिका चेति पारदे सप्त कंचुकाः ॥१४॥

मलदोषो वह्निदोषो भूदोषोन्मत्तदोषकौ ॥
शैलदोषश्च पंचानां दोषाः सूते समीरिताः ॥१५॥

अथ षड्गुणबलिजारणविधिः ।

मूर्छादिकर्मत्रितयं मुखं च
सूताद्बलेः षड्गुणजारणं च ॥
अजीर्णनाशं च यथातथ च
ब्रूमोऽस्य रूप प्रतिभानुरूपम् ॥३२॥

सूतप्रमाणं निकुताख्ययंत्रे
दत्वा बलिं मृद्घटिकेऽल्पभांडे ॥
तैलावशेषेऽत्र रसं नियुंज्या-
न्मग्नार्द्धकाय प्रविलोक्य भूयः ॥३३॥

आषड्गुण गधकमल्पमल्प
क्षिपेदसौ जीर्णबलिर्बली स्यात् ॥
रसेषु सर्वेषु नियोजनीय-
मसंशयं हंति गदान् जवेन ॥३४॥

अथ गधक जारणाय घृत ।

विलोलिते स्वर्णजलैर्विशुष्क-
वस्त्रेऽथ दत्वा नवनीतगर्भे ॥
चूर्णं शिलागंधकतालकानां
सपन्नगानां समभागिकानाम् ॥३५॥

कर्षप्रमाणं च ततोऽस्य वर्तिं
प्रज्वालयेत्तद्गलितं घृत स्यात् ॥
अनेन कुर्याद्रसनायकस्य
सर्वत्र पिष्टिं बलिजारणाय ॥३६॥

अथ भस्मसूतः ।

भागो रसस्य त्रय एव भागा
गंधस्य भागः पवनाशनस्य ॥
संमर्द्य गाढं सकलं सुभांडे
तां कज्जलीं काचकृते निदध्यात् ॥३७॥

संरुध्य मृत्कर्पटकैर्घटीं तां
मुखे सचूर्णां खटिकां च दत्वा ॥
क्रमाग्निना त्रीणि दिनानि पक्त्वा
तां वालुकायंत्रगतां ततः स्यात् ॥३८॥

बंधूकपुष्पारुणसीशजस्य
भस्म प्रयोज्यं सकलामयेषु ॥
निजानुपानैर्मरणं जरां च
हंत्यस्य वल्लक्रमसेवनेन ॥३९॥

निखिलक्षयभक्षणदक्षतरं
व्रणकुष्ठभगंदरमेहहरम् ॥
बलधीधृतिशुक्रसमृद्धिकरं
रसभस्म समस्तगदापहरम् ॥४०॥

अथ रसमूर्च्छनं ।

इष्टकायां कूपकायां सुखातं चतुरंगुलम् ॥
कृत्वा काचेन संलिप्तं तस्यांतः पिष्टिकां क्षिपेत् ॥४१॥
निंबूद्रवार्द्रो गंधोऽस्य देयो मूर्ध्नि द्विकार्षिकः ॥
मुखं संरुध्य शुष्केथ दद्याल्लावपुटं ततः ॥४२॥
शीते तस्योपरि पुनः पुटं देयं ततोऽधिकम् ॥
एवं द्वित्रिचतुः कुर्याद् यावज्जीर्यति गंधकः ॥४३॥

जीर्णे पुनरस्नथा देयो यावज्जीर्यंति पड्गुणः ॥
मूर्छितो विधिनानेन भवत्येव रसेश्वरः ॥४४॥

अथ हिंगुलाकृष्टिः ।

जंवीरनिंवुनीरेण मर्दितो हिंगुलर्दिनम् ॥
ऊर्ध्वपातनयन्त्रेण ग्राह्यः स्यान्निर्मलो रसः ॥४५॥

कंचुकैर्नागवगाद्यैर्विमुक्तो रसकर्मणि ॥
योऽयः सांगुपट्टः स्विन्नः पूर्वाभावे भिषग्वरैः ॥४६॥

अथ रसवन्धनं । १

चलान्दरवभूधात्रीसस्वघ्नीजिह्वधिकांबुभिः ॥
मर्दितस्तुर्यभागेन गंधकेन समन्वितः ॥४७॥

वेष्टितो हिंगुना फल्गुक्षीराक्तेन दधित्थजे ॥
चूर्णगर्भे प्रदेयोऽयमंतर्लवणमीशजः ॥४८॥

प्रध्मातः शनकैर्वद्धो रसो भवति नान्यथा ॥
वक्त्रस्थो वपुषः स्थैर्य करोत्यखिलरोगजित् ॥४९॥

अथ रसवन्धन । २

राजिकाकलिनीकंदतुलसीरक्तचित्रकैः ॥
मुखालेपस्तु कर्तव्यः क्षणार्धे वद्धसूतकः ॥५०॥

अथ रसस्य मुखकरण ।

सास्यो रसः स्यात्पटुशिग्रुतुल्यैः
सराजिकैः सोषणकैस्त्रिरात्रम् ॥
पिष्टस्तथा स्विन्नतनुः सुवर्ण-
मुखानयं खादति सर्वधातून् ॥५१॥

अथ अजीर्णनाशनम् ।

अजीर्णनाशाय सभूर्ज्जपत्रे
स्वेद्यस्त्रिरात्रं पटुकांजिकेऽथ ॥
मात्राधिकश्चेत्समतामुपैति
यावन्न तावद् ग्रसनाधिकारी ॥५२॥

अथ सुवर्णजारणम् ।

सच्छिद्रं सलिलापूर्णभांडवक्त्रे शरावकम् ॥
दत्वा छिद्रे पक्वमूषा देया नीराविये।गिनी ॥५३॥
तस्यां विडान्वितः सूतो देयो लोहावृते मुखे ॥
शनैर्धमातो ग्रसत्येष कांचनं सूक्ष्मतां गतम् ॥५४॥
स्वल्पं सपित्ततापार्कं शनैर्देयं समावधि ॥
देहार्थं धातुवादार्थं प्रयच्छंत्यल्पबुद्धयः ॥५५॥

अथ लवणसेदी सुधानिधिः विषघ्नः ।

पिष्टं पांशुपटु प्रगाढममलं
वज्र्यंबुना चैकशः ।
सूतं धातुयुतं फटीकवलितं
तं संपुटे रोधयेत ॥
अंतःस्थं लवणस्य तस्य च तले
प्रज्वाल्य वह्निं हठात् ।
पलं ग्राह्यमथेंदुकुंदधवलं
भस्मोपरिस्थं शनैः ॥५६॥

तद्वल्लछितयं लवंगसहित
प्रातः प्रभुक्तं च यैं ।
रुर्ध्वं रेचयति क्रियामसकृ-
त्पेयं जल शीतलम् ॥
एतद्धंति च वत्सरावधि विषं
षाण्मासिकं मासिकं ।
शैलोत्थं गरलं मृगेंद्रकुटिलो-
द्भूतं च तात्कालिकम् ॥५७॥

स्तंभनी रस गुटी ।

उत्कृत्य मूलं विषज विदध्याद्
गर्भस्थ सूतं कनकांशपिष्ट ॥
संवेष्टयेत्कोलभवेन तत् तु
मांसेन पश्चाद्विपचेद् क्रियामम् ॥५८॥
धत्तूरबीजोद्भवतैलगर्भे
संबद्धतां याति मुखस्थितोयम् ॥
संभोगकाले दृढतां करोति
वीर्यस्य दुग्ध भजतां नराणाम् ॥५९॥

अथ रससिन्दूरः तद्गुणाः रसतराजात् ।

सूतः पचपलः स्वदोषरहित
स्तत्तुल्यभागो बलि ।
द्वौ टंकौ नवसादरस्य तुवरी
कर्ष च समर्दितः ॥
कूप्यां काचकृतो स्थितश्च सिकता-
यंत्रे त्रिभिर्यामैः ।
पक्वो वह्निभिरुद्भवत्यरुणभाः
सिंदूरनामा रसः ॥६०॥

वाते सक्षौद्रपिप्पल्यपि च कफरुजि
त्र्यूषणं साग्निचूर्णं ।
पित्ते सैला सिता स्याद् व्रणवति बृहती
नागराद्रीम्बुतांबु ॥
पुष्टौ साज्या त्रियामा हरनयनफला
शाल्मलीपुष्पवृन्तं ।
किंवा कांताललाटाभरणरसपतेः
स्यादनूपानमेतत् ॥६१॥

अपहरति रोगवृंदं द्रढयति कायं महद्बलं कुरुते ॥
शुक्रशतानि च सूते सिंदूराख्यो रसः पुंसाम् ॥६२॥

स्मरस्यायुर्नाना गद दहन दावानलशिखा
सखा वन्हेस्तेजोबलमुचिरतायल्लिमुदिरः ॥
अपि प्रौढस्त्रीणामतुलबलहारी त्रिभुवने ॥
रसः सिंदूराख्यः सकलरसराजो विजयते ॥६३॥

अथ कर्पूररसः बौद्ध सर्वस्वात् ।

यंत्रे सुसिद्धे डमरूसमाख्ये
निधाय सूतस्य पलानि पंच ॥
वल्मीकमृत्स्ना खटिकेष्टिकानां
सगैरिकाणां तुवरीयुतानाम् ॥६४॥

ससैंधवानां समभागिकानां
चूर्णादकं चोपरि तस्य दद्यात् ॥
अम्लेन दध्ना महिषीभवेन
पिष्टं रसोनस्य शरावमेकम् ॥६५॥

समक्रमेणात्र निधाय खडै-
राच्छादयेत्खर्प्परजैर्विसंधि ॥
चूर्णप्रलिप्तोदरमूर्ध्वभांडं
संस्थाप्य समुद्रय दृढ मुचुल्लयां ॥६६॥

प्रज्वालयेद्वह्निमधः क्रमेण
संस्थाप्य यंत्रोपरि वस्त्रमार्द्रम् ॥
वह्निं प्रदद्याद् दिनषट्कमत्र
ततस्वांगशीतं परिगृह्य बुद्धया ॥६७॥

तं द्रोणपुष्प्याः पयसा प्रपिष्ट
कूप्यां विदध्यान्नवसादरं च ॥
कर्षप्रमाणं प्रहरत्रयं च
वह्निं प्रदद्यादथ शीतलांगीम् ॥६८॥

निष्कास्य कूपीं सिकताख्ययंत्रा-
दास्फोट्य कंठस्थमनुं प्रगृह्यात् ॥
कर्पूरनामा रसनायकोऽयं
वल्लप्रमाणेन गुडेन भुक्तः ॥६९॥

निर्वातभाजा सरुजा च पथ्य-
शीलेन कुष्टामयनाशनः स्यात् ॥
फिरंगकरिकेसरी सकलकुष्ठतालानलोऽ-
खिलव्रणविनाशकृद् व्रणजगर्तपूर्तिप्रदः ॥
सुवर्णसमवर्णकृद् बलकृताग्नितेजस्करः
समस्तगदतस्करो रसपतिः स कर्पूरकः ॥७०॥

अथ सुवर्णादिसर्वधातु शुद्धिः ।

स्वर्णाद्या धातवः सर्वे द्रवीभूताः सुयोजिताः ॥
शुध्यंति वक्ष्यमाणेषु द्रवद्रव्येष्वनुक्रमात् ॥७१॥
तैले तक्रे गवांमूत्रे कांजिकेथ कुलत्थके ॥
त्रिफलाक्वाथतोयेन संशोध्याः सर्वधातवः ॥७२॥

अथ लोहभस्म तद्गुणाः ।

स्यात्तीक्ष्णलोहयोः शुद्धी रजसोऽथ पुटैस्त्रिभिः ॥
रंभाजलेन घृष्टस्य शिग्रुमूलत्वगंबुना ॥७३॥
पुनस्तप्तं हिमीभूतं बाह्लीकांबुनि तद्रजः ॥
भावितं मार्कवद्रावैः सप्तधा पुटितं ततः ॥७४॥
मत्स्याक्षीसलिलैस्तावद्वरानीरैर्मृतं भजेत् ॥
तत्कुष्ठक्षयमंदाग्निपांडुकासादिकान्गदान् ॥७५॥
नाशयत्यनुपानैः स्वैर्जरां च पलितं तथा ॥
शुद्धिमारणयोरैक्यादुक्तमेनन्न दूषणम् ॥७६॥

लोह भस्म प्रकारः ।

शुद्धं हतं दरदगंधकयोगतः स-
दैद्येन वारितरमुद्यदहर्दिनप्रकाशम् ॥
लोहं निहंत्यनिलपित्तबलासरोगा-
नुक्तानुपानसहितं न हिताय कस्य ॥७७॥

अथ लोहमारणं बौद्धसर्वस्वात् ।

शुद्धं दाडिमजैः क्वाथैरनले पक्वतां गतम् ॥
सवरावारिभिर्घृष्टं नवसादरसंयुतैः ॥७८॥
तदर्धं गंधकं तस्याप्यर्धं सूतं नियोजयेत् ॥
कुमारीवारिभिः खल्वे मर्दितं गोलकीकृतम् ॥७९॥

शुष्कमेरंडजैः पत्रैर्वेष्टितं तंतुभिस्तथा ॥
संपुटे स्थापयित्वा तं वेष्टिते च मृदा पुनः ॥८०॥
कशूलधान्यमध्यस्थं दिनानि किल विंशतिं ॥
उद्धृत्य च ततो लोह चूर्णितं सुधया समम् ॥८१॥
सर्वामयहरं सम्यग्रसायनमनुत्तमम् ॥८२॥

पांडु खंडयति क्षय क्षपयति क्षैण्यं क्षिणोति क्षणा-
त्कासं नाशयति भ्रम शमयति श्लेष्मामयान्खादति ॥
अर्शोगुल्मसशूलपीनसवमीश्वासप्रमेहारुची-
राशून्मूलयति प्रभूतगुणकृल्लोह परं मारितम् ॥८३॥

अथ तालकशुद्धि ।

शुद्धः स्यात्तालकः स्विन्नः कूष्मांडसलिलैस्ततः ॥
चूर्णोदकैः पृथक् तैले भस्मीभूतो न दोषकृत् ॥८४॥

अथ मनःशिलारसकशुद्धि ।

बीजपूररसैः पिष्टा जयानीरैर्मनःशिला ॥
सप्ताह स्वेदितः शुद्धो रसको नरवारिणा ॥८५॥

अथ तुत्थशुद्धि ।

ओतोर्विष्टासम तुत्थं सक्षौद्र टंकणांघियुक् ॥
त्रिधैव पुटितं शुद्धं वांतिभ्रांतिविवर्जितम् ॥८६॥

अथ तारमाक्षिकशुद्धि ।

भावितो विमलो घर्मे जरज्जंबीरवारिणा ॥
मेषशृंग्यंबुना घस्रं शुद्धः कर्कोटिकाजलैः ॥८७॥

अथ स्वर्णमाक्षिकशुद्धिः ।

तुर्यांशसैंधवोपेन माक्षिकं मर्दयेद्दृढम् ॥
बीजपूरांबुना दिग्ध सम्यक्पात्रे च लोहजे ॥८८॥

अथ दरदशुद्धिः ।

अम्लद्रव्यद्रवैः पिष्टो दरदो माहिषेण तु ॥
दुग्धेन सप्तधा पिष्टः श्लक्ष्णीभूतो विशुध्यति ॥८९॥

अथ शिलाजतुशुद्धिः ।

गोदुग्धत्रिफलाभृंगद्रवैः पिष्टं शिलाजतु ॥
दिनैकं लोहजे पात्रे शुद्धिमायात्यसंशयम् ॥९०॥

अथ विषमुष्टिशुद्धिः ।

त्रिदिनं कांजिकैः स्विन्नः शुद्धः स्याद्विषतिंदुकः ॥९१॥

अथ लोह किट्टशुद्धिः ।

अक्षाग्निदग्धं गोमूत्रे निर्वापितमथोमलम् ॥
पृथक्पृथक्सप्तवारं शुद्धं भवति सर्वथा ॥९२॥

अथ धान्याभ्रकरणविधिः ।

पादांशशालिसंयुक्तमभ्रं बध्वा च कंबले ॥
त्रिरात्रं स्थापयेन्नीरे तत्क्लिन्नं मर्दयेत्करैः ॥९३॥
कंबलाद् गलितं श्लक्ष्णं वालुकारहितं च यत् ॥
तद्धान्याभ्रमिति प्रोक्तं सद्भिर्देहस्य शुद्धये ॥९४॥

अथ उपरसादिशुद्धिः ।

कंकुष्ठं गैरिकं शंखं कांसीसं टंकणं तथा ॥९५॥
नीलांजनं शुक्तिभेदाः क्षुल्लकाः सवराटिकाः
जंबीरवारिणा स्विन्नाः क्षालिताः कोष्णवारिणा ॥
शुद्धिमायांत्यमी योज्या भिषग्भिर्योगसिद्धये ॥९६॥

अथ स्वर्णमारणं ।

रसस्य भस्मना वाथ रसेनालिप्य वै दलं ॥
हिंगुलिंगुलुसिंदूरशिलासाम्येन मेलयेत् ॥९७॥

समर्थं कांचनद्रावैर्दिनं कृत्वाथ गोलकम् ॥
त भांडस्य तले दत्वा भस्मना पूरयेद्दृढम् ॥९८॥

अग्नि प्रज्वालयेद्गाढ शुनिशं स्वांगशीतलम् ॥
उद्धृत्य सावशेष चेत्पुनर्देयं पुटत्रयम् ॥९९॥

अनेन विधिना स्वर्णं निरुत्थं जायते मृतम् ॥
एतद्रसायन बल्य वृष्यं शीतं क्षयादिजित् ॥१००॥

स्वर्णं स्वर्णसवर्णवर्णजनकं सर्वक्षयोन्मूलकृत्
बल्यं वृष्यमनुष्णवीर्यमसकृत्क्षुद्वर्धनं बृंहणम् ॥
निःशेषामयसंचसंहृतिकरं तेजस्करं शुक्रकृत्
चक्षूरोगजरापहं नवसुधापानोपमं प्राणिनाम् ॥१०१॥

अथ रूप्यमारणगुणा ।

विधाय पिष्टिं सूतस्य रजतस्याथ मेलयेत् ॥
तालिं गंधं समं पश्चान्मेलयेन्निंबुकद्रवैः ॥
छिद्रैः पुटैर्भवेद्भस्म योज्यमेतद्रसादिषु ॥१०२॥

तारं शीतकषायमम्लमधुरं दोषत्रयच्छेदनं
स्निग्धं दीपनमक्षिकुक्षिगदजिद्दाहप्रमेहप्रणुत् ॥
मेदोभेदि मदात्ययात्ययकरं कांत्यायुरारोग्यकृद्
यक्ष्मापस्मृतिपांडुशूलपलितप्लीहज्वरघ्न सरम् ॥१०३॥

अथ रीतिकांस्यमारणम् ।

राजरीतिं तथा घोषं ताम्रवन्मारयेद्भिषक् ॥

अथ नाग मारणम् ।

त्रिभिः कुंभीपुटैर्नागो वासारसविमर्दितः ॥
सटिटो भस्मतामेति नागजः सर्वमेहनुत् ॥१०४॥

अथ वंगमारणं गुणाः ।

वंगं सतालमर्कस्य पिष्ट्वा दुग्धेन संपुटेत् ॥
शुष्काश्वत्थभवैर्वल्कैः सप्तधा भस्मतां व्रजेत् ॥१०५॥

आयुःप्रदाता बलवीर्यकर्ता
रोगापहर्ता मदनस्य कर्ता ॥
वंगेन तुल्यं न च किंचिदन्य-
द्रसायनं श्रेष्ठतमं नराणाम् ॥१०६॥

बल्यं दीपनपाचनं रुचिकरं प्रज्ञाकरं शीतलं
सौन्दर्यैकविवर्धनं हृतजरं नीरोगताकारणम् ॥
धातुस्थौल्यकरं क्षयक्षयकरं सर्वप्रमेहापहं
वंगं भक्षयतो नरस्य न भवेत्स्वप्नेपि शुक्रक्षयः ॥१०७॥

अथ ताम्रमारणं गुणाः ।

ताम्रपादांशतः सूतं तत्तुल्यं गंधकं क्षिपेत् ॥
कन्यारसेन संपिष्ट्वा ताम्रपत्राणि लेपयेत् ॥१०८॥

निक्षिप्य हंडिकामध्ये शरावेण निरोधयेत् ॥
हंडिकां पटुनापूर्य पचेद्यामत्रयं भिषक् ॥१०९॥

स्वांगशीतं विचूर्ण्याथ वांतिदाहविवर्जितम् ॥
सर्वदोषहरं ताम्रं सर्वयोगेषु योजयेत् ॥११०॥

अथान्यः ताम्रमारण प्रकारः ।

सूक्ष्मं ताम्रदलं विमर्द्य पटुना क्षारेण जंबीरजै-
र्नीरैर्घस्रमिदं स्नुगर्कपयसा लिप्तं धमेत्सप्तधा ॥
निर्गुंड्यंबुहिमं रसेंद्रकलितं दुग्धाढ्यगंधेन त-
त्तुल्येनाथ मृतं भवेत्सुपुटितं पंचामृतेन त्रिधा ॥१११॥

बांतिभ्रांतिविवर्जितं ज्वररुजः कुष्ठानि पांड्वामयं
शूल मेहगुदांकुरानिलगदानुक्तानुगनैर्जयेत ॥
गुंजामात्रमिदं ततो द्विगुणितं संशुद्धकायेन चे-
त्प्रोक्तं स्थौल्यजराविपत्तिशमनं पथ्याशिनो वत्सरात् ॥११२॥

अथ अभ्रक मारण गुणाः ।

दुग्धत्रयं कुमार्यंबु गंगापुत्रं नृमूत्रकम् ॥
वटशुंगमजारक्तमेभिरभ्र सुमर्दितम् ॥११३॥

शतधा पुटित भस्म जायते पद्मरागवत् ॥
निश्चंद्रिकं भवेत्तत्तु शुद्धदेहे रसायनम् ॥११४॥

रोगान्हंति द्रढयति वपुर्वीर्यवृद्धिं विधत्ते
तारुण्याढ्यं रमयति शतं योपितां नित्यमेव ॥
दीर्घायुष्कान्जनयति सुतान्सिंहतुल्यप्रभावा-
न्मृत्योर्भीतिं हरति च सदा सेव्यमानं मृताभ्र ॥११५॥

अथ वज्र मारण ।

व्याघ्रीकंदगत वज्र दोलायंत्रे विपाचितम् ॥
सप्ताहं कोद्रवक्काथे कौलत्थे विमलं भवेत् ॥११६॥

त्रिःसप्त कृत्वा तत्तप्त खरमूत्रेण सेचयेत् ॥
मत्कुणैस्तालक पिष्ट्वा तद्गोले कुलिशं क्षिपेत्॥११७॥

प्रध्मातं वाजिमूत्रेण सिक्तं पूर्वक्रमेण च ॥
भस्मीभवति तद्भुक्तं वज्रवत्कुरुते तनुम् ॥११८॥

अथ वैक्रांत मारण ।

वैक्रांत वज्रवच्छोध्यं ध्मात तद्धयमूत्रके ॥
हिम तद्भस्म संयोज्यं वज्रस्थाने विचक्षणैः ॥११९॥

अथ अभ्रक सत्व पातनं गुणा ॥

यदंजननिभ क्षिप्तं वह्नौ नो विकृतिं व्रजेत् ॥
वज्रसंज्ञं हि तद्योज्य व्योम सर्वत्र नेतरत् ॥१२०॥

भावयेच्चूर्णितं वज्रं दिनैकं कांजिकेन च ॥
रंभासूरणजैर्नीरैर्मूलकोत्थैश्च मेलयेत् ॥१२१॥
तुर्यांशटंकणेनैव क्षुद्रमत्स्यैः समं पुनः ॥
महिषीमलसंमिश्रान्विधायास्याथ गोलकान् ॥१२२॥
खराग्निना धमेद् गाढं सत्वं मुंचति कांस्यवत् ॥
सत्वसेवी वयः स्तंभं कृतशुद्धिर्लभेत ना ॥१२३॥

अथ भूनाग सत्वपातनं तन्मुद्रिका गुणा ।

ताम्रभूभवभूनागान्निशापिष्टान्समानतः ॥
गुडगुग्गुलुलाक्षोणामित्स्यपिण्याकटंकणैः ॥१२४॥
दृढमेतैश्च संयोज्य मर्दयित्वा धमेत्सुखम् ॥
मुंचंति ताम्रवत् सत्वं तन्मुद्राजलपानतः ॥
नश्यंति जंगमविषाण्यशेषाण्यपि सर्वथा ॥१२५॥

अथ सर्व उपरसानां सत्व भस्म ।

सर्वेषामुपपूर्वाणां रसानां सत्वमारणम् ॥
कर्तव्यं भस्म सूतेन गंधकेनाग्निगर्भके ॥१२६॥

ये धातवो येप्युपपूर्वकाश्च
रसाश्च मृत्स्नादृषदोल्पसाध्याः ॥
मुंचंति सत्वं मिलिता गणेन
गुडादिकेनात्र न संशयोस्ति ॥
यत्रोपरसभागोस्ति रसे तत्सत्त्वयोजनम् ॥
कर्तव्यं तत्फलाधिक्यमिच्छता निश्चितात्मना ॥१२७॥

इतिश्री योगतरंगिणी संहितायां रसोपरसधातूपधातु शोधन मारण विधि नाम सप्तदशस्तरंगः ॥१७॥

॥ अथ अष्टादशस्तरंगः ॥१८॥

अथ स्वरसादि ।

अथात्र स्वरसः कल्कः क्वाथश्च हिमफांटकौ ॥
ज्ञेयाः कषायाः पंचैते लघवः स्युर्यथोत्तरम् ॥ १ ॥

अथ स्वरसकल्पना ।

आहृता नत्क्षणोत्कृष्टाद् द्रव्यात् क्षुण्णात्समुद्भवेत् ॥
वस्त्रनिष्पीडतो यस्तु स्वरसो रस उच्यते ॥ २ ॥
कुडव चूर्णित द्रव्यं क्षिप्त तद्द्विगुणे जले ॥
अहोरात्रस्थितं यस्माद्भवेद्वा रस उत्तमः ॥ ३ ॥
आदाय शुष्कद्रव्य वा स्वरसानामसंभवे ॥
जलेऽष्टगुणिते साध्य पादशिष्टं च गृह्यते ॥ ४ ॥
स्वरसस्य गुरुत्वाच पलमर्धं प्रयोजयेत् ॥
निःशोषितं चाग्निसिद्धं पलमात्र रस पिवेत् ॥ ५ ॥
मधुश्वेतागुडक्षारान् जीरकं लवणानि च ॥
घृतं तैलं च चूर्णादीन्कोलमात्रान्रसे क्षिपेत् ॥ ६ ॥

स यथा ।

अमृताया रसः क्षौद्रयुक्तः सर्वप्रमेहजित् ॥
हरिद्राचूर्णयुक्तो वा रसो धात्र्याः समाक्षिकः ॥ ७ ॥

इत्यादि ॥

अथ कल्ककल्पना । स यथा ।

यः पिंडश्चार्द्रद्रव्याणां स कल्क इति कीर्तितः ॥
वृद्धवैद्यवचः साक्षात्कल्को दृषदि पेषितः ॥
मात्रा पिचुमिता तत्र द्विगुणं माक्षिकादिकम् ॥ ८ ॥

पचेत्क्षुद्रां सपंचांगां पुटपाकेन तद्रसः ॥
पिप्पलीचूर्णसंयुक्तः कासश्वासक्षयापहः ॥ ९ ॥

अथ क्काथः । स यथा ।

पानीयं षोडशगुणं क्षुण्णद्रव्याद्विनिःक्षिपेत् ॥
मृत्पात्रे क्कथितं ग्राह्यमष्टमांशावशेषितम् ॥
शृतः क्काथः कषायश्च निर्यूहः स निगद्यते ॥१०॥

गुडूचीधान्यकारिष्टरक्तचंदनपद्मकैः ॥
गुडूच्यादिरयं क्काथः सर्वज्वरहरः स्मृतः ॥११॥

अथ यवागूः । सा यथा ।

साध्यं चतुष्पलं द्रव्यं चतुःषष्टिपलेंबुनि ॥
तत्क्काथेनार्द्धशिष्टेन यवागूं साधयेद्वराम् ॥१२॥

आम्राम्रातकजंबूत्वक्कषाये विपचेद् बुधः ॥
यवागूं शालिभिर्युक्तां तां भुक्त्वा ग्रहणीं जयेत् ॥१३॥

अथ यूषः। स यथा। सप्तमुष्टिको यूषः ।

कल्कद्रव्यपलं शुंठी पिप्पली चार्द्धकार्षिकी ॥
वारिप्रस्थेन विपचेत्स द्रवो यूष उच्यते ॥१४॥

कुलत्थयवकोलैश्च मुद्गैर्मूलकशुंठकैः ॥
शुंठीधान्यकयुक्तैश्च यूषः श्लेष्मानिलापहः ॥
सप्तमुष्टिक इत्येष सन्निपातज्वरान् जयेत् ॥१५॥

अथैषां प्रक्रियात्रैव प्रोच्यते नातिविस्तरात् ॥
यवागूः षड्गुणजले सिद्धा स्यात्कृशरा घना ॥१६॥

तंडुलैर्मुद्गमाषैश्च तिलैर्वा साधिता हिता ॥
यवागूर्ग्राहिणी बल्या तर्पिणी वातनाशिनी ॥१७॥

अथ विलेपी ।

विलेपी त्वघना सिक्थैः सिद्धा नीरे चतुर्गुणे ॥
विलेपी तर्पणी हृद्या मधुरा पित्तनाशिनी ॥१८॥

अथ पेया जूषः ।

द्रवाधिका स्वल्पसिक्था चतुर्दशगुणे जले ॥
सिद्धा पेया बुधैर्ज्ञेया जूषः किंचिद्घनस्ततः ॥१९॥

पेया लघुतरा ज्ञेया ग्रहणी धातुपुष्टिदा ॥
जूषो बल्यस्ततः कंठ्यो लघुपाकः कफापहः ॥२०॥

अथ भक्तं ।

जले चतुर्दशगुणे तंडुलानां चतुःपलम् ॥
विपचेत्स्रावयेन्मंड स भक्तो मधुरो लघुः ॥२१॥

अथ मंड. ।

जले चतुर्दशगुणे सिद्धो मंडस्त्वसिक्थकः ॥
शुंठीसैंधवसंयुक्तः पाचनो दीपनो लघुः ॥२२॥

अथ अष्टगुणमंड. ।

धान्यत्रिकटुसिंधूत्थयुक्तस्तक्रेण योजितः ॥
भ्रष्टश्च हिंगुतैलाभ्यां स मंडोऽष्टगुणः स्मृतः ॥२३॥

दीपनः प्राणदो वस्तिशोधनो रक्तवर्धनः ॥
ज्वरजित्सर्वदोषघ्नो मंडोऽष्टगुण उच्यते ॥२४॥

अथ वाद्यमंड. ।

सुकंडितैस्तथा भ्रष्टैर्वाद्यमंडो: यवैर्भवेत् ॥
कफपित्तहरः कंठ्यो रक्तपित्तप्रसादनः ॥२५॥

अथ लाजमंड ।

लाजैर्वा तंडुलैर्भ्रष्टैर्लाजमंडः प्रकीर्तितः ॥
श्लेष्मपित्तहरो ग्राही पिपासाज्वरजिन्मतः ॥२६॥

अथ फांटकल्पना ।

क्षुण्णे द्रव्यपले सम्यग्जलमुष्णं विनिक्षिपेत् ॥
मृत्मात्रे कुडवोन्मानं ततस्तु स्रावयेत्पटात् ॥२७॥

स स्याच्चूर्णद्रवः फांटस्तन्मानं द्विपलोन्मितम् ॥
मधुश्वेतागुडादींश्च क्वाथवत्तत्र निक्षिपेत् ॥२८॥

स यथा । मधूकपुष्पादिफांटः ।

मधूकपुष्पं मधुकं चंदनं सपरूषकम् ॥
मृणालं कमलं लोध्रं कंभारी नागकेसरम् ॥२९॥

त्रिफला सारिवा द्राक्षा यवान्कोष्णजले क्षिपेत् ॥
सितामधुयुतः पेयः फांटो वासो हिमोथवा ॥३०॥

वातं पित्तं तथा दाहं तृष्णामूर्च्छामलिभ्रमान् ॥
रक्तपित्तं मदं हन्यान्नात्र कार्या विचारणा ॥३१॥

अथ हिमकल्पना ।

क्षुण्णं द्रव्यपलं सम्यक्षड्भिर्नीरपलैः प्लुतम् ॥३२॥

निःशोधितं हिमः स स्यात्तथा शीतकषायकः ॥
तन्मानं फांटवत् ज्ञेयं सर्वत्रैवैष निश्चयः ॥३३॥

स यथा । आम्रादिहिमः ।

त्वगाम्रजंम्बोः ककुभं चूर्णीकृत्य जले क्षिपेत् ॥
हिमः स स्यात्पिबेत्प्रातः सक्षौद्रं रक्तपित्तजित् ॥३४॥

अथ चूर्णकल्पना ।

अत्यंतशुष्कं यद्द्रव्यं सुपिष्टं वस्त्रगालितम् ॥
तत्स्याच्चूर्णं रजः क्षोदस्तन्मात्रा कर्षसंमिता ॥३५॥

चूर्णे गुडः समो देयः शर्करा द्विगुणा मता ॥
चूर्णेषु भर्जितं हिंगु रोगानुसारि जीरकं ॥३६॥

अथ वटिका ।

वटका अथ कथ्यते तन्नाम गुटिका वटी ॥
मोदको वटिका पिंडो गुडो वर्तिस्तथोच्यते ॥३७॥

लेहवत्साध्यते वह्नौ गुडो वा शर्करायवा ॥
गुग्गुलुर्वा क्षिपेत्तत्र तत्चूर्णनिर्मिता वटी ॥३८॥

सिता चतुर्गुणा देया वटीषु द्विगुणो गुडः ॥
सर्वचूर्णे समः कार्यो गुग्गुलुर्मधु तत्समम् ॥३९॥

द्रवश्च द्विगुणो देयो मोदकेषु भिषग्वरैः ॥
कर्षप्रमाणं तन्मात्रा बलं दृष्ट्वा प्रकल्पयेत् ॥४०॥

अथ अवलेह कल्पना ।

काथादेर्यत्पुनः पाकाद्घनत्वं सा रसक्रिया ॥
सोवलेहश्च लेह्श्च तन्मात्रा स्यात्पलोन्मिता ॥४१॥

सिता चतुर्गुणा देया चूर्णाच द्विगुणो गुडः ॥
द्रवश्चतुर्गुणो देय इति सर्वत्र निश्चयः ॥४२॥

दुग्धमिक्षुरसो यूषः पंचमूलकषायकः ॥
वासाक्काथश्च तद्योग्यमनुपानं प्रशस्यते ॥४३॥

अथ गणाः ॥ अथ त्रिफला ।

एका हरीतकी योज्या द्वौ योज्यौ च विभीतकौ ॥
चत्वार्यामलकान्याहुः सिता च द्विगुणा भवेत् ॥४४॥

त्रिफला मेहशोथघ्नी कुष्टहंत्री रसायनी ॥
सर्पिर्मधुभ्यां संयुक्ता सैव नेत्रामयापहा ॥४५॥

अथ त्रिकटु ।

पिप्पली मरिच शुंठी त्रिभिस्त्र्यूषणमुच्यते ॥
दीपनं श्लेष्ममेदोघ्नं कुष्टपीनसनाशनम् ॥४६॥

अथ पंचकोलं ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः ॥
कोलमात्रप्रमाणत्वात्पंचकोलमिदं मतम् ॥४७॥
पाचनं दीपनं रूच्यं शूलगुल्मोदरापहम् ॥
पंचकोलं समरिचं षडूषणमुदाहृतम् ॥४८॥

अथ त्रिसुगंधि चातुर्जातकं ।

त्रिगंधमेलात्वक्पत्रैश्चातुर्जातं सकेसरैः ॥
त्रिगंधं च चतुर्जातं रूक्षोष्णं लघुपित्तकृत् ॥
वर्ण्यं रुचिकरं तीक्ष्णं विषश्लेष्मामयापहम् ॥४९॥

अथ जीवंतीयो गणः ।

काकोली क्षीरकाकोली जीवकर्षभकौ तथा ॥
मेदा चान्या महामेदा जीवंती मधुकं तथा ॥५०॥
मुद्गपर्णी माषपर्णी जीवनीयगणो मतः ॥
जीवनीयगणः स्वादुर्गर्भसंधानकृद्गुरुः ॥५१॥
स्तन्यकृद् बृंहणो वृष्यः स्निग्धः शीतस्तृषापहः ॥
रक्तपित्तं क्षयं कासं ज्वरदाहानिलान् जयेत् ॥५२॥

अथ अष्टवर्गः ।

द्वे मेदे द्वे च काकोल्यौ जीवकर्षभकौ तथा ॥
ऋद्धिर्वृद्धिश्च तैः सार्द्धमष्टवर्ग उदाहृतः ॥
अष्टवर्गो बुधैः प्रोक्तो जीवनीयसमो गुणैः ॥५३॥

अथ पंचलवणानि ।

सिंधु सौवर्चलं चैव विडं सामुद्रिकं गडम् ॥
एकद्वित्रिचतुः पंच लवणानि क्रमाद्विदुः ॥५४॥
मधुरं सृष्टविण्मूत्रं स्निग्धं सूक्ष्मं वलापहम् ॥
वीर्योष्णं दीपनं तीक्ष्णं कफपित्तविवर्द्धनम् ॥५५॥

अथ क्षारौ ।

सर्ज्जिका यावशूकश्च क्षारयुग्ममुदाहृतम् ॥
ज्ञेयौ वह्निसमौ क्षारौ सर्ज्जिकायावशूकजौ ॥५६॥
क्षाराश्चान्येपि गुल्माशोग्रहणीरुक्छिदः सराः ॥
पाचनाः कृमिपुंस्त्वघ्नाः शर्कराश्मरिनाशनाः ॥५७॥

अथ दशमूल ।

शालिपर्णी पृष्ठिपर्णी वृहतीद्वयगोक्षुरैः ॥
बिल्वाग्निमंथस्योनाककाश्मरीपाटलायुतैः ॥५८॥
दशमूलमिति ख्यातं पूर्वार्द्धं तु लघु स्मृतम् ॥
परार्द्धं महदाख्यं स्यात्पचमूलमिति द्विधा ॥५९॥
दशमूलं सन्निपातशमनं प्रायशः स्मृतम् ॥
वातपित्तश्वासकाससूतिकारोगनाशनम् ॥६०॥
दशमूलं सन्निपाते त्वक्शोफे पाचक तथा ॥
तत्तद्योगे तथान्यांश्च वदिष्यामि गणान्पुरः ॥६१॥

अथ पचक्षीरि वृक्षाः ।

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थपारिशप्लक्षपादपाः ॥
पंचैते क्षीरिणो वृक्षास्तेषां त्वक्पञ्चवल्कलम् ॥६२॥

इति श्री योगतरंगिणी संहितायां स्वरसादिकथन नामाष्टादशस्तरंग ॥१८॥
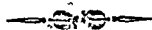
॥ अथ एकोनविंशस्तरंगः ॥१९॥

अथ स्वरूपनिरूपणाय तत्तद्दोषप्रतीकाराय च रोगाः संक्षेपतः परिगण्यन्ते ते यथा ।

ज्वरोतिसारो ग्रहणी ह्यर्शोजीर्णविषूचिका ॥
सालसा च विलंबी च कृमिरुक्पांडुकामलाः ॥ १ ॥
हलीमकं रक्तपित्तं राजयक्ष्मा ह्युरःक्षतम् ॥
कासो हिक्का तथा श्वासः स्वरभेदस्त्वरोचकः ॥ २ ॥
छर्दिस्तृष्णा च मूर्च्छा च तथा पानात्ययादयः ॥
दाहाख्यश्च तथोन्मादो ह्यपस्मारोनिलामयः ॥ ३ ॥
वातरक्तमुरुस्तंभ आमवातोथ शूलरुक् ॥
पक्तिजं शूलमानाहमुदावर्तोथ गुल्मरुक् ॥ ४ ॥
हृद्रोगो मूत्रकृच्छ्रं च मूत्राघातस्तथाश्मरी ॥
प्रमेहो मधुमेहश्च पिडकाश्च प्रमेहजाः ॥५॥
मेदोदोषोदरं शोथो वृद्धिश्च गलगंडकः ॥
गंडमालापची ग्रंथिरर्बुदं श्लीपदं तथा ॥ ६ ॥
विद्रधिव्रणशोथौ च द्वौ व्रणौ भग्ननाडिके ॥
भगंदरोपदंशौ च शूकदोषस्त्वगामयः ॥ ७ ॥
शीतपित्तमुदर्दश्चोत्कोठकश्चाम्लपित्तकम् ॥
विसर्पश्च सविस्फोटस्तथैव च मसूरिका ॥ ८ ॥
क्षुद्रास्यकर्णनासाक्षिशिरःस्त्रीबालकामयाः ॥
विषं चेत्ययमुद्देशः संग्रहेस्मिन्प्रकीर्तितः ॥ ९ ॥

तत्र क्रमप्राप्तस्य प्रथमं ज्वरस्य लक्षणम् ।

देहेंद्रियमनस्तापी, सर्वरोगाग्रजो बली ॥१०॥

ज्वरः प्रधानो रोगाणामुक्तो भगवता पुरा ॥
दक्षापमानसंक्रुद्धरुद्रनिश्वाससंभवः ॥११॥
ज्वरोऽष्टधा पृथग्द्वंद्वसंघातागंतुजः स्मृतः ॥
मिथ्याहारविहाराभ्यां दोषा ह्यामाशयाश्रयाः ॥१२॥
बहिर्निरस्य कोष्ठाग्निं ज्वरदाः स्यु रसानुगाः ॥

सामान्य ज्वर लक्षण ।

श्रमोऽरतिर्विवर्णत्वं वैरस्यं नयनप्लवः ॥१३॥
इच्छाद्वेषौ मुहुश्चापि शीतवातातपादिषु ॥
जृंभांगमर्दो गुरुता रोमहर्षोऽरुचिस्तमः ॥१४॥
अप्रहर्षश्च शीतं च भवंत्युत्पतस्यति ज्वरे ॥
स्वेदावरोधः संतापः सर्वांगग्रहणं तथा ॥
युगपद्यत्र रोगे तु स ज्वरः परिकीर्तितः ॥१५॥

अथ वातज्वरलक्षणम् ।

वेपथुर्विषमो वेगः कंठौष्ठमुखशोषणम् ॥
निद्रानाशः क्षवस्तंभो गात्राणां रौक्ष्यमेव च ॥१६॥
शिरोहृद्गात्ररुग्वक्त्रवैरस्यं गाढविट्कता ॥
शूलाध्माने जृंभणं च भवत्यनिलजे ज्वरे ॥१७॥

अथ पित्तज्वरलक्षणम् ।

वेगस्तीक्ष्णोऽतिसारश्च निद्राल्पत्वं तथा वमिः ॥
कंठौष्ठमुखनासानां पाकः स्वेदश्च जायते ॥१८॥
प्रलापो वक्त्रकटुता मूर्छा दाहो मदस्तृषा ॥
पीतविण्मूत्रनेत्रत्व पैत्तिके भ्रम एव च ॥१९॥

अथ श्लेष्मज्वरलक्षणम् ।

स्तैमित्यं स्तिमितो वेग आलस्यं मधुरास्यता ॥
शुक्लमूत्रपुरीषत्वं स्तंभस्तृप्तिस्तथैव च ॥२०॥

गौरवं शीतमुत्क्लेदो रोमहर्षोऽतिनिद्रता ॥
प्रतिश्यायोऽरुचिः कासः कफजेक्ष्णोश्च शुक्लता ॥२१॥

अथ वातपित्त ज्वरलक्षणम् ।

तृष्णा मूर्छा भ्रमो दाहः स्वप्ननाशः शिरोरुजा ॥
कंठास्यशोषो वमथू रोमहर्षोऽरुचिस्तमः ॥
पर्वभेदश्च जृंभा च वातपित्तज्वराकृतिः ॥२२॥

अथ वातश्लेष्म ज्वरलक्षणम् ।

स्तैमित्यं पर्वणां भेदो निद्रा गौरवमेव च ॥
शिरोग्रहः प्रतिश्यायः कासः स्वेदाप्रवर्तनम् ॥
संतापो मध्यवेगश्च वातश्लेष्मज्वराकृतिः ॥२३॥

अथ श्लेष्मपित्त ज्वरलक्षणम् ।

लिप्ततिक्तास्यता तंद्रा मोहः कासोऽरुचिस्तृषा ॥
मुहुर्दाहो मुहुः शैत्यं श्लेष्मपित्तज्वराकृतिः ॥२४॥

अथ सामान्य चिन्हानि ।

सामान्यतो विशेषात्तु जृंभात्यर्थं समीरणात् ॥
पित्तान्नयनयोर्दाहः कफान्नान्नाभिनंदनम् ॥२५॥
सर्वलिंगसमवायः सर्वदोषप्रकोपजः ॥
रूपैरन्यतराभ्यां च संसृष्टैर्द्वन्द्वजं विदुः ॥२६॥

अथ संनिपात ज्वरलक्षणम् ।

क्षणे दाहः क्षणे शीतमस्थिसंधिशिरोरुजा ॥
सास्रावे कलुषे रक्ते निर्भुग्ने चापि लोचने ॥२७॥
सस्वनौ सरुजौ कर्णौ कंठः शूकैरिवावृतः ॥
तंद्रा मोहः प्रलापश्च कासः श्वासोऽरुचिर्भ्रमः ॥२८॥

तद्वच्छीतं महानिद्रा दिवा जागरणं निशि ॥
सदा वा नैव वा निद्रा महास्वेदोथ नैव वा ॥२९॥
गीतनर्तनहास्यादिविकृतेहाप्रवर्तनम् ॥
परिदग्धा खरस्पर्शा जिह्वा स्रस्तांगता परम् ॥३०॥
ष्ठीवनं रक्तपित्तस्य कफेनोन्मिश्रितस्य च ॥
शिरसो लोठनं तृष्णा निद्रानाशो हृदि व्यथा ॥३१॥
स्वेदमूत्रपुरीषाणां चिराद्दर्शनमल्पशः ॥
कृशत्वं वापि गात्राणां सततं कंठकूजनम् ॥३२॥
कोठानां श्यावरक्तानां मंडलानां च दर्शनम् ॥
मूकत्वं स्रोतसां पाको गुरुत्वमुदरस्य च ॥
चिरात्पाकश्च दोषाणां सन्निपातज्वराकृतिः ॥३३॥

अथ भल्लूकमतात्त्रयोदश सन्निपाता लिख्यंते ।

द्व्युल्बणैकोल्बणैः षट् स्युर्हीनमध्याऽधिकैश्च षट् ॥
समश्चैको विकारास्ते सन्निपातास्त्रयोदश ॥३४॥

१ विद्ध सन्निपातः ।

तृष्णा तन्द्रा भ्रमः कासस्तालुशोषो ज्वरोऽरुचिः ॥
आनाहो गात्रसंभेदः श्वासकंपश्रमभ्रमाः ॥३५॥
विद्धाख्ये सन्निपाते स्याल्लिंग पित्तानिलोल्बणे ॥

२ मल्ल सन्निपात ।

संभेदो दक्षिणे पार्श्वे हृदि शीर्षे गलग्रहः ॥३६।
दाहोंतःशीतता बाह्ये निष्ठीवः कफपित्तयोः ॥
हिक्का प्रमीलकः श्वासो निद्रा कंठप्रपाकतः ॥३७॥
तृष्णा पुरीषसंभेदो वदने तिक्ततारुचिः ॥
कफपित्तात्मके चैतल्लक्षणं भल्लसंज्ञके ॥३८॥

३ शर्करा सन्निपातः ।

क्षुण्णाशो जठरे दाहः कटिबस्त्योश्च दूषनम् ॥
शिरोगौरवमालस्यं निद्रा शीतज्वरो रुजा ॥३९॥
मन्यास्तंभः प्रवांतिश्च तृष्णायाश्च विनिग्रहः ॥
सन्निपाते शर्कराख्ये कफवातोल्बणे भवेत् ॥४०॥

४ विस्फुरक सन्निपातः ।

मूर्छाग्लानिर्ज्वरो हिक्का तृष्णा दाहो बलक्षयः ॥
उरःसादोऽतिनिद्रा च स्फुरणं गुदनिस्रुतिः ॥४१॥
पर्वशूलं प्रलापश्च विण्मूत्रं शोणितप्रभम् ॥
पिंडकोद्वेष्टनं शूलं बस्तिकर्षः प्ररोदनम् ॥४२॥
दाहः सर्वांगसंभेदो दर्शनस्य च निग्रहः ॥
लिंगं विस्फुरकाख्ये तु सन्निपातेनिलोल्बणे ॥४३॥

५ शीघ्रकारी सन्निपातः ।

बहिरंतर्ज्वरो दाहः शीनयोगात्कफानिलौ ॥
कुरुतः कुपितौ श्वासकासहिक्काप्रमीलकान् ॥४४॥
पर्वभेदं विसूचीं च प्रलापं गौरवं क्लमम् ॥
नाभिपार्श्वे रुजा तस्य छिन्नः श्वासः प्रवर्तते ॥४५॥
स्रोतोभ्यः शोणितावृत्तिः शूलं श्वासस्तृषा भृशम् ॥
स्यादहोरात्रजीवित्वं पित्ताढ्ये शीघ्रकारिणि ॥४६॥

६ कफोल्वण संनिपातः ।

तंद्रा शीनज्वरो दाहो हृद्ग्रहो मधुरास्यता ॥
अरुचिर्गौरवालस्ये श्लेष्मनिष्ठीवनं भृशम् ॥४७॥
तृप्तिर्मूर्छा वमिस्तृष्णा दृष्टिवाक्छ्रोत्रनिग्रहः ॥
कफस्य निग्रहात्पित्तं कुर्यात्सोपद्रवं ज्वरम् ॥४८॥

पित्तस्य निग्रहात्क्रुद्धो मेदोमज्जास्थितोनिलः ॥
हृद्भेदं वहिरायासं कृत्वा हंत्युपवासनः ॥४९॥
अत्र चेत्मार्तिं भुक्ते वा त्रिरात्रं नैव जीवति ॥

७ व्यालाकृतिः संन्निपातः कफाधिकः ।

भवेत्कफाधिके रूपं सन्निपाते कफोल्बणे ॥५०॥
मध्यक्षीणाधिकाः कुर्युः पित्तवातकफाः क्रमात् ॥
मध्यं दाहं ज्वरं नित्यं स्वल्पशूलं विसंज्ञताम् ॥५१॥
मन्यायां हृदये कंठे मस्तके वदने रुजम् ॥
हिक्कांगगौरवं ग्लानिं वाक्संगं तनुसंगतिम् ॥५२॥
प्रमीलं च कटीतोदं कासं श्वासं च जन्तुरुक् ॥
उत्पाद्य कर्णमूल स्वशूल शांतिं गता अपि ॥५३॥
कुर्वंति कर्णमूलाख्यां पिडिकां कर्णमूलजाम् ॥
व्यालाकृतिः स विज्ञेयस्त्वयदाद्वर्वाक् स सिध्यति ॥५४॥

८ कर्कटकः सन्निपातः ।

मध्यक्षीणाधिका यत्र कुर्युर्वातादयः क्रमात् ॥
स्वस्वं रूपं स्वशक्त्या च जिह्वां स्तब्धां सुकर्कशाम् ॥५५॥
कंठकूजनमालस्यं मुखमालक्तकोपमम् ॥
शूकपूर्णगलत्वं च शुष्ककंठोष्ठतालुकः ॥५६॥
अंतर्दाहं गुदभ्रंशं वाग्भ्रंशं दृष्टिनिग्रहम् ॥
सरक्तकफनिष्ठीवं कृच्छ्रात्स्तोकं मुहुर्मुहुः ॥५७॥
प्रमीलं श्वासकासानां प्रत्यहं परिवर्धनम् ॥
अनिष्टेच्छा मनोग्लानिः पार्श्वे बाणहतोपमे ॥५८॥
कफस्याकृष्यमाणस्य हृदयादप्रवर्तनम् ॥
पार्श्वाघातं तथा बाणैस्तुद्यते म्रियते भृशम् ॥५९॥
एष कर्कटको नाम सन्निपातः सुदारुणः ॥

९ संमोहक संनिपातः ।

वृद्धमध्यमहीनास्तु कुर्युर्वातादयः क्रमात् ॥६०॥
एकपक्षाभिघातं च यत्र लिंगं स्वकंस्वकम् ॥
कंपमूर्छाभ्रमायासविलापारतिमोहनम् ॥६१॥
संमोहक इति ख्यातः सन्निपातोतिकष्टकः ॥

१० संग्राम संनिपातः ।

हीनप्रवृद्धमध्याख्या यत्र वातादयः क्रमात् ॥६२॥
कुर्वंत्यतोनेकगदं स्वंस्वं लिंगं च शक्तितः ॥
कफपित्तासृजां स्वेभ्यो निर्गमः स्फोटसंभवः ॥६३॥
सर्वस्रोतःप्रपाकश्च संग्रामाख्यो ज्वरो मतः ॥

११ कवच संनिपातः ।

प्रवृद्धहीनमध्यस्था यत्र वातादयः क्रमात् ॥६४॥
स्वंस्वं लिंगं प्रकुर्वंति विलापायासकंपनम् ॥
मन्यास्तंभं च मृत्युं च मूर्छामोहारतिभ्रमम् ॥६५॥
सन्निपातः स विज्ञेयस्तज्ज्ञैः कवचसंज्ञितः ॥

१२ पालक सन्निपातः ।

मध्यप्रवृद्धहीनाश्च यत्र वातादयः क्रमात् ॥६६॥
स्वंस्वं लिंगं प्रकुर्वंति स्तब्धांगं स्तब्धदृष्टितां ॥
अंतःपाकं यकृत्प्लीहहृत्क्लोमांत्रोदरेषु च ॥६७॥
पूयस्रावं गुदास्याभ्यां शीर्णदंतनतिर्नृणाम् ॥
मर्मांतरहतस्येव शयनं च विशेषतः ॥६८॥
पाकलाख्यः स विज्ञेयो सन्निपातोतिदारुणः ॥

१३ कूटपाल संनिपातः ।

वृद्धा वातादयो यत्र स्वैःस्वैर्लिंगैः समन्विताः ॥६९॥

उच्छ्‌वासपरतां कुर्युर्मूकतां स्तब्धतां दृशः ॥
आस्यदंतश्रुतेर्नाशं स्तब्धांगत्वं विसंज्ञताम् ॥७०॥
जीवनं च त्र्यहेतीते स ज्ञेयः कूटपालकः ॥
कूटपालकिनं दृष्ट्वा व्याहरंत्यल्पबुद्धयः ॥
गृहभूतपिशाचाद्यैर्विषाद्यैर्वापि वीक्षितम् ॥७१॥

इति त्रयोदश सन्निपाताः ॥

अथ ज्वर मर्यादा ।

दोषे प्रवृद्धे नष्टेग्नौ सर्वसंपूर्णलक्षणः ॥
सन्निपातज्वरोसाध्यः कृच्छ्रसाध्यस्ततोन्यथा ॥७२॥
सप्तमे दिवसे प्राप्ते दशमे द्वादशेपि वा ॥
पुनर्घोरतरो भूत्वा प्रशमं याति हंति वा ॥७३॥
पित्तकफानिलवृद्ध्या दशदिवसद्वादशाहसप्ताहात् ॥
हंति विमुंचति पुरुषं त्रिदोषजो धातुमलपाकात् ॥७४॥
सप्तमी द्विगुणा यावन्नवम्येकादशी तथा ॥
एषा त्रिदोषमर्यादा मोक्षाय च वधाय च ॥७५॥
ज्वरस्य पूर्वं ज्वरमध्यतो वा
ज्वरांततो वा श्रुतिमूलशोथः ॥
क्रमादसाध्यः खलु कृच्छ्रसाध्यः
सुखेन साध्यो मुनिभिः प्रदिष्टः ॥७६॥

अभिन्यास ज्वर ।

अथः प्रकुपिता दोषा उरःस्रोतोनुगामिनः ॥
आमावबद्धा ग्रथिता बुद्धींद्रियमनोगताः ॥७७॥
जनयंति महाघोरमभिन्यास ज्वरं दृढम् ॥
तेन सज्ञायते रोगी गतसर्वेंद्रियक्रियः ॥७८॥
प्रलाप्येयः स भूयिष्ठं कश्चिदेवात्र सिध्यति ॥

आगंतुज्वरः ।

अभिचाराभिषंगाभ्यामभिघाताभिशापतः ॥
आगंतुर्जायते दोषैर्यथास्वं तं विभावयेत् ॥७९॥

विषजः ।

श्यावास्यता विषकृते तथातीसार एव च ॥८०॥
भक्तारुचिः पिपासा च तोदश्च सह मूर्छया ॥

औषधीगंधजः ।

औषधीगंधजे मूर्छा शिरोरुग्वमथुस्तथा ॥८१॥

कामजः ।

कामजे चित्तविभ्रंशस्तंद्रालस्यमभोजनम् ॥

भयकोपजः ।

भयात्प्रलापः शोकाच्च भवेत्कोपाच्च वेपथुः ॥८२॥

अभिचारजः अभिशापजः ।

अभिचाराभिशापाभ्यां मोहस्तृष्णा च जायते ॥
भूताभिषंगादुद्वेगो हास्यरोदनकंपनम् ॥८३॥
कामशोकभयाद्वायुः क्रोधात्पित्तं त्रयो मलाः ॥
भूताभिषंगात्कुप्यंति भूतसामान्यलक्षणाः ॥८४॥

विषमज्वराः ।

दोषोल्पोहितसंभूतो ज्वरोत्सृष्टस्य वा पुनः ॥
धातुमन्यतमं प्राप्य करोति विषमज्वरम् ॥८५॥
यः स्यादनियतात्कालाच्छीतोष्णाभ्यां तथैव च ॥
वेगतश्चापि विषमः स ज्वरो विषमो मतः ॥८६॥
संततः सततोन्येद्युस्तृतीयकचतुर्थकौ ॥
संततो रसरक्तस्थः सततो रक्तधातुगः ॥८७॥

अन्येद्युष्कं प्रकुरुते दोष पिशितधातुगः ॥
मेदोगतस्तृतीयाख्यो ह्यस्थिमज्जागतः पुनः ॥८८॥
कुर्याच्चातुर्थिकं घोरमंतकं रोगसंकरम् ॥
सप्ताहं वा दशाहं वा द्वादशाहमथापि वा ॥८९॥
संतत्या योऽविसर्गी स्यात्सततः स निगद्यते ॥
अहोरात्रे सततको द्वौ कालावनुवर्तते ॥९०॥
अन्येद्युष्कस्त्वहोरात्रमेककालं प्रवर्तते ॥
तृतीयकस्तृतीयेऽह्नि चतुर्थेऽह्नि चतुर्थकः ॥९१॥
इत्यादयस्तु विज्ञेया ज्वरा नानाविधा बुधैः ॥

ज्वरोपद्रवाः ।

श्वासो मूर्छारुचिच्छर्दिस्तृष्णातीसारविड्ग्रहाः ॥९२॥
हिक्काकासांगभेदाश्च ज्वरस्योपद्रवा दश ॥

सामज्वर ।

तंद्रा लालाप्रसेकश्च स्तब्धता क्षुत्प्रणाशता ॥९३॥
ह्रासो मूत्रभूयस्त्वं सामज्वरलक्षणम् ॥
सामे न भेषजं देय निरामे तद्विचारतः ॥९४॥

ज्वरमुक्ति लक्षण ।

दाहः स्वेदो भ्रमस्तृष्णा कंपविड्भेदसज्ञनाः ॥
कूजनं चातिवैगंध्यमाकृतिर्ज्वरमोक्षणे ॥९५॥

दोष धातुपाक लक्षणं ।

दोषप्रकृतिवैकृत्यं लघुता ज्वरदेहयोः ॥
इंद्रियाणां च वैमल्यं दोषपाकस्य लक्षणम् ॥९६॥
निद्रानाशो हृदि स्तंभो विष्टंभो गौरवारुचिः ॥
अरतिर्बलहानिश्च धातूनां पाकलक्षणम् ॥९७॥

असाध्य लक्षणं ।

हतप्रभेंद्रियं क्षाममरोचकनिपीडितम् ॥
गंभीरं तीक्ष्णवेगार्तं ज्वरितं परिवर्ज्जयेत् ॥९८॥
हिक्काश्वासतृषायुक्तो मूढो विभ्रांतलोचनः ॥
सततोच्छ्वासहीनश्च म्रियते ज्वरपीडितः ॥९९॥

ज्वरमुक्तेर्लक्षणं ।

देहो लघुर्व्यपगतश्रममोहतापः
पाको मुखे करणसौष्ठवमव्यथत्वम् ॥
स्वेदः क्षवः प्रकृतियोगिमनोन्नलिप्सा ॥
कंपश्च मूर्ध्नि विगतज्वरलक्षणानि ॥१००॥

इतिश्री योगतरंगिणी संहितायां संक्षेपतो ज्वरनिदाननिरूपणं नामैकोनविंशस्तरंगः ॥१९॥

॥ अथ विंशस्तरंगः ॥२०॥

अथ क्रमप्राप्तस्य प्रथमं ज्वरस्य चिकित्सा ।

ज्वरे लंघनमेवादावुपदिष्टमृते ज्वरात् ॥
क्षयानिलभयक्रोधकामशोकश्रमोद्भवात् ॥ १ ॥
आमाशयस्थो हत्वाग्निं सामो मार्गान्पिधापयन् ॥
विदधाति ज्वरं दोषस्तस्माल्लंघनमाचरेत् ॥ २ ॥
अनवस्थितदोषाग्नेर्लंघनं दोषपाचनम् ॥
ज्वरघ्नं दीपनं कांक्षारुचिलाघवकारकम् ॥ ३ ॥
बलाविरोधिना चैनं लंघनं नोपपादयेत् ॥
बलाधिष्ठानमारोग्यं यदर्थोयं क्रियाक्रमः ॥ ४ ॥

अथ चक्रदत्त ।

न लंघयेन्मारुतजे ज्वरे च
क्षयोद्भवे च क्षुधिते च जंतौ ॥
न गुर्विणीदुर्बलबालवृद्धान्
भीतांस्तृषार्त्तानपि सोर्ध्ववातान् ॥ ५ ॥

आसप्तरात्रं तरुणं ज्वरमाहुर्मनीषिणः ॥
मध्यं द्वादशरात्रं तु पुराणमत उत्तरम् ॥ ६ ॥
ज्वरितं ज्वरमुक्तं वा दिनांते भोजयेल्लघु ॥
श्लेष्मक्षये प्रवृद्धोष्मा बलवाननलस्तदा ॥ ७ ॥

ज्वरपाक मर्यादा ।

वातजः सप्तरात्रेण दशरात्रेण पित्तजः ॥
श्लेष्मजो द्वादशाहेन ज्वरः पाकं प्रपद्यते ॥ ८ ॥

लंघने शक्ति ।

दोषाणामेव सा शक्तिर्लंघने या सहिष्णुता ॥
न हि दोषक्षये कश्चित्सहते लंघनं महत् ॥ ९ ॥

नवज्वरे वर्ज्यानि ।

नवज्वरे दिवास्वापस्नान भोजनमैथुनम् ॥
क्रोधप्रवासव्यायामकषायांश्च विवर्जयेत् ॥१०॥

ज्वरे पथ्यानि ।

निर्वातभवनावासमुष्णवारिनिषेवणम् ॥
अभूरिजल्प निःक्रोधकामशोक च रोगिणम् ॥
कुर्यादारोग्यसंपत्यै शीघ्र वैद्यो विचक्षणः ॥११॥

उष्णोमोदक भेदा॰ गुणा ।

कफमेदोनिलामघ्नं दीपन बस्तिशोधनम् ॥
कासश्वासज्वरहरं पथ्यमुष्णोदकं सदा ॥१२॥

यत्क्वाथ्यमानं निर्वेगं निष्फेनं निर्मलं भवेत् ॥
अर्द्धावशिष्टं भवति तदुष्णोदकमुच्यते ॥१३॥
तत्पादहीनं पित्तघ्नमर्द्धहीनं च वातजित् ॥
कफघ्नं पादशेषं च पाचनं लघु दीपनम् ॥१४॥
शारदं चार्धपादोनं पादहीनं च हैमजम् ॥
शिशिरे च वसंते च ग्रीष्मे चार्द्धावशेषितम् ॥१५॥
विपरीते ऋतौ लद्वत्प्रावृष्यष्टावशेषितम् ॥
भिनत्ति श्लेष्मसंघातं मारुतं चापकर्षति ॥१६॥
अजीर्णं जरयत्याशु पीतमुष्णोदकं निशि ॥
धारापातेन विष्टंभि दुर्जरं पवनाहतं ॥१७॥
शृतशीतं त्रिदोषघ्नं बाष्पांतर्भावशीतलम् ॥
दिवाशृतं तु यत्तोयं रात्रौ तद्गुरुतां व्रजेत् ॥१८॥
रात्रौ शृतं तु दिवसे गुरुत्वमधिगच्छति ॥
मूर्छापित्तोष्मदाहेषु विषोत्थे च मदात्यये ॥१९॥
श्रमक्लमपरीते च मार्गोत्थे वमथौ तथा ॥
ऊर्ध्वगे रक्तपित्ते च शीतमंभः प्रशस्यते ॥२०॥
अरोचके प्रतिश्याये प्रसेके श्वयथौ क्षये ॥
मंदाग्नावुदरे कुष्ठे ज्वरे नेत्रामये तथा ॥
व्रणे च मधुमेहे च पानीयं मंदमाचरेत् ॥२१॥

मदनपालात् ।

पानीयं पानीयं शरदि वसंते च नादेयम् ॥
नादेय नादेय शरदि वसंते च नादेयं ॥२२॥
उत्तमस्य पलं मात्रा त्रिभिरक्षैश्च मध्यमा ॥
जघन्यस्य पलार्द्धेन स्नेहक्वाथौषधेषु च ॥२३॥

कर्ष[१]चूर्णस्य कल्कस्य गुटिकानां च सर्वशः ॥
द्रवः शुक्त्यावलेहश्च पातव्यश्च चतुर्दश ॥
मात्रामधुघृतादीनां क्वाथस्नेहेषु चूर्णवत् ॥२४॥
द्विचत्वारिंशता माषैरष्टादशकयद्धकैः ॥
पलं द्वादशयद्धं स्याद्गुंजाषद्कसमन्वितैः ॥२५॥
क्वाथ्यद्रव्यपल वारि द्विरष्टगुणमिष्यते ॥
चतुर्भागावशिष्ट तु पेय पलचतुष्टयम् ॥२६॥
दीप्तानलं महाकायं पाययेदञ्जलिं जलम् ॥
अन्ये स्वर्द्धं परित्यज्य प्रसृतं तु चिकित्सकाः ॥२७॥
क्वाथत्यागमनिष्टं तत्त्वष्टभागावशेषितम् ॥
पारंपर्योपदेशेन वृद्धवैद्याः पलद्वयम् ॥
पाययंत्यातुरं सायं पाचन सप्तमेऽहनि ॥२८॥

वीर्याधिक भवति भेषजमन्नहीनं
हन्यात्तदामयमसंशयमाशु चैव ॥
तद्वालवृद्धयुवतीमृदवोऽथ पीत्वा
ग्लानिं परां समुपयांति बलक्षय च ॥२९॥

अनुलोमोऽनिलः स्वास्थ्यं क्षुत्तृष्णा सुमनस्कता ॥
लघुत्वमिंद्रियोद्गारशुद्धिजीर्णौषधाकृतिः ॥३०॥
क्लमो दाहोंगसदनं भ्रमोमूर्छाशिरोरुजः ॥
अरतिर्बलहानिश्च साचशेषौषधाकृतिः ॥३१॥
औषधशेषे भुक्तं पीत च तथौषध सशेषेन्ने ॥
न करोति गदोपशमं प्रकोपयन्त्यन्यरोगांश्च ॥३२॥

शीघ्रं विपाकमुपयाति बलं न हन्या-
दन्नावृतं न च पुनर्वदनान्निरेति ॥
प्राग्भक्तसेवितमथौषधमेतदेव
दद्याच भीरुशिशुवृद्धवरांगनाभ्यः ॥३३॥

अथ गुडूच्यादिः । अथ वातज्वरचिकित्सा ।

गुडूचीपिप्पलीमूलनागरैः पाचनं स्मृतम् ॥
पृथो वातज्वरे सर्वलिंगे सप्तमवासरे ॥३४॥

अथ शालिपर्ण्यादिः ।

शालिपर्णी बला द्राक्षा गुडूची सारिवा तथा ॥
आसां काथं पिबेत्कोष्णं तीव्रवातज्वरच्छिदम् ॥३५॥

अथ किरातादिः ।

किराताब्दामृतोदीच्यबृहतीद्वयगोक्षुरैः ॥
सस्थिराकलसीविश्वैः काथो वातज्वरापहः ॥३६॥

अथ काश्मर्यादिः ।

काश्मरीसारिवाद्राक्षात्रायमाणामृताभवः ॥
कषायः सगुडः पीतो वातज्वरविनाशनः ॥३७॥

अथ पैत्ते कट्फलादिः ।

कट्फलेंद्रयवारिष्टतिक्तामुस्तैः शृतं जलम् ॥
पाचनं दशमेऽहनि स्यात्तीव्रे पित्तज्वरे नृणाम् ॥३८॥

अथ दुरालभादिः योगशतात् ।

दुरालभापर्पटकप्रियंगु-
भूनिंबवासाकटुरोहिणीनाम् ॥
काथं पिबेच्छर्करयावगाढं
तृष्णास्रपित्तज्वरदाहयुक्तः ॥३९॥

एकः पर्पटकः श्रेष्ठः पित्तज्वरविनाशनः ॥
किं पुनर्यदि युज्येत चंदनोशीरधान्यकैः ॥४०॥

अथ श्लेष्मजे बीजपूरादिः ।

बीजपूरशिफापथ्यानागरग्रंथिकैः शृतम् ॥
सक्षारं पाचनं श्लेष्मज्वरे द्वादशवासरे ॥४१॥

अथ भूनिम्बादि ।

भूनिम्बनिम्बपिप्पलयः शठी शुंठी शतावरी ॥
गुडूची बृहती चेति क्वाथो हन्यात्कफज्वरम् ॥४२॥

अथ आमलक्यादि ।

आमलक्यभया कृष्णा चित्रकश्चेत्ययं गणः ॥
सर्वज्वरभयातंकभेदी दीपनपाचनः ॥४३॥

अथ चतुर्भद्रावलेह ।

कट्फल पौष्करं कृष्णा शृंगी च मधुना सह ॥
श्वासकासहरः श्रेष्ठो प्रोक्तो लेहकफांतकृत् ॥४४॥

सर्वज्वरे छिन्नादि योगशतात् ।

छिन्नोद्भवांबुधरधन्वयवासविश्वै-
र्दुःस्पर्शपर्पटकमेघकिराततिक्तैः ॥
मुस्ताटरूपकमहौषधधन्वयासैः
क्वाथ पिबेदनिलपित्त कफज्वरेषु ॥४५॥

अथ गुडूच्यादि ।

अमृतारिष्टकचंदनपद्मकधान्योद्भवः क्वाथः ॥
ज्वरहृल्लासच्छर्दिस्तृष्णादाहारुचीर्हन्यात् ॥४६॥

अथ क्षुद्रादि वातश्लेष्मज्वरे ।

क्षुद्राशुंठीगुडूचीनां कषायः पौष्करस्य च ॥
कफवाताधिके पेयो ज्वरे वापि त्रिदोषजे ॥४७॥

अथ आरग्वधादि पचक ।

आरग्वधकणामूलमुस्तातिक्ताभयाकृतः ॥
क्वाथः शमयति क्षिप्रं ज्वरं वातकफोद्भवम् ॥४८॥

अथ पित्तश्लेष्मजे अमृताष्टक क्वाथः शार्ङ्गधरात् ।

अमृतारिष्टकटुकामुस्तेंद्रयवनागरैः ॥
पटोलचंदनाभ्यां च शृतं पिप्पलिचूर्णयुक् ॥
अमृताष्टकमेनत्तु पित्तश्लेष्मज्वरापहम् ॥४९॥

अथ पटोलादिः ।

पटोलं चंदनं मूर्वा पाठा तिक्तामृतागणः ॥
पित्तश्लेष्मज्वरच्छर्दिदाहकंडूविषापहः ॥५०॥
पटोलं पिचुमंदं च त्रिफला मधुकं बला ॥
साधितोयं कषायः स्यात्पित्तश्लेष्मभवे ज्वरे ॥५१॥

अथ सन्निपाते लंघनमर्यादा ।

त्रिरात्रं पंचरात्रं वा दशरात्रमथापि वा ॥
लंघनं सन्निपातेषु कुर्यादारोग्यदर्शनात् ॥५२॥

अथ कंटकार्यादिः ।

कंटकारीद्वयं शुंठी धान्यकं सुरदारु च ॥
एभिः शृतं पाचनं स्यात्सर्वज्वरनिवारणम् ॥५३॥

अथ दशमूलम् ।

शालिपर्णीपृष्ठिपर्णीबृहतीद्वयगोक्षुरैः ॥
बिल्वाग्निमंथस्योनाकपाटलाकाश्मरीयुतैः ॥५४॥
दशमूलमिति ख्यातं कथितं तज्जलं पिबेत् ॥
पिप्पलीचूर्णसंयुक्तं सन्निपातज्वरापहम् ॥५५॥

अथ भार्ग्यादि द्वात्रिंशकः आरोग्य दर्पणात् ।

भार्ङ्गीभूनिंबनिंबैर्घनकटुकवचा व्योषवासाविशाला-
रास्नानंतापटोलीसुरतरुरजनी पाटलाटिंडुकीभिः ॥
ब्राह्मीदार्वीगुडूचीत्रिवृदतिविषया पुष्करत्रायमाणैः
पाठाव्याघ्रीकलिंगैस्त्रिफलसटियुतैः कल्पितैस्तुल्यभागैः ॥५६॥

उद्धूलनं सन्निपाते ।

यवानिका वचा शुंठी पिप्पली कारवी तथा ॥
एतैरुद्धूलनं शस्तं त्रिदोषोत्थे ज्वरे नृणाम् ॥
एतस्यास्तरणं शस्तं सन्निपातभवे नृणाम् ॥७१॥

सन्निपातज्वरे प्राक् प्रयोज्यं ।

लघनं वालुकास्वेदो नस्यं निष्ठीवनं तथा ॥
अवलेहोंजन चैव प्राक् प्रयोज्यं त्रिदोषजे ॥७२॥

वालुका स्वेदप्रकारः ।

खर्परभ्रष्टपटस्थितकांजिकसंसिक्तवालुकास्वेदः ॥
शमयति वातकफामयमस्तकशूलांगभंगादीन् ॥७३॥

संज्ञाकर नस्यं सन्निपाते ।

सैंधवं श्वेतमरिचं सर्षपाः कुष्ठमेव च ॥
वस्तमूत्रेण पिष्टानि नस्यात्सज्ञाकराणि च ॥७४॥

निष्ठीवनं ।

आर्द्रकस्य रसोपेतं सैंधवं सकटुत्रयम् ॥
आकंठं धारयेदास्ये निष्ठीवेच्च पुनः पुनः ॥
लीन आकृष्यते श्लेष्मा लाघवं चास्य जायते ॥७५॥

संज्ञाकर अंजनं ।

शिरीषवीजगोमूत्रकृष्णामरिचसैंधवैः ॥
अंजनं स्यात्प्रबोधाय सरसोनशिलावचैः ॥७६॥
रसस्थे रससंशुद्धी रक्तस्थे रक्तमोक्षणम् ॥
मांसस्थे रेचनं शस्तं मेदःस्थे चासहिष्णुता ॥७७॥
रेचनं वमन स्वेदश्चास्थिस्थे स्वेदमर्दने ॥
मज्जाशुक्राश्रयं दृष्ट्वा तमसाध्यं ज्वरं वदेत् ॥७८॥

इति योगरत्नावल्या ।

सिद्धार्थादि लेपः सर्वज्वरे ।

सिद्धार्थको वचा हिंगु करंजः सुरदारु च ॥
मंजिष्ठा त्रिफला श्वेता कटभी त्र्यक्कटुत्रयम् ॥७९॥
प्रियंगुश्च शिरीषं च निशा दार्वी समांशतः ॥
अजामूत्रेण संपिष्टो गोमूत्रैर्वाथ चूर्णितः ॥
सर्वज्वरं निहंत्याशु सिद्धार्थादिः प्रलेपतः ॥८०॥

अथ ज्वरे उद्धूलनं ।

रसविषमरिचमहेशप्रियफलमस्वैकमूत्रतुर्यसुभिः ॥
भागैर्मितमुद्धूलनमिदमभितस्वेदशैत्यहरम् ॥८१॥

त्रिदोषे तप्तायोलांछनं ।

तप्तायोलांछनं पश्चात्तालुमूर्ध्नि त्रिदोषजे ॥

त्रिदोषे रुद्राभिषेकादिः ।

रुद्राभिषेकभूदेवभोजनग्रहजाप्यतः ॥
मंत्ररक्षादिभिः कार्या सन्निपातप्रतिक्रिया ॥८२॥

अथ त्रिदोषे संधिगादीनां कर्णमूलशोथस्य चिकित्सा ।

सन्निपातज्वरस्यांते कर्णमूले सुदारुणः ॥
शोथः संजायते तेन कश्चिदेव प्रमुच्यते ॥८३॥
न रक्तेन विना वृद्धिर्ज्वरे वा सन्निपातके ॥
दोषः प्रशममायाति क्राथपाचनकादिभिः ॥८४॥
दोषे प्रशमितेप्यत्र रक्तं नैव विलीयते ॥
तेन संजायते शोथः कर्णमूले सुदारुणः ॥८५॥
तस्मात्तत्र प्रतीकारं कुर्याद्रक्तावसेचनैः ॥
जलौकालाबुशृंगैश्च ततः स्याल्लेपनं हितम् ॥८६॥
यदा पाको भवेत्तत्र व्रणवद् भेषजं तदा ॥
कर्कटस्य च मांसेन स्वेदनं वमनं तथा ॥
कर्णमूलभवे शोथे हितादपि हितं मतम् ॥८७॥

सिद्धार्थसैंधववचागृहधूमविश्वैः
पिष्टैर्जलेन निशया सहितैश्च सूक्ष्मम् ॥
लेपो हितो रुधिरनाशकरः प्रतीतः ॥
शोफव्रणस्य शमनः सरुजस्य कर्णे ॥८८॥
कुलत्थं कट्फलं शुंठी कारवी च समांशकैः ॥
सुखोष्णं लेपनं कार्यं कर्णमूले मुहुर्मुहुः ॥८९॥

गल शोथहर लेपः ।

बीजपूरकमूलत्वग्वह्निमंथस्तथैव च ॥
नागरं देवदारुश्च रास्ना वह्निश्च योजितः ॥
एभिः प्रलेपनं श्रेष्ठं गलशोथविनाशनम् ॥९०॥

कर्णमूलशोथे लेपः ।

शरपुंखाशिफातुंबीसकृष्णा विषमुष्टिभिः ॥
प्रलेपो वा हिंडबीभिः श्वयथौ कर्णमूलजे ॥९१॥

पंचमुष्टिक क्वाथः ।

शुष्कां च स्फुटितां जिह्वां द्राक्षया मधुपिष्टया ॥
प्रलेपयेत्सघृतया सन्निपातज्वरे गदे ॥९२॥
यवकोलकुलत्थानां मुद्गमूलकशुंठयोः ॥
एकैकं मुष्टिमादाय पचेदष्टगुणे जले ॥९३॥
पंचमुष्टिक इत्येष वातपित्तकफापहः ॥
शस्यते गुल्मशूलेषु श्वासे कासे क्षये ज्वरे ॥९४॥

सन्निपाते वैद्यकर्तव्यं ।

सन्निपाते प्रकंपंतं विलपंतं च यो घृतम् ॥
भोजयेत्पाययेद्वापि स वैद्याख्यां कथं व्रजेत् ॥९५॥
सन्निपातेषु दाहार्तं यः सिंचेच्छीतवारिणा ॥
आतुरः स कथं जीवेद्भिषग्वा स कथं भवेत् ॥९६॥

मृत्युना सह योद्धव्यं सन्निपातं चिकित्सता ॥
यस्तु तत्र भवेज्जेता स जेता यमसंगरे ॥९७॥
सन्निपातार्णवे मग्नं योऽभ्युद्धरति मानवम् ॥
कस्तेन न कृतो धर्मः कां च पूजां न सोऽर्हति ॥९८॥

अथ अभिचारादिज्वरेषु ।

अभिचाराभिशापोत्थौ ज्वरौ होमादिभिर्जयेत् ॥
दानस्वस्त्ययनातिथ्यैस्तथा ग्रहपीडजौ ॥९९॥
औषधीगंधविषजौ विषपित्तप्रसाधनैः ॥
जयेत्कषायैर्मतिमान्सर्वगंधकृतं ज्वरम् ॥१००॥
क्रोधजे पित्तजित्कार्यो अर्थोसद्वाक्यमेव च ॥
आश्वासेनेष्टलाभेन वायोः प्रशमनेन च ॥१०१॥
हर्षणैश्च शमं यांति कामशोकभयज्वराः ॥
भूतविद्यासमुद्दिष्टैर्बंधावेशनताडनैः ॥
जयेद् भूताभिषंगोत्थं मनःशांत्यैव मानसम् ॥१०२॥

अथ विषमज्वरचिकित्सा एकाहिके पटोलादिः ।

पटोलत्रिफलानिंबद्राक्षाशम्पाकवालकैः ॥
क्वाथः सितामधुयुतो जयेदेकाहिकं ज्वरम् ॥१०३॥

तृतीयके गुडूच्यादिः ।

गुडूचीधान्यमुस्ताभिश्चंदनोशीरनागरैः ॥
सितामधुयुतः क्वाथस्तृतीयज्वरनाशनः ॥१०४॥

चातुर्थिके क्वाथः ।

देवदारुशिवावासाशालिपर्णीमहौषधैः ॥
धात्रीयुतैः शृतं शीतं दद्यान्मधुसितायुतम् ॥१०५॥
चातुर्थिके ज्वरे श्वासे कासे मंदानले तथा ॥

सर्वविषमज्वरे ।

मुस्ताक्षुद्रामृताशुंठीधात्रीक्वाथः समाक्षिकः ॥१०६॥
पिप्पलीचूर्णयुक्सर्वविषमज्वरनाशनः ॥

सर्वशीतज्वरेषु ।

क्षुद्राधान्यकशुंठीभिर्गुडूचीमुस्तपद्मकैः ॥१०७॥
रक्तचंदनभूनिंबपटोलवृषपौष्करैः ॥
कटुकेंद्रयवारिष्टभार्गीपर्पटकैः समैः ॥
क्वाथ प्रातर्निषेवेत सर्वशीतज्वरच्छिदम् ॥१०८॥

दार्व्यादि सर्वज्वरे । आरोग्यदर्पणत ।

दार्वीदारुकलिंगलोहितलताशम्पाकपाठासटी-
शौंडीवीरकिरातवारणकणात्रायंतिकापद्मकैः ॥
उग्राधान्यकनागराब्दसरलैः शीग्रंबुसिंहीशिवा-
व्याघ्रीपर्पटदर्भमूलकटुकानतामृतापौष्करैः ॥१०९॥
धातुस्थं विषमं त्रिदोषजनितं चैकाहिक द्व्याहिकं
क्वाथो हंति तृतीयक ज्वरमथ चातुर्थिकं भूतजम् ॥११०॥

जीर्णज्वरादौ योगशतात् ।

निदिग्धिकानागरिकामृतानां
क्वाथ पिबेन्मिश्रितपिप्पलीकम् ॥
जीर्णज्वरारोचककासशूल-
श्वासाग्निमांद्यार्दितपीनसेषु ॥१११॥

न शाम्यति ज्वरो यस्तु पक्षादूर्ध्वं शरीरिणाम् ॥
मंदवेगानुबंधश्च स ज्ञेयो जीर्णतां गतः ॥११२॥
कासाजीर्णज्वरश्वासहृत्पांडुक्रमिरोगहृत् ॥
जीर्णज्वरेग्निसादे च शस्यते गुडपिप्पली ॥११३॥

वर्धमान पिप्पली ।

त्रिभिरथ परिवृद्धं पंचभिः सप्तभिर्वा
दशभिरथ विवृद्धं पिप्पलीवर्द्धमानः ॥
इति पिबति पुमान्यस्तस्य न श्वासकास-
ज्वरजठरगुदार्शोवातरक्तक्षयाः स्युः ॥११४॥

विषमज्वरेषु तांत्रिकप्रयोगाः आरोग्यदर्पणतः ।

ऊर्णनाभिस्थजालेन कज्जलं ग्राहयेत्ततः ॥
अंजयेन्नेत्रयुगलं त्र्याहिकं तु ज्वरं जयेत् ॥११५॥
उलूकदक्षिणः पक्षः सितसूत्रेण वेष्टितः ॥
बंधितो वामकर्णे तु हरत्येकाहिकं ज्वरम् ॥११६॥
भृंगराजजटा बद्धा कर्णे[१] रात्रिज्वरापहा ॥
सर्वज्वरहरीश्वेतमंदारस्य च मूलिका ॥११७॥
तुरंगरिपुमूलं वा श्वेतं शीतज्वरापहम् ॥
विवस्त्रेणोद्धृता देवीमूलिका कर्णबंधनात् ॥
चातुर्थिकं ज्वरं हंति द्रोणपुष्पीरसांजनात् ॥११८॥

ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।
क्रोधेश्वराय नमो ज्योतिप ंगाय नमोनमः ।
सिद्धि रुद्र आज्ञापयति स्वाहा ॥

अनेन सप्तजप्तैस्तु सर्षपैः सप्त ताडयेत् ॥
चातुर्थिकज्वरान्मुक्तो नरो भवति सर्वथा ॥११९॥

सर्वज्वरारि रसः ।

एकभागो रसो भागद्वयं शुद्धं च गंधकम् ॥
विषस्य च त्रयो भागाश्चतुर्भागा हिमावती ॥१२०॥
जैपालजाः पंच भागा निंबुद्रवविमर्दिताः ॥
कृमिघ्नप्रमिता वटयः कार्या सर्वज्वराच्छिदः ॥१२१॥

शृंगवेरेण दातव्या वटिकैका दिवानिशं ॥
जीर्णज्वरे तथाजीर्णे सामे वा विषमे तथा ॥
सर्वज्वरं निहंत्याशु दावो वनमिवानलः ॥१२२॥

वीरभद्र रसः सन्निपाते ।

त्र्यूषणं पंचलवणं शतपुष्पा द्विजीरकम् ॥
क्षारत्रयं समांशेन चूर्णमेषां पलत्रयम् ॥१२३॥
शुद्धं सूतं पलं चाभ्रं गंधकं च पलं पलम् ॥
आर्द्रकस्य रसैः खल्वे दिनमेकं विमर्दयेत् ॥१२४॥
वीरभद्रो रसः ख्यातो माषैकः सन्निपातजित् ॥
चित्रकार्द्रकसिंधूत्थमनुपानं जलैः सह ॥
पथ्यं क्षीरौदनं देयं द्विवारं च रसो हितः ॥१२५॥

ब्रह्मास्त्र रसः ।

ब्रह्मास्त्रमथ वक्ष्यामि सद्यः प्रत्ययकारकम् ॥
भस्म सूतं त्रिगंधं च तत्समं गरलं त्वहेः ॥१२६॥
त्रिभिः समं विषं योज्यं मरिचं सर्वतुल्यकम् ॥
वराहकेकिमहिषपित्तैः सप्तविभावितम् ॥१२७॥
लांगल्या देवदाल्यो च ज्वालामुख्यार्द्रकद्रवैः ॥
एकविंशतिधा भाव्यं प्रत्येकं घर्मशोषितम् ॥१२८॥
द्विगुंजामात्रनस्येन मृतं तूत्थापयेद् ध्रुवम् ॥
दध्यन्नं ससितं पथ्यमुपचाराश्च शीतलाः ॥१२९॥
सर्वोदरगदघ्नोयमसाध्यमपि साधयेत् ॥
अस्थिशूलानि सर्वाणि नाशयत्येव सर्वथा ॥१३०॥

अथ विनोदविद्याधर रस. ।

रसं गंधं विषं ताम्रं त्रिकटु त्रिफला तथा ॥
कटुका च त्रिवृद्दंती हेमार्कौ टंकणं विषम् ॥१३१॥

एतानि समभागानि सर्वांशं दंतिणीफलम् ॥
चूर्णयित्वा तु तत्सम्यक् मर्दयेद्वह्निकांबुना ॥१३२॥

दंतीक्वाथैस्ततः सम्यग्वटी द्विरक्तिमानतः ॥
विनोदविद्याधर इत्याख्यातस्तरुणज्वरम् ॥१३३॥

शूलं गुल्मं तथा पांडुं ग्रहण्यर्शः कृमीञ्जयेत् ॥
अजीर्णमामवातं च गुल्मोदरगदांस्तथा ॥१३४॥

पंचानन रसः ।

शंभोः कंठविभूषणं समरिचं दैत्येंद्ररक्तं रसः
पक्षौ सागरलोचने हिमरुचिर्भागैस्तथाष्टौ रविः ॥
खल्वांतः खलु मर्दयेद्द्विजलैर्गुंजाप्रमाणोऽशितः
प्रोद्दंडज्वरदंतिदर्पदलने पंचाननोऽसौ रसः ॥१३५॥

पथ्यं च देयं दधिभक्ततक्रं
सिंधूत्थपथ्यासितया समेतम् ॥
गंधानुलेपो हिमतोयपानं
दुग्धं च देयं मधुदाडिमी च ॥१३६॥

महाज्वरांकुशः ।

शुद्धं सूतं विषं गंधं धूर्तबीजं त्रिभिः समम् ॥
चतुर्णां द्विगुणं व्योषं हेमक्षीरीविभावितम् ॥१३७॥

चतुर्वारं घर्मशुष्कं चूर्णं गुंजाद्वयोन्मितम् ॥
जंबीरकस्य मज्जाभिरार्द्रकस्य रसेन वा ॥१३८॥

महाज्वरांकुशो नाम समस्तज्वरनाशनः ॥
एकाहिकं द्व्याहिकं वा त्र्याहिकं च चतुर्थकम् ॥
विषमं च त्रिदोषोत्थं हंति सद्यो न संशयः ॥१३९॥

चिंतामणि रस ।

सूतं गंधकमभ्रकं समलवं सूतार्द्धभागं विषं ॥
तत्तुल्यं जयपालमम्लमृदितं तद् गोलके वेष्टितम् ॥
पत्रैर्मंजुभुजंगवल्लिजनितैर्निक्षिप्य खाते पुटं ॥
दत्वा कुक्कुटसंज्ञकं सह दलैः संचूर्ण्य तत्र क्षिपेत् ॥१४०॥
भागार्धं जयपालबीजममृतं तत्तुल्यमेकीकृतं ॥
गुंजानागरसिंधुचित्रकयुतं सर्वान् ज्वरान्नाशयेत् ॥
शूल संग्रहणीगदं सजठरं दध्यन्नसंसेविनां ॥
सर्वव्याधिवतां नृणां हिततमश्चिंतामणिर्नामतः॥१४१॥

सूचिकाभरणो रस ।

खंडं कृत्वा विषं कृष्णं सार्कदुग्धेल्पभांडके ॥
सकांजिके सगरले क्षिप्त्वा चुल्ल्यां निधापयेत् ॥१४२॥
सप्ताहतः समुद्धृत्य श्लक्ष्णचूर्णीकृतं च तत् ॥
सूचिकाभरणो नाम रसो गुप्ततमो भुवि ॥१४३॥
संज्ञानाशे विचेष्टे च वल्लः कांजिकपेषितः ॥
ब्रह्मरंध्रे प्रयोक्तव्यो महामोहप्रणाशनः ॥१४४॥

वृद्धज्वरांकुश ।

रसदरददिनेशं फेनगंधेन युक्तं
मुनिदिनमिति खल्वे विश्वतोयेन घृष्टम् ॥
ज्वरहरमिह सूत वल्लमात्रप्रमाणं
प्रथमजनितदाहं दापयेदार्द्रकेण ॥१४५॥

सर्वज्वरहर रस ।

रसहिंगुलजेपालं वृद्धया दंत्यंधुमर्दिनम् ॥
प्रहरेण ज्वरं हन्ति गुंजा युग्मं सितायुतम् ॥१४६॥

अथ शीतांकुश रसः ।

अष्टौ तालकमेतदर्द्धममलं शंबूकचूर्णं क्षिपेत् ॥
पश्चादत्र नवांशको वरशिखी सर्वं पुनः पेषयेत् ॥
तोयैस्तत्र कुमारिकादलभवैः पक्वं गजाख्ये पुटे-
ष्वेकद्वित्रिचतुर्थशीतहरणः शीतांकुशोऽयं रसः॥१४७॥

अथ शीतारि रसः ।

तुत्थं टंकणसूतकं विषबलिं सत्खर्परं तालकं
चूर्णं खल्वतले विमर्द्य गुटिका सत्कारवेल्लद्रवैः ॥
गुंजार्धार्धमिता च शुद्धसितया सा पर्णखंडेन वा
एकद्वित्रिचतुर्थकज्वरहरः शीतारिनामा रसः ॥१४८॥

अथ लघुमालिनीवसंतः ।

रसकयुगलभागं वल्लिजं भागमेकं
द्वितयमपि सुखल्वे मर्दयेन्म्रक्षणेन ॥
भवति घृतविमुक्तो निंबुनीरेण यावत्
ज्वरहरमधुकुल्यामालिनीपाग्वसंतः ॥१४९॥
जीर्णज्वरे धातुगतेतिसारे
रक्तान्विते रक्तजविड्ढरोगे ॥
घोरग्रथे पित्तकृते च दोषे
बलप्रदो दुग्धयुतं च पथ्यम् ॥
प्रदरं नाशयत्याशु तथा दुर्नामशोणितम् ॥
विषमं नेत्ररोगं च गजेंद्रमिव केसरी ॥१५०॥

अथ स्वर्णमालिनी वसंतः ।

स्वर्णं मुक्ता दरदमरिचं भागवृद्ध्या प्रयोज्यं
खर्परेऽष्टौ प्रथमजनवनीतेन निंबंबुनाथ ॥
यावत्स्नेहो व्रजति विलयं मर्दयेत्तावदेव
गुंजामात्रा मधुचपलया सर्वरोगे वसंतः ॥१५१॥

जीर्णज्वरे धातुगतेतिसारे
रक्तान्विते रक्तजविष्ठरोगे ॥
घोरव्यथे पित्तभवे विकारे
वल्लद्वयं दुग्धयुतं च पथ्यम् ॥१५२॥

वसंतो मालतीपूर्वः सर्वरोगहरः शिशोः ॥
गर्भिण्यै देयमेतच्च जयंतीपुष्पकैर्युतं ॥
सर्वज्वरहरं श्रेष्ठं गर्भपालनमुत्तमम् ॥१५३॥

अथ जीर्णज्वरे तैलानि । अथ षट्तक्रतैलम् ।

सुवर्चिकानागरकुष्ठमूर्वा
लाक्षानिशालोहितयष्टिकाभिः ॥
तैलं ज्वरे षड्गुणतक्रसिद्ध
मभ्यंजनाच्छीतविदाहनुत्स्यात्
दध्नः ससारकस्य स्यात्षट् तक्रे तक्रमुत्तमम् ॥१५४॥

अथ लघुलाक्षादितैलम् ।

लाक्षाहरिद्रामंजिष्ठाकल्कैस्तैलं विपाचयेत् ॥
षड्गुणेनारनालेन दाहशीतज्वरापहम् ॥१५५॥

अथ लाक्षाद्य तैलम् ।

तैलं लाक्षारस क्षीरं पृथक्प्रस्थं समं पचेत् ॥
चतुर्गुणेरिते क्वाथे द्रव्यैरेतैः पलोन्मितैः ॥१५६॥
लोध्रकट्फलमंजिष्ठामुस्तकेसरपद्मकैः ॥
चंदनोत्पलयष्ट्याव्हैस्तैलं गंडूषधारणात् ॥१५७॥
दंतरोगाः प्रणश्यंति लेपात्सर्वज्वराञ्जयेत् ॥
एतल्लाक्षादिकं तैलं बलपुष्टिप्रदीसिदम् ॥१५८॥

अथ लाक्षारसप्रकारविधिः ।

दशांशं लोध्रमादाय तद्दशांशं च सर्जिकाम् ॥
किञ्चिच्च बदरीपत्रं वारिषोडशधा मतम् ॥
वस्त्रपूतो रसो ग्राह्यो लाक्षायाः पादशेषतः ॥१५९॥

अथ षट्चरणं तैलम् ।

लाक्षामधुकमंजिष्ठामूर्वाचंदनशारिवाः ॥
तैलं षट्चरणं नाम चाभ्यंगाज्ज्वरनाशनम् ॥१६०॥

अथ अंगारक तैलं ।

द्राक्षा मूर्वा हरिद्रे द्वे मंजिष्ठा चेंद्रवारुणी ॥
बृहती सैंधवं कुष्ठं रास्ना मांसी शतावरी ॥१६१॥
आरनालाढकेनैव तैलं प्रस्थं विपाचयेत् ॥
तैलमंगारकं नाम सर्वज्वरविमोक्षणम् ॥१६२॥

अथ महासुदर्शन चूर्णं ।

त्रिफला रजनीयुग्मं कंटकारीयुगं सटी ॥
त्रिकटु ग्रंथिकं मूर्वा गुडूची धन्वयासकः ॥१६३॥
कटुका पर्पटं मुस्तं त्रायमाणं च वालकम् ॥
निंबं पुष्करमूलं च मधुयष्टी च वत्सकः ॥१६४॥
यवानींद्रयवा भार्गी शिग्रुबीजं सुराष्ट्रजा ॥
वचा त्वक्पद्मकोशीरचंदनातिविषाबलाः ॥१६५॥
शालिपर्णी पृष्ठिपर्णी विडंगं तगरं तथा ॥
चित्रको देवकाष्ठं च चव्यं पत्रं पटोलजम् ॥१६६॥
जीवकर्षभकौ चैव लवंगं वंशलोचनम् ॥
पुंडरीकं च काकोल्यौ पत्रकं जातिपत्रकम् ॥१६७॥
तालीशपत्रं च तथा समभागानि चूर्णयेत् ॥
सर्वचूर्णस्य चार्धांशं कैराते प्रक्षिपेत्सुधीः ॥१६८॥

एतत्सुदर्शनं नाम चूर्णं दोषत्रयापहम् ॥
ज्वरांश्च निखिलान्हन्यान्नात्र कार्या विचारणा ॥१६९॥
पृथग्द्वंद्वागंतुजांश्च धातुस्थान्विषमज्वरान् ॥
सन्निपातोद्भवांश्चापि मानसानपि नाशयेत् ॥१७०॥
शीतज्वरैकाहिकापादीन्मोहं तंद्रां भ्रमं तृषां ॥
श्वासं कासं च पांडुं च हृद्रोग हंति कामलाम् ॥१७१॥
त्रिकपृष्ठकटीवातपार्श्वशूलनिवारणम् ॥
शीतांबुना पिबेद्धीमान्सर्वज्वरनिवृत्तये ॥१७२॥
सुदर्शन यथा चक्रं दानवानां विनाशनम् ॥
तथा सर्वज्वराणां च चूर्णमेतद्विनाशनम् ॥१७३॥

अथ कट्फलादि चूर्णं ।

कट्फलं मुस्तकं तिक्ता सटी शृंगी च पौष्करम् ॥
मधुना चूर्णमेतेषां शृंगवेररसेन वा ॥१७४॥
लिहेज्ज्वरहरं कंठ्यं कासश्वासारुचिच्छिदम् ॥
वायु छर्दिं तथा शूलं क्षयं चैव व्यपोहति ॥१७५॥
इति दिङ्मात्रमाख्यातं ज्वराणां हि चिकित्सितम् ॥
समत्ययं सानुभवं संप्रदायाद् गुरोरिह ॥१७६॥

इतिश्री योगतरंगिणी संहितायां
ज्वरचिकित्सानाम विंशतितमस्तरंगः ॥२०॥

॥ अथ ऐकविंशस्तरंगः ॥२१॥

॥ अथातीसारचिकित्सा ॥

अतिसार भेदाः ।

संशम्यापां धातुरग्निं प्रवृद्धो
वर्चोमिश्रो वायुनाधःप्रणुन्नः ॥
सरत्यतीवातिसारं तमाहु
र्व्याधिं घोरं षड्विधं त वदति
एकैकशः सर्वशश्चापि दोषैः
शोकेनान्यः षष्ठ आमेन चोक्तः ॥ १ ॥
हृन्नाभिपायूदरकुक्षितोद
गात्रावसादानिलसन्निरोधाः ॥
विट्संगमाध्मानमथाविपाको
भविष्यतस्तस्य पुरःसराणि ॥ २ ॥

वातातिसारः ।

अरुणं फेनिलं रूक्षमल्पमल्पं मुहुर्मुहुः ॥
शकृदामं सरुक्छब्दं मारुतेनातिसार्यते ॥ ३ ॥

पित्तातिसारः ।

पित्तात्पीतं नीलमालोहितं वा
तृष्णामूर्छादाहपाकोपपन्नम् ॥

कफातिसारः ।

शुक्लं सांद्रं सकफं श्लेष्मदुष्टं
विस्रं शीतं हृष्टरोमा मनुष्यः ॥ ४ ॥

शोकातिसार ।

तैस्तैर्भावैः शोचतोल्पाशनस्य
बाष्पोष्मा वै वह्निमाविश्य जंतोः ॥
कोष्ठं गत्वा क्षोभयेत्तस्य रक्तं
तच्चाधस्तात्काकणंतीप्रकाशम् ॥ ५ ॥
निर्गच्छेद्वै विड्विमिश्रं ह्यविड् वा
निर्गंधं वा गंधवद्वातिसारः
शोकोत्पन्नो दुश्चिकित्स्योऽतिमात्रं
रोगो वैद्यैः कष्ट एष प्रदिष्टः ॥ ६ ॥

त्रिदोषातिसारः ।

तंद्रायुक्तो मोहसादास्यशोषी
वर्चः कुर्यान्नैकरूपं तृषार्तः ॥
सर्वोद्भूते सर्वलिंगोपपत्तिः
कृच्छ्रोपायः प्रोक्त एवोत्र नूनम् ॥ ७ ॥

अन्नाजीर्णातिसार ।

अन्नाजीर्णात्प्रद्रुताः क्षोभयन्तः
कोष्ठं गत्वा धातुगान्यान्मलांश्च ॥
नानावर्णं नैकशः सारयन्ति
शूलोपेतं षष्ठमेनं वदन्ति ॥ ८ ॥

आमातिसार ।

सम्रष्टमेभिर्दोषैस्तु न्यस्तमप्स्ववसीदति ॥
पुरीषं भृशदुर्गंधि पिच्छिलं चामसंज्ञितम् ॥ ९ ॥

पक्वातिसार ।

एतान्येव तु लिंगानि विपरीतानि यस्य वै ॥
लाघवं च विशेषेण तस्य पक्वं विनिर्दिशेत् ॥ १० ॥

असाध्य चिन्हानि ।

शोथं शूलं ज्वरं तृष्णां श्वासं कासमरोचकम् ॥
छर्दिं मूर्च्छां च हिक्कां च दृष्ट्वाऽतिसारिणं त्यजेत् ॥११॥

चिकित्सा ।

सास्रकूसगुह्यगुदवंक्षणबस्तिशूल-
मामातिसारमनिलप्रतिबद्धविट्कम् ॥
दोषानुरूपविहितैरिह लंघनाद्यैः
पेयादिभिस्तमवलोक्य भिषक्चिकित्सेत् ॥१२॥
प्राक्पंचकोलकजलप्लुतनतंडुलाभिः
पेयाभिरप्यथ पृथग्लघुलाजमंडैः ॥
मृद्वोदनैर्मधुरदाडिमयूषयुक्तै-
रामातिसारशमनैरुपदिष्टपथ्यैः ॥१३॥

अथ गंगाधर चूर्णम् ।

मुस्तमोचरसलोध्रधातकी पुष्पबिल्वगरकौटजैः समैः ॥
चूर्णितैः सगुडतक्रसेवितैर्निम्नगाजलरयोपि रुध्यते ॥१४॥

विश्वादि कषायः ।

विश्वाभयाघनवचातिविषामराह्वा
क्वाथोऽथ विश्वजलदातिविषाशृतो वा ॥
आमातिसारशमनः कथितः कषायः
शुंठीघनप्रतिविषाऽमृतवल्लिजो वा ॥१५॥

हरीतक्यादिः ।

सहरीतकीमतिविषारुचकं
सवचं सहिंगु सकलिंगयवम् ॥
इति तत्कलिंगयवषट्कमिदं
रुधिरातिसारगुदशूलहरम् ॥१६॥

ज्वरातिसारहर कषायः ।

गुडूच्यतिविषाधान्यशुंठीबिल्वाब्दवालकैः ॥
पाठाभूनिंबकुटजैश्चंदनोशीरपद्मकैः ॥१७॥
कषायः शीतलः पेयो ज्वरातीसारशांतये ॥
हृल्लासारोचकच्छर्दिपिपासादाहनाशनः ॥१८॥

उशीरादिः ।

उशीर बालकं मुस्तं बिल्वं धान्यकमेव च ॥
पिबेत्तंदुलतोयेन ज्वरातीसारशांतये ॥१९॥

उत्पलादि ।

उत्पलं दाडिमत्वक्च पद्मकेसरमेव च ॥
समंगा धातकी लोध्रं विश्वं पाचनदीपनम् ॥२०॥
हृल्लरोचकपिच्छामं विबंधं सातिवेदनम् ॥
सशोणितमतीसारं सज्वरं वाथ विज्वरम् ॥२१॥
अवेदनं सुसपक्व दीप्ताग्नेः सुचिरोत्थितम् ॥
नानावर्णमतीसारं पुटपाकैरुपाचरेत् ॥२२॥

कुटजपुट पाक । सर्वातिसारे ।

स्निग्धं घनं कुटजकल्कमजतुजग्ध-
मादाय तत्क्षणमतीव च पेषयित्वा ॥
जंबूपलाशपुटतंदुलतोयसिक्तं
बद्धं कुशेन च बहिर्घनपंकलिप्तम् ॥२३॥
सुस्विन्नमेतदुपपीड्य रसं गृहीत्वा
क्षौद्रेण युक्तमतिसारवते प्रदद्यात् ॥
कृष्णात्रिपुत्रमतपूजित एष योगः
सर्वातिसारशमने स्वयमेव राजा ॥२४॥

दीर्घवृंत पुटपाकः ।

श्रीपर्णिपर्णावृतंदीर्घवृंतज-
त्वक्पिंडकात् तंदुलवारिकल्कितात् ॥
मृद्वेष्टितादग्निविपाचितादसं
पिबेदतीसारहरं समाक्षिकम् ॥२५॥

वटादि पुटपाकः ।

इत्युक्तया कल्पनया वटादिना
कल्कीकृतेनोदरगेण तित्तिरेः ॥
प्रकल्पितः स्यात्पुटपाकजो रसः
सशर्करः क्षौद्रयुतोतिसारजित् ॥२६॥

अथ कुटजावलेहः ।

शतं कुटजमूलस्य क्षुण्णं तोयार्मणे पचेत् ॥
क्वाथे पादावशेषेस्मिन्पूते लेहं पुनः पचेत् ॥२७॥
सौवर्चलयवक्षारविडसैंधवपिप्पली
धातकींद्रयवाजाजीचूर्णं दत्वा पलद्वयम् ॥२८॥
लिह्याद्बदरमात्रं च शीतं क्षौद्रेण संयुतम् ॥
पक्वापक्वमतीसारं नानावर्णं सवेदनम् ॥
दुर्वारं ग्रहणीरोगं जयेच्चैव प्रवाहिकाम् ॥२९॥

लघु कुटजावलेहः ।

कुटजस्य पलं ग्राह्यमष्टभागजले शृतम् ॥
तथैव विपचेद्भूयो दाडिमोदकसंयुतम् ॥३०॥
कुटजक्वाथतुल्योत्र दाडिमस्य रसो मतः ॥
यावच्च लसिकाभासं शृतं तमुपकल्पयेत् ॥३१॥
तस्यार्धकर्षं तक्रेण पिबेद्रक्तातिसारवान् ॥
अवश्यमरणीयोपि मृत्योर्याति न गोचरम् ॥३२॥

कपित्थाष्टक चूर्ण ।

यवानीपिप्पलीमूलचातुर्जातकनागरैः ॥
मरिचाग्निजलाजाजीधान्यसौवर्चलैः समैः ॥३३॥
वृक्षाम्लधातकीकृष्णाबिल्वदाडिमदीप्यकैः ॥
त्रिगुणैः षड्गुणसितैः कपित्थाष्टगुणीकृतैः ॥३४॥
चूर्णोतिसारग्रहणीक्षयगुल्मगलामयान् ॥
कासश्वासारुचीर्हिक्कां कपित्थाष्टमिदं जयेत् ॥३५॥

अतिसारे जल ।

यथा शृतं भवेद्वारि तथातीसारनाशनम् ॥
अतिसारं निहंत्येव शतभागशृतं जलम् ॥३६॥
यथा शृतं तथा क्षीरमतिसारेषु पूजितम् ॥
चिरोत्थितेषु तत्पेयं त्रिभागजलसाधितम् ॥३७॥
अमृतं तन्निरामे स्यात्सामेतीसारके विषम् ॥

अथ लाई चूर्णम् ।

सूतं गंध त्रिकटुक दीप्यकं जीरकद्वयम् ॥३८॥
सौवर्चलं सैंधवं तु रामठ विडमेव च ॥
शक्रासनस्य चूर्ण तु चूर्णतुल्यं प्रदापयेत् ॥
संग्रहं शूलमानाहं हन्यान्नानातिसारजित् ॥३९॥

लाई चूर्ण द्वितीयं ।

कर्ष गंधकमर्द्धपारदमुभौ कुर्याच्छुभां कज्जलीं
त्र्यक्षं त्र्यूषणतश्च पंचलवणं सार्द्ध त्रिकर्ष पृथक् ॥
तच्छक्रासनचूर्णतुल्यनिहितं तत्सर्वमेकीकृतं
खादेच्छाणमितं सकांजिकपलं मंदाग्न्यतीसारजित् ॥४०॥

अथ बृहत्लाई चूर्णम् ।

दीप्यौ क्षारत्रयाग्निस्त्रिकटुगजकणाबिल्लभल्लातकोग्रा
द्वे जीरे हिंगुकुष्ठाखिलपटुरसगंधाभ्रधूमोत्तमाश्च ॥
एतेषां तुल्यभागं रज उदितमतीसारशूलग्रहण्या-
नाहप्लीहप्रमेहानलहतिषु बृहल्लाइचूर्णं प्रशस्तम् ॥४१॥

नानावगाहमभ्यंगं गुरुस्निग्धान्नभोजनम् ॥
व्यायाममग्निसंतापमतीसारी विवर्ज्जयेत् ॥४२॥

इतिश्री योगतरंगिणी संहितायां अतीसारचिकित्सा-
नामैकविंशस्तरंगः ॥ २१ ॥

॥ अथ द्वाविंशस्तरंगः ॥ २२ ॥

॥ संग्रहणी—अधिकारः ॥

अथ संग्रहणी कारणसंप्राप्ति रूपाणि ।

अतीसारे निवृत्तेपि मंदाग्नेरहिताशिनः ॥
भूयः संदूषितो वह्निर्ग्रहणीमपि दूषयेत् ॥ १ ॥
एकैकशः सर्वशश्च दोषैरत्यर्थमूर्छितैः ॥
सा दुष्टा बहुशो भुक्तमाममेव विमुंचति ॥ २ ॥
पक्वं वा सरुजं पूति मुहुर्बद्धं मुहुर्द्रवम् ॥
ग्रहणीरोगमाहुस्तमायुर्वेदविदो जनाः ॥ ३ ॥
षष्ठी पित्तधरा नाम या कला परिकीर्तिता ॥
पक्वामाशयमध्यस्था ग्रहणीं तां विदुर्बुधाः ॥ ४ ॥
अथामसंचयादेव जायते ग्रहणीगदः ॥
क्वचिदामं क्वचित्पक्वं सार्यते विट्सरुग्द्रवम् ॥ ५ ॥
पक्षाद्वापि दशाहाद्वा विंशतेर्वा दिनात्परम् ॥
मासाद्वापि भवेत्कोपो ग्रहणीरुजि मानवे ॥ ६ ॥

ग्रहणीमाश्रितं दोषमजीर्णवदुपाचरेत् ॥
अतीसारोक्तविधिना तस्यामं च विरेचयेत् ॥ ७ ॥

बिल्वादिभिः सरुजि पाचनमत्र शस्त
मुस्तादिभिर्भवति संग्रहणं ततश्च ॥
स्याद् दीपनं तदनु च ग्रहणीविकारे
कल्याणकारिभिरिति ग्रहणी चिकित्सा ॥ ८ ॥

अथ कल्याणावलेह. ।

पाठाधान्ययवान्यजाजिहपुषाचव्याग्निसिंधूद्भवैः ॥
सश्रेयस्यजमोदकीटरिपुभिः कृष्णाजटासंयुतैः ॥
सव्योषैः सफलत्रिकैः सत्रुटिभिस्त्वक्पत्रकैरौषधै-
रिक्षप्रमितैः सतैलकुडवैः सार्द्धत्रिवृन्मुष्टिभिः ॥ ९ ॥
एतैरामलकीरसस्य तुलया सार्द्धं तुलार्द्धं गुडा-
त्पक्तव्यं भिषजावलेहवदयं प्राग्भोजनाद्भक्षितः ॥
ये केचिद्ग्रहणीगदाः सगुदजाः कासाः सशोषामयाः
सश्वासक्षयगुल्मरोदररुजः कल्याणकस्ताञ्जयेत् ॥१०॥

अभयादि अवलेह ।

त्रिकंसे तक्रस्य द्विकुडवपटौ षष्टिरभयाः
पचेद्व्यस्थीः सार्द्धं घृततिलजशुण्ठ्यग्निकुडवैः ॥
समावाप्याजाजीमरिचचपलादीप्यकपलं
लिहन्नेतां हंति ग्रहणिमनलं दीपयति च ॥११॥

भूर्निबादि ।

भूनिंबकौटजकटुत्रिकमुस्ततिक्ताः
कर्षांशकाः सशिखिमूलपिचुद्वयाः स्युः ॥
त्वक्कौटजीपलचतुष्कमिता गुडांभः
पीतं नृणामिह हरेद्ग्रहणीविकारान् ॥१२॥

अथ जातीफलादि चूर्णम् ।

जातीफललवंगैलापत्रत्वङ्नागकेसरैः ॥
कर्पूरं चंदनं बिल्वत्वक्क्षीरीतगरामलैः ॥
तालीसपिप्पलीपथ्यास्थूलजीरकचित्रकैः ॥१३॥
शुंठीविडंगमरिचैः समभागैर्विचूर्णितैः ॥
यावंत्येतानि चूर्णानि दद्याद्भृंगां च तावतीम् ॥१४॥
सर्वचूर्णसमा देया शर्करा च भिषग्वरैः ॥
कर्षमात्रं ततः खादेन्मधुना प्लावितं सुधीः ॥१५॥
अस्य प्रभावाद्ग्रहणीकासश्वासारुचिक्षयाः ॥
वातश्लेष्मप्रतिश्यायाः प्रशमं यांति वेगतः ॥१६॥

अथ तालीसादि चूर्णं ।

तालीसोग्रतुगाषडूषणनिशाबिल्वाजमोदासटी-
व्यातुजीतलवंगधातकिविषाजातीफलं दीप्यकम् ॥
पाठामोचरसाह्वपंचलवणाजाजीद्वयं वेल्लकं
वृक्षाम्लाम्लवरापलाशतरुजं मांस्यंबुदं वालकम् ॥१७॥
ऐंद्रीब्रह्मसुवर्चला दृढपदी कुष्ठं समस्तैः समं
वल्या सर्वसमा जयाखिलसमा मत्स्यंडिका वासिता ॥
चूर्णोयं ग्रहणीक्षयादिकसनश्वासारुचिप्लीहरु-
ग्दुर्नामातिसृतिज्वरार्तिपवनस्थौल्यप्रमेहप्रणुत् ॥१८॥
तीव्रापस्मृतिपांडुगुल्मजठरश्लेष्मोत्थपित्तोद्भवो-
न्मादध्वंसविधायको विजयते सर्वामयध्वंसकः ॥
बालानां च विशेषतो हितकरः सुस्पष्टवाणीप्रदः
पुष्ट्यायुर्बलकांतिधीस्मृतिमहामेधाविलासप्रदः ॥१९॥

अथ चित्रकादि गुटिका ।

चित्रकं पिप्पलीमूलं द्वौ क्षारौ लवणानि च ॥
व्योषहिंगाजमोदा च सर्व्वं चैकत्र कारयेत ॥२०॥

गुटिका मातुलुंगस्य दाडिमस्य रसेन वा ॥
कृता विपाचयत्यामं दीपयत्याशु चानलम् ॥२१॥

ग्रहण्यां तक्र ।

ग्रहणीरोगिणस्तक्रं संग्राहि लघुदीपनम् ॥
पथ्यं मधुरपाकित्वान्न च पित्तप्रकोपनम् ॥२२॥
श्रीफलशलाटुकल्को नागरचूर्णेन मिश्रितः सगुडः ॥
ग्रहणीगदमत्युग्रं तक्रभुजा शीलितो जयति ॥२३॥

अथ ग्रहणी कपाट' ।

शुद्धाहिफेनबलिसूतकपर्दभस्म-
हालाहलोपणविशुद्धसुवर्णबीजैः ॥
अंभोधिपक्तिकरशैलधराष्टविंश-
त्यंशैर्विचूर्णिततमैर्ग्रहणीकपाटः ॥२४॥
वल्लोऽस्य हंति मधुना सह जीरकेण
भुक्तोतिसारमपि सग्रहणीमुदग्राम् ॥
आमं विपाच्य सहसा जनयत्यवश्यं
वैश्वानरं जठरवर्तिनमर्तिभाजः ॥२५॥

अथ ग्रहकपाट योगरत्नावलीत' ।

रसेंद्रगंधातिविषाभयाभ्रं क्षारत्रयं मोचरसो वचा च
जयाच जंबीररसेन पिष्टिः पिंडी कृतः स्याद्ग्रहणीकपाटः ॥
तस्यार्द्धमापं मधुना प्रभाते शत्रूकभस्माभियुतं निहंति
उग्रं ग्रहण्यामयमग्निमांद्यं क्लैण्यं क्षयं श्वासमुरःक्षतं च ॥२६॥
पिच्छिलानि कठोराणि गुरुण्यन्नानि यानि च ॥
आमकृंति न सेव्यानि ग्रहणीरोगिभिः क्वचित् ॥२७॥

इतिश्री योगतरंगिणी संहितायां
ग्रहणीचिकित्सा नाम द्वाविंशस्तरंगः ॥ २२ ॥

अथ त्रयोविंशस्तरंगः ॥२३॥

॥ अर्शोधिकारः ॥

अथार्शो रोगनिदान चिकित्सा ।

पृथग्दोषैः समस्तैश्च शोणितात्सहजानि च ॥
अर्शांसि षट्प्रकाराणि विद्याद् गुदवलित्रये ॥ १ ॥
दोषास्त्वङ्मांसमेदांसि संदूष्य विविधाकृतीन् ॥
मांसांकुरानपानादौ कुर्वंत्यर्शांसि ताञ्जगुः ॥ २ ॥
विष्टंभोन्नस्य दौर्बल्यं कुक्षेराटोप एव च ॥
कार्श्यमुद्गारबाहुल्यं सक्थिसादोल्पविट्कता ॥ ३ ॥
ग्रहणीदोषपांड्वर्तेराशंका चोदरस्य च ॥
पूर्वरूपाणि निर्दिष्टान्यर्शसामभिवृद्धये ॥ ४ ॥
गुदांकुरा बह्वनिलाः शुष्काश्चिमिचिमान्विताः ॥
म्लानाः श्यावारुणाः स्तब्धा विषमाः परुषाः खराः ॥५॥
मिथो विसदृशा वक्रास्तीक्ष्णा विस्फुटिताननाः ॥
बिंबीकर्कंधुखर्जूरकार्पासीफलसन्निभाः ॥ ६ ॥
केचित्कदंबपुष्पाभाः केचित्सिद्धार्थकोपमाः ॥
शिरःपार्श्वांसकट्यूरुवंक्षणाभ्यधिकव्यथाः ॥ ७ ॥
क्षवथूद्गारविष्टंभहृद्ग्रहारोचकप्रदाः ॥
तैरार्तो ग्रथितं स्तोकं सशब्दं सप्रवाहिकम् ॥ ८ ॥
रुक्फेनपिच्छानुगतं विड्बद्धमुपवेश्यते ॥
कृष्णत्वङ्नखविण्मूत्रनेत्रवक्त्रः प्रजायते ॥ ९ ॥
गुल्मप्लीहोदराष्ठीलासंभवस्तत एव च ॥
पित्तोत्तरा नीलमुखा रक्तपीतासितप्रभाः ॥१०॥
तन्वस्रस्राविणो रक्तास्तनवो मृदवस्तथा ॥
शुकजिह्वा यकृत्पिंडजलौकावक्त्रसंनिभाः ॥११॥

दाहपाकज्वरस्वेदतृण्मूर्छारतिमोहदाः ॥
सोष्मणो द्रवनीलोष्मपीतरक्तामवर्चसः ॥१२॥
यवमध्या हरित्पीता हारिद्रत्वङ्नखादयः ॥
श्लेष्मोल्वणा महामूला घना मंदरुजः सिताः ॥१३॥
उत्सन्नोपचिताः स्निग्धाः स्तब्धवृत्तगुरुस्थिराः ॥
पिच्छिलाः स्तिमिताः श्लक्ष्णाः कंड्वाढ्याःस्पर्शनप्रियाः॥१४॥
करीरपनसास्थ्याभास्तथा गोस्तनसन्निभाः ॥
वक्षणानाहिनः पायुबस्तिनाभिविकर्षिणः ॥१५॥
सकासश्वासहृल्लासप्रसेकारुचिपीनसाः ॥
मेहकृच्छ्रशिरोजाड्यशिशिरज्वरकारिणः ॥१६॥
क्लैब्याग्निमार्दवच्छर्दिरामप्राया विकारदाः ॥
वसाभाः सकफप्रायाः पुरीषाः सप्रवाहिकाः ॥१७॥
न स्रवंति न भिद्यंते पांडुस्निग्धत्वगादयः ॥
सर्वैः सर्वात्मकान्याहुर्लक्षणैः सहजानि च ॥१८॥
रक्तोल्वणा गुदे कीलाः पित्ताकृतिसमन्विताः ॥
वटप्ररोहसदृशा गुंजाविद्रुमसन्निभाः ॥१९॥
तेऽत्यर्थं दुष्टमुष्णं च गाढविट्कप्रपीडिताः ॥
स्रवंति सहसा रक्तं तस्य चातिप्रवृत्तितः ॥२०॥
भेकाभः पीड्यते दुःखैः शोणितक्षयसंभवैः ॥
हीनवर्णबलोत्साहो हतौजाः कलुषेंद्रियः ॥२१॥
विट्श्यावं कठिनं रूक्षमधोवायुर्न गच्छति ॥
तनु चारुणवर्णं च फेनिलं चासृगर्शसाम् ॥२२॥
बाह्यायां तु वलौ जातान्येकदोषोल्बणानि च ॥
अर्शांसि सुखसाध्यानि न चिरोत्पतितानि च ॥२३॥
द्वंद्वजानि द्वितीयायां वलौ यान्याश्रितानि च ॥
कृच्छ्रसाध्यानि तान्याहुः परिसंवत्सराणि च ॥२४॥

सहजानि त्रिदोषाणि यानि चाभ्यंतरां वलिम् ॥
जायंतेऽर्शांसि संसृत्य तान्यसाध्यानि निर्दिशेत् ॥२५॥

हस्तादिशोफैर्हृत्पार्श्वशूलैश्छर्दिज्वरादिभिः ॥
तृष्णया गुदपाकेन निहन्युर्गुदजा नरम् ॥
मेढ्रादिष्वपि जायंते दुर्नामानि नृणामिह ॥२६॥

तत्रार्शसामुपदिशंति चतुःप्रकार-
मारोग्यमेकमगदैरपरं च शस्त्रैः ॥
क्षारेण चान्यदनलेन चतुर्थमित्थ-
मित्यागमैककृतिनः किल सुश्रुताद्याः ॥२७॥

स्यादौषधैश्चिरजेषु चिरोद्गतेषु
क्षारेण च क्षतजपित्तसमुद्भवेषु ॥
स्थूलेषु वातकफजेष्वनलेन शस्त्रैः
सत्वाधिकस्य बलिनश्च सतश्चिकित्सा ॥२८॥

अर्शोऽतिसारग्रहणीविकाराः
प्रायेण चान्योन्यनिदानभूताः ॥
सन्नेऽनले संति न संति दीप्ते
रक्षेदतस्तेषु विशेषतोऽग्निम् ॥२९॥

यद्वायोरानुलोम्याय यदग्निबलवृद्धये ॥
अन्नपानौषधं सर्वं तत्सेव्यं नित्यमर्शोभिः ॥३०॥

पित्तातिसारवद्भिन्नवर्चांस्यर्शांस्युपाचरेत् ॥
उदावर्तविधानेन गाढविट्कानि चासकृत् ॥३१॥

प्रवृत्तबहुलास्राणि पित्तशोणितनाशनैः ॥
विड्विबंधे हितं तक्रं यवानीविश्वसंयुतम् ॥३२॥
न प्ररोहंति गुदजाः प्रायस्तक्रसमाहताः ॥

तिलादि योगः ।

तिलं भल्लातकं पथ्या गुडश्चेति समांशकम् ॥३३॥
दुर्नामश्वासकासघ्नं प्लीहपांडुज्वरापहम् ॥

मरिचादि मोदकः ।

मरिचमहौषधचित्रकशूरणभागा यथोत्तरं द्विगुणाः ॥
सर्वसमो गुडभागः सेव्योयं मोदकः प्रसिद्धफलः ॥३४॥
ज्वलनं ज्वालयति जाठरमुन्मूलयति प्रशूलगुल्मगदान् ॥
निःशोषयति श्लीपदमर्शांसि च नाशयत्याशु ॥३५॥

अथ सूरणप्रयोगः ।

मृल्लिप्त सौरणं कंदं पक्त्वाग्नौ पुटपाकवत् ॥
अद्यात्सतैललवणं दुर्नामविनिवृत्तये ॥३६॥

नवनीततिलाभ्यासात्केसरनवनीतशर्कराभ्यासात् ॥
दधिरसमथिताभ्यासाद् गुदजाः शाम्यंति रक्तवहाः । ३७॥

अर्शो लेप. ।

शिरीषबीजं द्वौ क्षारौ लांगली सैंधवं वचा ॥
स्नुहीक्षीरेण पिष्टानि गवां पित्तेन भावयेत् ॥३८॥
अर्शांसि लेपयेत्तेन सप्तरात्रं पुनःपुनः ॥
लिप्तान्येतानि सर्वाणि विनश्यंति न संशयः ॥३९॥
यथा सर्वाणि कुष्ठानि हतः खदिरबीजकौ ॥
तथा ह्यर्शांसि सर्वाणि वृक्षकारुष्करो हतः ॥४०॥
हरिद्रायाः प्रयोगेण प्रमेहा इव षोडश ॥
क्षाराग्निभ्यां निवर्तंते तथा दृश्या गुदोद्भवाः ॥४१॥

मथ शूरण मादकः ।

भागाः षोडश वृद्धदारुसहितात्कंदात्कृतात्कर्कशा-
दष्टौ चित्रकमूलतश्च तुलिताः स्युस्तालमूलीयुतात् ॥
तालीसत्रिफलाविडंगमगधाविश्वोपकुल्याजटा-
भल्लातैश्च चतुष्पलैर्द्विपलकैरेलालवंगोषणैः ॥४२॥

इत्येभिः सकलैर्गुडद्विगुणितैः कुर्याद्भिषङ् मोदका-
न्यैर्भुक्तैर्न नृणां भवंति गुदजा न ह्रीहपांड्वामयाः ॥
नो गुल्मग्रहणीगदोदररुजः कोष्ठे न शूलानि च
श्वासश्लीपदशोफविद्रधियकृद्ग्रन्थ्यर्बुदादीनि च ॥४३॥

कांकायन मोदकः ।

पथ्यादलस्य गुरुणः पलपंचकं स्या-
देकं पलं च मरिचादपि जीरकाच्च ॥
कृष्णा तदुद्भवजटा चविकाग्निशुंठयः
कृष्णादिपंचकमिदं पलतः प्रवृद्धम् ॥४४॥
एतैररुष्करपलाष्टकसंयुतैः स्या-
त्कंदस्त्वरुष्करफलाद् द्विगुणः प्रकल्प्यः ॥
स्याद्यावशूककुडवार्द्धमतः समस्ता-
द्योज्यो गुडो द्विगुणितो वटकीकृतश्च ॥४५॥
कांकायनेन मुनिना गदितः किलायं
श्रेयस्करेण वटकोऽत्र गुदामयेषु ॥
क्षाराग्निशस्त्रयतनैरपि ये न सिद्धाः
सिध्यंत्यनेन वटकेन गुदामयास्ते ॥४६॥

अर्शो लेपः ।

सिंधूत्थं देवदाल्याश्च बीजं कांजिकपेषितम् ॥
गुदांकुरान्प्रलेपेन पातयत्युल्बणानि च ॥४७॥

अथ समशर्करं चूर्णम् ।

शुंठीकणामरिचनागदलत्वगेला
चूर्णीकृतं क्रमविवर्धितमेतदंत्यात् ॥
खादेदिदं समसितं गुदजाग्निमांद्य-
गुल्मारुचिश्वसनकंठहृदामयेषु ॥४८॥

अथ चतुःसमो मोदक योगरत्नावलीत ।

सनागराकृष्करहृद्दारुकं
गुडेन यो मोदकमत्युदारकम् ॥
अशेषदुर्नामकरोगदारकं
करोति वृद्धिं सहसैव दारकं ॥४९॥

देवदालीकषायेण शौचमाचरतां नृणाम् ॥
किं वा तद्धूमसेवाभिः कुतः स्युर्गुदजांकुराः ॥५०॥
तस्मायेलांछनं केचिद् दुर्नामघ्नं बुधा जगुः ॥
तक्रं सकृष्ण पिबतां दुर्नामश्रवणं कुतः ॥५१॥

अथ अर्शः कुठारो रसः रसरत्नप्रदीपात् ।

भागः शुद्धरसस्य भागयुगलं गंधस्य लोहाभ्रयोः
षड्बिल्वाग्निदलोषणत्रयरजो दंती च भागैः पृथक् ॥
पंच स्युः स्फुटटंकणस्य च यवक्षारस्य सिंधूद्भवा
भागाः पंच गवां जलं सुविमलं द्वात्रिंशदेतत्पचेत ॥५२॥
स्नुग्दुग्धं च गवां जलावधि शनैः पिंडीकृतं तद्भजेद्
द्वौ माषौ गुदकीलकाननजटाच्छेदे कुठारो रसः ॥५३॥

अथ नित्योदित रसः ॥

मृतसूताभ्रलोहार्कविषं गंध समं समम् ॥
सर्वतुल्यांशभल्लातफलमेकत्र चूर्णयेत् ॥५४॥
द्रवैः सूरणकंदोत्थैः खल्वे मर्द्य दिनत्रयम् ॥
माषमात्र लिहेदाज्यैरसाध्याशींसि नाशयेत् ॥
रसो नित्योदितो नाम्ना ह्यर्शोरोगकुलांतकः ॥५५॥
वेगावरोधं स्त्रीयानं कटुक चोत्कटाशनम् ॥
यथास्व दोषलं चान्नमर्शसः परिवर्जयेत् ॥५६॥
कफकृति न सेव्यानि द्रव्याण्यर्शोयुतैर्नरैः ॥
विना तक्रं समं गधं विनान्न लघुपाकि च ॥५७॥

इतिश्री योगतरंगिणी संहितायां अर्शश्चिकित्सानाम त्रयोविंशस्तरंग. ॥२३॥

॥ अथ चतुर्विंशस्तरंगः ॥२४॥

॥ अजीर्णाधिकारः ॥

प्रकृत्या रसशेषाद्वा त्रिभिर्दोषैरपाकतः ॥
भवंति षडजीर्णानि वैषम्यादशनस्य च ॥ १ ॥
समस्य रक्षणं कार्यं विषमे वातनिग्रहः ॥
तीक्ष्णे पित्तप्रतीकारो मंदे श्लेष्मविशोधनम् ॥ २ ॥
वचालवणतोयेन वांतिरामे प्रशस्यते ॥
धान्यनागरसिद्धं वा तोयं दद्याद्विचक्षणः ॥ ३ ॥
आमाजीर्णप्रशमनं शूलघ्नं बस्तिशोधनम् ॥
विष्टंभे स्वेदनं कार्यं पेयं वा लवणोदकम् ॥
रसशेषे दिवास्वापो लंघनं वमनं तथा ॥ ४ ॥

दिवा स्वाप्याः ।

व्यायामप्रमदाध्ववाहनरतान् क्लिन्नानतीसारिणः
शूलश्वासवतस्तृषामदमहाहिक्कामरुत्पीडितान् ॥
क्षीणान्क्षीणकफान्शिशून्मदहतान्वृद्धान्रसाजीर्णिनो
रात्रौ जागरितान्नरान्निरशनान्कामं दिवा स्वापयेत् ॥ ५ ॥
पथ्यापिप्पलिसंयुक्तं चूर्णं सौवर्चलं पिबेत् ॥
मधुनोष्णोदकेनाथ मत्वा दोषगतिं भिषक् ॥ ६ ॥
चतुर्विधमजीर्णं तु मंदानलमथारुचिम् ॥
आध्मानं वातगुल्मं च शूलं चाशु विनाशयेत् ॥ ७ ॥

अथ संजीवनी गुटिका ।

विडंगं नागरं कृष्णा पथ्यावह्निबिभीतकाः ॥
वचा गुडूची भल्लातं विषं चात्र प्रयोजयेत् ॥ ८ ॥
एतानि समभागानि गोमूत्रेणैव पेषयेत् ॥
गुंजाभा [illegible] च [illegible]जै रसैः ॥ ९ ॥

एकामजीर्णयुक्तस्य द्वे विपूच्यां य दापयेत् ॥
तिस्रो भुजंगदष्टस्य चतस्रः सन्निपातिनः ॥
गुटी संजीवनी नाम्ना संजीवयति मानवम् ॥१०॥

विसूचिकाहरं अंजन ।

मातुलुंगजटा व्योषं निशा वीजं करंजकम् ॥
कांजिकेनांजनं हन्याद्विपूचीमतिदारुणाम् ॥११॥

अथ अग्निमुखं चूर्ण वीरसिंहावलोकतः ।

हिंगुभागो भवेदेको वचा च द्विगुणा मता ॥
पिप्पली त्रिगुणा देया शृंगवेरं चतुर्गुणम् ॥१२॥
यवानी स्यात्पंचगुणा षड्गुणा च हरीतकी ॥
चित्रकं सप्तगुणितं कुष्ठं चाष्टगुणं मतम् ॥१३॥
एतद्वातहर चूर्ण पीतमामप्रशांतये ॥
पिवेद् दध्ना मस्तुना वा सुरया कोष्णवारिणा ॥१४॥
सोदावर्त्तमजीर्णं च प्लीहानमुदरं तथा ॥
अंगानि यस्य दीर्यंते विषं वा येन भक्षितम् ॥१५॥
चूर्णमग्निमुखं नाम्ना सर्वोपद्रवमाहरेत् ॥१६॥

अथ हिंगाष्टक चूर्ण ।

त्रिकटुकमजमोदा सैंधव जीरके द्वे
समधरणधृतानामष्टमो हिंगभागः ॥
प्रथमकवलभुक्तं सर्पिषा चूर्णमेत-
ज्जनयति जठराग्निं वातरोगान्निहंति ॥१७॥

अथ लघुवैश्वानर चूर्ण ।

सिंधूत्थपथ्यमगधोद्भववह्निचूर्ण-
मुष्णांबुना पिबति यः खलु नष्टवह्निः ॥
तस्यामिषेण सघृतेन वर नवान्न
भस्मीभवत्यशितमात्रमपि क्षणेन ॥१८॥

अथ लवण भास्करः ।

पिप्पली पिप्पलीमूलं धान्यकं कृष्णजीरकम् ॥
सैंधवं च विडं चैव पत्रतालीसकेसरान् ॥१९॥
एषां द्विपलिकान्भागान्पंच सौवर्चलस्य च ॥
मरिचाजाजिशुंठीनामेकैकस्य पलं पलम् ॥२०॥
त्वगेला चार्द्धभागः स्यात्सामुद्रात्कुडवद्वयम् ॥
दाडिमात्कुडवं चैव द्विपलं चाम्लवेतसम् ॥२१॥
एतच्चूर्णीकृतं श्लक्ष्णं गन्धाढ्यममृतोपमम् ॥
लवणं भास्करं नाम भास्करेण विनिर्मितम् ॥२२॥
श्लेष्मवातं वातगुल्मं शूलमंदाग्न्यरोचकान् ॥
अन्यानपि निहंत्याशु रोगान् लवणभास्करः ॥२३॥

अथ शंखद्रावः ।

अर्कस्नुहीतिलाश्वत्थचिंचापामार्गवह्निजम् ॥
गृहीत्वा भस्म तस्मात्तु वस्त्रपूतं जलं हरेत् ॥२४॥
मृद्वग्निना पचेत्तं तु यावल्लवणतां व्रजेत् ॥
तत्तुल्यावेव संग्राह्यौ द्वौ क्षारौ टंकणं तथा ॥२५॥
सामुद्रं चापि गोदंती कासीसं चापि सोरकम् ॥
द्विगुणं पंचलवणं शंखद्रावरसेन तु ॥२६॥
काचकूप्यां विनिक्षिप्य सप्ताहं त्वम्लयोगतः ॥
संधितं सकलं चूर्णं वारुणीयंत्रमुद्धरेत् ॥२७॥
द्रुतं तेजोजलप्रस्थं स्वच्छं स्रवति तत्तदा ॥
सर्वान्धातून्द्रावयति वराटानपि शंखकान् ॥२८॥
अजीर्णस्याथ मंदाग्नेः का वार्ता द्रावणे पुनः ॥
गुल्मप्लीहोदरं शूलमष्टधापि विनाशयेत् ॥
वैद्यजीवनहेतुश्च शंखद्रावरसो ह्ययम् ॥२९॥

अथ क्रव्याद रसः रसार्णवतः ।

शुद्धो रसः पलमितेः द्विपल गंधकं मतम् ॥
सर्व तत् कज्जलीकृत्य लोहपात्रे विनिक्षिपेत् ॥
चुल्यामग्निं मृदुं दद्याद्यथा गंधो न दह्यते ॥३०॥
गोमयस्थालबाले तु पत्र वातारिजं क्षिपेत् ॥
स्थापयेच्च रसं तत्र पत्रं चोपरि निक्षिपेत् ॥३१॥
वस्त्रशुद्धं ततः कृत्वा लोहपात्रे पुनः क्षिपेत् ॥
पुनस्तत्तापयेच्चुल्यां मातुलुंगरसं ततः ॥३२॥
मानाच्छतपलं दद्यात्पंचकोलं तथैव च ॥
चुक्रस्य च तुलां दत्वा सिद्धं तच्च समुद्धरेत् ॥३३॥
एकं तद्गोलकं कृत्वा तत्समं टंकणं मतम् ॥
टंकणार्धं विषं दद्यान्मरिचं विषसम्मितम् ॥३४॥
भावनाश्चणकक्षारैः सप्त दद्याद्विचक्षणः ॥
सिध्यत्येवं रसस्तं तु रसं माषद्वयात्मकम् ॥३५॥
सैंधवं माषमात्रं तु तक्रेण सह पाययेत् ॥
रसं क्रव्यादनामानं दद्यात्तं भोजनोपरि ॥३६॥
शीघ्रं तज्जारयेद् भुक्तं पुनर्भोजनमाचरेत् ॥
अनेन क्रमयोगेन सर्वव्याधिहरो रसः ॥३७॥

बृहत्क्रव्याद रसः मन्थान भैरवात् ।

द्विपलं गंधकं शुद्धं द्रावयित्वा विनिक्षिपेत् ॥
पारदं पलमानं तु मृतशुल्बायसी पुनः ॥३८॥
तोलमानेन संमिश्र्य पंचांगुलदले क्षिपेत् ॥
ततो विचूर्ण्य यत्नेन लोहपात्रे विनिक्षिपेत् ॥३९॥
मृद्वग्निना पचेत्तत्तु दर्व्या संचालयन्मुहुः ॥
पलपात्ररसं सम्यग्दद्याज्जंबीरकस्य तु ॥
संचूर्ण्य पंचकोलोत्थैः कषायैः साम्लवेतसैः ॥४०॥

भावना किल दातव्याः पंचाशत्प्रमिताः पृथक् ॥
अष्टटंकणचूर्णेन तुल्येन सह मेलयेत् ॥४१॥
तदर्धं कृष्णलवणं मरिचं सर्वतुल्यकम् ॥
सुधया भावयेत्पश्चाच्चणकक्षारवारिणा ॥४२॥
ततः संशोष्य संपेष्य कूप्याश्च जठरे क्षिपेत् ॥
अत्यर्थं गुरुमांसानि गुरुभोज्यान्यनेकशः ॥४३॥
भुक्तानि कंठपर्यंतं चतुर्वल्लमितो रसः ॥
सदम्लतक्रसहितः पीतमात्रो हि पाचयेत् ॥४४॥
पुनर्भोजयति क्षिप्रं का पुनर्मंदवह्निता ॥
रसः क्रव्यादनामायं प्रोक्तो मंथानभैरवे ॥४५॥
सिंहलक्षोणिपालस्य भूरिमांसप्रियस्य च ॥
पुनर्भोजनकामस्य भैरवानंदयोगिना ॥४६॥
कुर्याद्दीपनमूर्ध्वजत्रुगदहृद् दुष्टामसंशोधन-
स्तुंदस्थौल्यनिबर्हणो गदहरः शूलार्तिमूलापहः ॥
गुल्मप्लीहविनाशको बहुरुजां विध्वंसनो वातहा
वातग्रंथिमहोदरापहरणः क्रव्यादनामा बृहत् ॥४७॥

शंखवटी रसार्णवतः ।

चिंचाऽश्वत्थस्नुहीक्षारादपामार्गार्कतस्तथा ॥
क्षाराणि पंच संगृह्य ततो लवणपंचकम् ॥४८॥
सैंधवाद्यं समादाय सर्वमेतत्पलद्वयम् ॥
कर्षं कर्षं विषं गंधं रसं टंकणकं तथा ॥४९॥
हिंगुपिप्पलिशुंठीनां तथा मरिचजीरयोः ॥
द्वौ द्वौ कर्षौ पृथक् कार्यौ तथा द्वौ शंखचूर्णतः ॥५०॥
फलत्रयाच्च कर्षैकं द्विकर्षं तु लवंगतः ॥
एतत्सर्वं समासाद्य श्लक्ष्णचूर्णीकृतं शुभम् ॥५१॥

भावयेदम्लयोगेन सप्तधा तु प्रयत्नतः ॥
रसः शंखवटी नाम्ना सेवितः सर्वरोगजित् ॥५२॥
षड्गुंजामात्रया खादेद्वह्नेर्दीपनपाचनम् ॥
अजीर्णं वातसंभूतं पित्तश्लेष्मभवं तथा ॥
विषूचीं शूलमानाहं हन्यादत्र न संशयः ॥५३॥

अग्निकुमार रस । रसेन्द्रचिंतामणितः ।

पारदं च विषं गंधं टंकणं समभागतः ॥
मरिचस्याष्टभागाः स्युर्द्वौ द्वौ शंखवराटयोः ॥५४॥
पक्वजंबीरजैर्गाढं रसैः सप्त विभावयेत् ॥
गुंजाद्वयमितो देयो रसो ह्यग्निकुमारकः ॥५५॥
समीरणसमुद्भूतमजीर्णं च विषूचिकाम् ॥
क्षणेन क्षपयत्येष कफरोगनिकृंतनः ॥५६॥

पाशुपत रस' धन्वंतरिनतात् ।

कर्षं सूतं द्विधा गंधं त्रिभागं भस्म तीक्ष्णजम् ॥
त्रिभिः समं विषं योज्यं चित्रकद्रवभावितम् ॥५७॥
द्विधा त्रिकटुकं योज्यं लवंगैले तु तत्समे ॥
जातीफलं जातिपत्रं चार्द्धभागमितं मतम् ॥५८॥
तदर्द्धं पचलवणं स्तुल्यकौ चापि तिंतिणी ॥
अपामार्गाश्वत्थजं च क्षारं दद्यात् पलार्द्धकम् ॥५९॥
टंकणं च यवक्षारं स्वर्जिका हिंगु जीरकम् ॥
हरीतकी सूततुल्या मर्दयेदम्लयोगतः ॥६०॥
धूर्त्तबीजस्य भस्मानि सर्वसमभागतः ॥
रसः पाशुपतो नाम प्रोक्तः प्रलयकारकः ॥६१॥
गुंजामात्रा वटी कार्या सर्वाजीर्णविनाशिनी ॥
तालमूलीतक्रयोगादुदरामयनाशिनी ॥६२॥

मोचारसेनातिसारं ग्रहणीं तक्रसैंधवैः ॥
शूले नागरकं शस्तं हिंगुसौवर्चलान्विता ॥६३॥
अर्शःसु तक्रेण युता पिप्पली राजयक्ष्मणि ॥
वातरोगं निहंत्याशु शुंठी सौवर्चलान्विता ॥६४॥
गुडूची शर्करायोगात्पित्तरोगविनाशिनी ॥
पिप्पली क्षौद्रयोगेन श्लेष्मरोगं निकृंतति ॥
अतः परतरं नास्ति धन्वंतरिमते स्थितम् ॥६५॥

आदित्य रसः । रससिन्धौ ।

दरदं च विषं गंधं त्रिकटु त्रिफला समम् ॥
जातीफलं लवंगं च लवणानि च पंच वै ॥६६॥
सर्वमेतत्कृतं चूर्णमम्लयोगेन सप्तधा ॥
भावयित्वा वटी कार्या गुंजार्धप्रमिता बुधैः ॥६७॥
रस आदित्यसंज्ञोयमजीर्णक्षयकारकः ॥
भुक्तमात्रं पाचयति जठरानलदीपनः ॥६८॥

अग्निमुख रसः ।

सूतं गंधं विषं तुल्यं मर्दयेदार्द्रकद्रवैः ॥
अश्वत्थचिंचापामार्गक्षाराः क्षारौ च टंकणम् ॥६९॥
जातीफलं लवंगं च त्रिकटु त्रिफला समम् ॥
शंखक्षारं पंचलवणं हिंगु जीरं द्विभागकम् ॥७०॥
मर्दयेदम्लयोगेन गुंजामात्रा वटी शुभा ॥
पाचनी दीपनी सद्यो जीर्णशूलविसूचिकाः ॥७१॥
हिक्कां गुल्मं च मोहं च नाशयेन्नात्र संशयः ॥
रसेंद्रसंहितायाश्च नाम्ना ह्यग्निमुखो रसः ॥७२॥

अजीर्णारिः । रसेंद्रचिंतामणे. ।

शुद्धं सूतं गंधकं च पलमानं पृथक्पृथक् ॥
हरीतकी च द्विपला नागरस्त्रिपलः स्मृतः ॥७३॥
कृष्णा च मरिचं तद्वत्सिंधूत्थं त्रिपल मतम् ॥
चतुःपला च विजया मर्दयेन्निंबुकद्रवैः ॥७४॥
पुटानि सप्त देयानि घर्ममध्ये पुनःपुनः ॥
अजीर्णारिरयं प्रोक्तः सद्यो दीपनपाचनः ॥७५॥
भक्षयेद् द्विगुणं भक्ष्यं पाचयेद्रेचयत्यपि ॥
उद्गारशुद्धिरुत्साहो वेगोत्सर्गो यथोचितः ॥
लघुता क्षुत्पिपासा च जीर्णाहारस्य लक्षणम् ॥७६॥

इतिश्री योगतरंगिणी संहितायां अजीर्णचिकित्सायां चतुर्विंशस्तरंग ॥ २४ ॥

॥ अथ पंचविंशस्तरंगः ॥२५॥

॥ अथ कृमिरोगाधिकारः ॥

ज्वरो विवर्णता शूलं हृद्रोगः श्वसनं भ्रमः ॥
भक्तद्वेषोतिसारश्च संजातकृमिलक्षणम् ॥ १ ॥

इति रुग्विनिश्चयात् ।

मुस्ताखुकर्णीफलदारुशिग्रु-
क्वाथः सकृष्णाकृमिशत्रुकल्कः ॥
मार्गद्वयेनापि चिरप्रवृत्तान्
कृमीन्निहंति कृमिजांश्च रोगान् ॥२॥

इति योगशतात् ॥

पारसिकयवान्येका पीता पर्युषितवारिणा प्रातः ॥
गुडपूर्वा कृमिजालं कोष्ठगतं पातयत्याशु ॥ ३ ॥
पलाशबीजस्य रसं पिबेद्वा मधुसंयुतम् ॥
लिह्यात्क्षौद्रेण वैडंगं चूर्णं वा कृमिकृन्तनम् ॥ ४ ॥
दाडिमत्वक्कृतः क्राथस्तिलतैलेन संयुतः ॥
त्रिदिनात्पातयत्येव कोष्ठतः कृमिजालकम् ॥ ५ ॥

जंतुघ्नः सुगंधि धूपः ।

ककुभकुसुमं विडंगं लांगलिभल्लातकमथोशीरं ॥
श्रीवेष्टं सर्जरसं चांदनमथ कुष्ठमष्टमं दद्यात् ॥ ६ ॥
एष सुगंधो धूपो मशककृमीनां विनाशकः प्रोक्तः ॥
शय्यासु मत्कुणानां शिरसि च गात्रेषु यूकानाम् ॥ ७ ॥
इति राजमार्तंडात् ॥

भिंडीपिष्टारनालेन गोमूत्रेणातिमुक्तकः ॥
कुनटी कटुतैलेन योगो यूकानिवारणः ॥ ८ ॥

कृमिमुद्गर रसः ।

क्रमेण वृद्धं रसगंधकाज-
मोदा विडंगं विषमुष्टिका च ॥
पलाशबीजं च विचूर्ण्यमस्य
निष्कप्रमाणं मधुनावलीढं ॥ ९ ॥
पिबेत्कषायं घनजं तदूर्ध्वं
रसोयमुक्तः कृमिमुद्गराख्यः ॥
कृमीन्निहंति कृमिजांश्च रोगा
न्संदीपयत्यग्निमयं त्रिरात्रात ॥ १० ॥

इति श्रीयोगतरंगिणी संहितायां कृमिचिकित्सा नाम
पंचविंशस्तरंगः ॥ २५ ॥

अथ षड्विंशस्तरंगः ॥२६॥

॥ अथ पांडुरोगाधिकारः ॥

पांडुरः श्वासकासार्तः पीतत्वङ्नखलोचनः ॥
वम्यग्निसादश्वयथुसहितः पांडुरोगवान् ॥ १ ॥
फलत्रिकामृतावासातिक्ताभूनिंबनिंबजः ॥
क्वाथः क्षौद्रयुतो हन्यात्पांडुरोगं सकामलम् ॥ २ ॥
लोहपात्रे स्थितं क्षीरं सप्ताह पथ्यभोजनः ॥
पिबेत्पांड्वामयी शोषी ग्रहणीदोषपीडितः ॥ ३ ॥
लोहचूर्णं निशायुग्मं त्रिफला कटुरोहिणी ॥
प्रलिह्यान्मधुसर्पिर्भ्यां कामलार्तः सुखी भवेत् ॥ ४ ॥
त्रिफलाया गुडूच्या वा दार्व्या निंबस्य वा रसः ॥
प्रातःप्रातर्मधुयुतः कामलार्तः पिबेन्नरः ॥ ५ ॥

आमलकी-अवलेह । सारसंग्रहात् ।

रसमामलकानां तु संशुद्धं यत्रपीडितम् ॥
द्रोणं पचेत्तन्मृदग्नौ तत्र चेमानि दापयेत् ॥ ६ ॥
चूर्णितं पिप्पलीप्रस्थं मधुकं द्विपलं तथा ॥
प्रस्थं गोस्तनिकायाश्च द्राक्षायाः कल्कपेषितम् ॥ ७ ॥
शृंगवेरपलं पंच तुगाक्षीर्याः पलद्वयम् ॥
तुलार्द्धं शर्करायाश्च घनीभूतं समुद्धरेत् ॥ ८ ॥
मधुप्रस्थसमायुक्तं लेहयेत्पलमात्रकम् ॥
हलीमकं कामलां च पाडुत्वं चापकर्षति ॥
जलदोषमतीसार नियच्छति न संशयः ॥ ९ ॥

नवायसं लोह । योगसारात् ।

त्र्यूषणत्रिफलामुस्ताविडंगदहनाः समाः ॥
नवायोरजसो भागास्तच्चूर्णं मधुसर्पिषा ॥
भक्षयेत्पांडुहृद्रोगकुष्ठार्शः कामलापहम् ॥१०॥

मंडूरघटकः । योगसारात् ।

त्र्यूषणं त्रिफला मुस्तं विडंगं चव्यचित्रकौ ॥
दार्वी त्वङ् माक्षिको धातुर्ग्रंथिकं देवदारु च ॥११॥
एषां द्विपलभागानां चूर्णं कृत्वा पृथक्पृथक् ॥
मंडूरं द्विगुणं चूर्णाज्जीर्णमंजनसन्निभम् ॥१२॥
गोमूत्रेऽष्टगुणे पक्त्वा तस्मिंस्तत्प्रक्षिपेत्ततः ॥
उदुंबरसमान्कुर्याद्वटकांस्तान्यथोचितान् ॥१३॥
उपयुंजीत तक्रेण सात्म्यं जीर्णे च भोजनम् ॥
मंडूरवटका एते प्राणदाः पांडुरोगिणाम् ॥१४॥

धात्री लोहः ।

धात्री लोहरजो व्योषं निशा क्षौद्राज्यशर्करा ॥
लेहो निवारयत्याशु कामलामुद्धतामपि ॥१५॥

द्रोणपुष्पी अंजनं ।

अंजनं कामलार्तानां द्रोणपुष्पीरसस्य तु ॥
निशागैरिकधात्रीणां चूर्णं चोपरि लेपयेत् ॥१६॥

मंडूर योगः ।

दग्ध्वाक्षकाष्ठैर्मलमायसं च
गोमूत्रनिर्वापितसप्तवारम् ॥
विचूर्ण्य लीढं मधुना चिरेण
कुंभाह्वयं पांडुगदं निहन्यात् ॥१७॥

इति वीरसिंहावलोकतः ।

यवगोधूमशालीनां मृदुजांगलजै रसैः ॥
मुद्गाढकीमसूराद्यैः प्रायो भोजनमिष्यते ॥१८॥

त्रैलोक्यनाथ रसः ।

पलानि चत्वारि रसस्य पंच
गंधस्य सत्त्वस्य गुडूचिकायाः ॥
व्योपस्य चूर्णस्य च तालमूल्याः
सशाल्मलस्येह पलत्रयं स्यात् ॥१९॥

पृथक्पृथक्षड्गगनस्य चाष्टौ
लोहस्य सर्वं त्रिफलाजलेन ॥
घृष्टं चतुःषष्टिमित तदर्धाः
स्युर्भावना मार्कवजद्रवस्य ॥२०॥

शिग्रुत्थनीरेण च षोडशाष्टौ
तथानलोत्था गृहकन्यकायाः ॥
आर्द्रद्रवस्येति रसोयमुक्तः
पाण्डुक्षयश्वासगदादिहंता ॥
क्षौद्रेण वा शर्करया घृतेन
कर्षार्धमेतस्य भजेत्प्रयत्नात् ॥२१॥

इतिश्री योगतरंगिणी संहितायां
पांडुकामलाकुंभकामलाचिकित्सा नाम षड्विंशस्तरंग ॥ २६ ॥

॥ अथ सप्तविंशस्तरंगः ॥ २७ ॥

॥ अथ रक्तपित्ताधिकारः ॥

क्षारकट्वम्लतीक्ष्णादेर्दग्धं पित्तं दहत्यसृक् ॥
तदूर्ध्वाधोबिलैर्याति रक्तपित्तं तदुच्यते ॥ १ ॥
अधः प्रवृत्तं वमनैरूर्ध्वगं च विरेचनैः ॥
जयेदन्यतराञ्चापि क्षीणस्य शमनैः पृथक् ॥ २ ॥
अतिप्रवृद्धदोषस्य पूर्वं लोहितपित्तिनः ॥
अक्षीणबलमांसाग्नेः कर्त्तव्यमपतर्पणम् ॥ ३ ॥
लंघितस्य ततो युक्त्या लघ्वन्नमवचारयेत् ॥
पाचनं तर्पणं लेहाः सर्पींषि विविधानि च ॥ ४ ॥
द्राक्षामधूककाश्मर्यसितायुक्तं विरेचनम् ॥
यष्टीमधूकसंयुक्तं सक्षौद्रं वमनं हितम् ॥ ५ ॥
पयांसि शीतानि रसाश्च जांगलाः
सतीनयूषाश्च सशालिषष्टिकाः ॥
हितानि चैतानि च रक्तपित्ते
चान्यान्यपि स्युः किलपित्तहानि ॥ ६ ॥
पक्वोदुंबरकाश्मर्य्यः पथ्या खर्जूरगोस्तनी ॥
मधुना हंति संलीढा रक्तपित्तं न संशयः ॥ ७ ॥

दूर्वादि घृतं ।

दूर्वासोत्पलकिंजल्कमंजिष्ठा सैलवालुका ॥
मूर्वालोध्रमुशीरं च मुस्ता चंदनपद्मकौ ॥ ८ ॥
द्राक्षामधूकपथ्याश्च काश्मीरं चंदनं सितम् ॥
एतैः पिष्टैः कर्षमात्रैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ९ ॥
अजाक्षीरं तंडुलांबु पृथग्दत्वा चतुर्गुणम् ॥
तत्पानं वमतां रक्तं नावनं नासिकागते ॥१०॥

कर्णाभ्यां यस्य गच्छेत्तु तस्य कर्णौ प्रपूरयेत् ॥
चक्षुर्गते च रक्ते च पूरयेत्तेन चक्षुषी ॥११॥
मेढे पायुगते वापि सर्वत्रैव प्रयोजयेत् ॥
प्रवृत्तं रोमकूपेभ्यो अभ्यंगेन जयेद् ध्रुवम् ॥१२॥

खण्डा हरीतकी ।

तुलामादाय वासायाः पचेदष्टगुणे जले ॥
तेन पादावशेषेण पाचयेदाढकं भिषक् ॥१३॥
चूर्णानामभयानां च खंडं शुद्धं तथा शतं ॥
शीतीभूते निदध्यात्तु क्षौद्रस्याष्टौ पलानि च ॥१४॥
वंशोद्भवायाश्चत्वारि पिप्पल्या द्विपलं तथा ॥
चातुर्ज्जातपलं त्वेकं चूर्णितं तत्र दापयेत् ॥१५॥
रक्तपित्तं निहंत्याशु कासं श्वासं तथा क्षयम् ॥
विद्रधिं जठरं गुल्मं तृष्णाहृद्रोगपीनसान् ॥
पलार्द्धं भोजनं चास्य यथेष्टं तत्र भोजनम् ॥१६॥

मध्वाटरूषकरसौ यदि तुल्यभागौ
कृत्वा नरः पिबति पुण्यतरः प्रभाते ॥
तद्रक्तपित्तमपि दारुणमप्यवश्य-
माशु प्रशाम्यति जलैरिव वह्निपुंजः ॥१७॥

इति राजमार्तंडात् ॥

वासाखंडः ।

तुलामादाय वासायाः पचेदष्टगुणे जले ॥
तेन पादावशेषेण पाचयेदाढकं भिषक् ॥१८॥
चूर्णानामभयानां तु खंडाच्छतपलं तथा ॥
द्वे पले पिप्पलीचूर्णात्सिद्धे शीते च माक्षिकात् ॥१९॥

कुडवं पलमानं तु चातुर्जातं सुचूर्णितम् ॥
क्षिप्त्वावलोड्य तं खादेद्रक्तपित्ती क्षतक्षयी ॥
कासश्वासगृहीतश्च यक्ष्मवांश्च विशेषतः ॥२०॥

खण्डखाद्य अवलेहः ।

शतावरीमुंडितिकाबलामृता-
फलत्वचः पुष्करमूलभार्गी ॥
वृषो बृहत्यौ खदिरं च मूसली
पृथक्पृथक् पंचपलानि मात्रया ॥२१॥

पक्वं जले द्रोणमितेष्टभागं
यावद्भवेच्छेषमथैव पूतम् ॥
विमूर्छितस्यात्र निधाय धीमान्
पलानि च द्वादश माक्षिकस्य ॥२२॥

तथा सुचूर्णस्य च लोहजस्य
विघट्टितं खंडघृतस्य तुल्यम् ॥
देयं पलं षोडशकं विधिज्ञो-
विपाचयेल्लोहमये च पात्रे ॥२३॥

गुडेन तुल्यं च यदा भवेत्तदा
तुगा विडंगं मगधा च शुंठी ॥
द्वे जीरके कर्कटकं फलानां
त्रिकं च धान्यं मरिचं सकेसरम् ॥२४॥

पलेन मात्रां विदधीत तत्पृथक्
सुघट्टितं चूर्णमिदं घृतेन ॥
स्निग्धे कटाहे प्रणिधाय युंज्या-
त्कर्षप्रमाणं विदधीत लेहम् ॥२५॥

प्रभातकाले च सदुग्धपानं
गुरूणि चान्नानि च भोजनानि ॥
रक्तं सपित्तं सहसा निहंति
रक्तप्रवाहं च सरक्तशूलम् ॥२६॥
रक्तातिसारं रुधिरप्रमेहं
तथैव वस्तौ विहितं नराणाम् ॥
भगंदरार्शःश्वयथूंन्निहंति
तथाम्लपित्तं किल राजरोगम् ॥२७॥
विशेषतः कुष्ठरुजश्च गुल्मान्
बलप्रदं वृष्यतमं प्रदिष्टम् ॥२८॥

रक्तपित्तकुलकंडन रस. रसेंद्रचिंतामणे. ।

शुद्धपारदबलिप्रवालकं
हेममाक्षिकभुजंगरंगकम् ॥
मारितं सकलमेतदुत्समं
भावयेत्पृथगतो द्रवैस्त्रिशः ॥२९॥
चंदनस्य कमलस्य मालती
कोरकस्य वृषपल्लवस्य च ॥
धान्यवारणबुसाशतावरी
शाल्मलीवटजटामृतस्य च ॥३०॥
रक्तपित्तकुलकंडनाभिधो
जायते रसवरोऽस्रपित्तिनाम् ॥
प्राणदो मधुवृषद्रवैरयं
सेवितस्तु वसुकृष्णलामितः ॥३१॥
नास्त्यनेन सममत्र भूतले
भेषजं किमपि रक्तपित्तिनाम् ॥३२॥

इतिश्री योगतरंगिणी संहितायां
रक्तपित्तचिकित्सा नाम सप्तविंशस्तरंग. ॥ २७ ॥

॥ अथ अष्टाविंशस्तरंगः ॥२८॥

॥ अथ क्षयाधिकारः ॥

श्लोष्माधिक्याद्व्यवायाद्यैः पीडितो यः प्रशुष्यति ॥
कासश्वासार्दितो रक्तं वमेच्छुक्लेक्षणो ज्वरी ॥ १ ॥
अग्निमांद्यतृषायुक्तो रिरंसुर्मांसलोलुपः ॥
विस्वरश्छर्दिमान्दीनः स ज्ञेयः क्षयपीडितः ॥ २ ॥
शालिषष्टिकगोधूमयवमुद्गादयः शुभाः ॥
मद्यानि जांगलाः पक्षिमृगाः शस्ता विशुष्यतः ॥ ३ ॥
सपिप्पलीकं सयवं सकुलत्थं सनागरम् ॥
दाडिमामलकोपेतं स्निग्धमाजं रसं पिबेत् ॥ ४ ॥
तेन षट् विनिवर्तन्ते विकाराः पीनसादयः ॥
द्रव्यतो द्विगुणं मांसं सर्वतोष्टगुणं जलम् ॥
पादस्थं संस्कृतं चाज्ये षडंगो यूष उच्यते ॥ ५ ॥
इति सुश्रुतात् ॥

चतुर्दशांगलोहम् ।

रास्नाकर्पूरतालीसभेकपर्णी शिलाजतु ॥
त्रिकटु त्रिफला मुस्तविडंगदहनाः समाः ॥ ६ ॥
चतुर्दशायसो भागास्तच्चूर्णं मधुसर्पिषा ॥
लीढं कासं ज्वरं श्वासं राजयक्ष्माणमेव च ॥
बलवर्णाग्निपुष्टीनां वर्धनं दोषनाशनम् ॥ ७ ॥
द्विपंचमूलीयजसिद्धमाज्यं
वासाघृतं वाप्यथ षट्पलं वा ॥
हितं पयश्छागलमव्यवायः
प्रयुज्यते नागबलाभिधानम् ॥ ८ ॥

च्यवनप्राश ।

शृंगी चामलकी फलत्रिकबलाछिन्नाविदारी सटी ॥
जीवंती दशमूलचंदनघनैर्नीलोत्पलैलावृषैः ॥
मृद्वीकाष्टकवर्गपौष्करयुतैः सार्द्ध पृथक्पालिकै-
रब्द्रोणेन शतानि पंच विपचेद्धात्रीफलानामतः ॥९॥
उद्धृत्यामलकानि तैलघृतयोः षड्भिश्च षड्भिः पलै-
र्भ्रष्टान्यर्द्धतुलां निधाय विधिवन्मीनांडिकायाः पचेत्
शीते षण्मधुनः पलानि कुडवो वांश्याश्चतुर्जाततो
मुष्टिर्मागधिकापलद्वयमयं प्राशः स्मृतश्च्यावनः ॥१०॥
न शोषः साफल्यं व्रजति वपुषि क्षीयमाणेपि जंतोर्न
मूर्छा न च्छर्दिस्तृडपि च न श्वासकासादयश्च ॥
न चालक्ष्मीर्विघ्नं क्वचिदपि च न व्यापदः संभवंति
प्रयोगादेतस्मान्मनसि च वियो बिभ्रति भ्रांतिमंतः ॥११॥

वासालेह योगशतात् ।

वासकस्य रसप्रस्थं मासिकं सितशर्करा ॥
पिप्पलीद्विपलं चैव दत्वा मृद्वग्निना पचेत् ॥१२॥
लेहीभूते ततः पश्चाद्दद्यात् क्षौद्र पलाष्टकम् ॥
दत्वावतारयेद्वैद्यो मात्रया लेहमुत्तमम् ॥१३॥
निहंति राजयक्ष्माण दुर्नामानि महान्त्यपि ॥
पार्श्वशूलं च हृच्छूल ज्वरं चाशु व्यपोहति ॥१४॥

शिलाजतु योग ।

फलत्रिकक्वाथविशुद्धमादो
शुद्धं गुडूच्या दशमूलशुद्धम् ॥
स्थिरादिकाकोलिगुणादिसिद्धं
शिलाजतु स्यात्क्षयिषु प्रशस्तं ॥१५॥

हैमाद्याः सूर्यसंतापाद् द्रवंति गिरिधातवः ॥
जत्वाभं मृदु मृत्स्नाभं तद्वदंति शिलाजतु ॥१६॥

तालीसादि चूर्णं ।

तालीसपत्रं मरिचं नागरं पिप्पली शुभा ॥
यथोत्तरं भागवृद्ध्या त्वगेले चार्द्धभागिके ॥१७॥
पिप्पल्यष्टगुणा चात्र प्रदेया सितशर्करा ॥
कासश्वासारुचिहरं तच्चूर्णं दीपनं परम् ॥
हृत्पांडुग्रहणीदोषप्लीहशोषज्वरापहम् ॥१८॥

द्राक्षासवः ।

मृद्वीकायास्तुलार्धं तु द्विद्रोणेऽपां विपाचयेत् ॥
चतुर्थशेषे तस्मिंस्तु पूते शीते प्रदापयेत् ॥१९॥
गुडस्य द्वितुलां दत्वा तत्सर्वं घृतभाजने ॥
विडंगं फलिनी कृष्णा त्वगेला पत्रकेसरम् ॥२०॥
मरिचं च भिषक्चूर्णं सम्यक्कृत्वा विचक्षणः ॥
क्षिपेच्च पलिकैर्भागैः स्थापयेच्च कियद्दिनम् ॥२१॥
ततो यथाबलं पीत्वा कासश्वासगलामयान् ॥
हंति यक्ष्माणमत्युग्रमुरःसंधानकारकम् ॥२२॥
चतुर्थभागं द्राक्षाया धातकीमत्र केचन ॥
प्रयच्छंति ततो वीर्यमेतस्योच्चैः प्रजायते ॥२३॥

सितोपलादि चूर्णं ।

सितोपला षोडश स्यादष्टौ स्याद्वंशरोचनः ॥
पिप्पली स्याच्चतुःकर्षा स्यादेला च द्विकार्षिकी ॥२४॥
एककर्षा च त्वक्कार्या चूर्णयेत्सर्वमेकतः ॥
सितोपलादिकं चूर्णं मधुसर्पिर्युतं लिहेत् ॥२५॥

कासश्वासक्षयहरं हस्तपादांगदाहजित् ॥
मंदाग्निसुप्तजिह्वत्वं पार्श्वशूलमरोचकम् ॥
ज्वरमूर्ध्वगतं रक्तपित्तमाशु व्यपोहति ॥२६॥

पिप्पल्यादि-अरिष्टः ।

पिप्पलीलोध्रमरिचपाठाधान्येलवालुकैः ॥
चव्यचित्रकजंतुघ्नक्रमुकोशीरचांदनैः ॥२७॥
मुस्ताप्रियंगुलवलीहरिद्रामिसिपेलवैः ॥
पत्रत्वक्कुष्ठतगरनागकेसरसंयुतैः ॥२८॥
भागैः स्यादर्द्धपलिकैर्द्राक्षां षष्टिपलां क्षिपेत् ॥
शतं पलानि धातक्या गुडस्य च शतत्रयम् ॥२९॥
तोयार्मणद्वये सिद्धं भवत्येतत्सुखावहम् ॥
ग्रहणीपांडुरोगार्शः कार्श्यगुल्मोदरापहः ॥
पिप्पल्यादिररिष्टोऽयं क्षयक्षयकरः परः ॥३०॥

छागलादि घृतं । हारीतात् ।

छागमांसतुलां सम्यक्पाचयेद्‌र्मणेऽम्भसि ॥
पादशेषेण तेनैव सर्पिःप्रस्थं विपाचयेत् ॥३१॥
ऋद्धिर्वृद्धिश्च मेदे द्वे तथा जीवककर्षभौ ॥
काकोलीक्षीरकाकोलीकल्कैरेभिः पलोन्मितैः ॥३२॥
सम्यक्सिद्धेऽवतार्याथ शीते तस्मिन्प्रदापयेत् ॥
शर्करायाः पलान्यष्टौ मधुनः कुडवं क्षिपेत् ॥३३॥
पलंपलं पिबेत्प्रातर्यक्ष्माणं हंति दुस्तरम् ॥
बल्यं स्थौल्यकरं वृष्यं दीपनं मंदवह्निजित् ॥३४॥

चंदनादि तैलं ।

चांदनांबुनखं वाप्यं यष्टीशलेयपद्मकम् ॥
मंजिष्ठा सरल दारु सटयेला पद्मकेसरम् ॥३५॥

पत्रं बिल्वमुशीरं च कंकोलं वनितांबुदम् ॥
हरिद्रे सारिवे तिक्ता लवंगागुरुकुंकुमम् ॥३६॥
त्वग्रेणुनलिका चैभिस्तैलं मस्तु चतुर्गुणम् ॥
लाक्षारससमं सिद्धं अग्र्यं बलवर्णकृत् ॥३७॥
अपस्मारज्वरोन्मादकृत्याऽलक्ष्मीविनाशनम् ॥
आयुःपुष्टिकरं चैव वशीकरणमुत्तमम् ॥
विशेषात्क्षयरोगघ्नं रक्तपित्तहरं परम् ॥३८॥
मलायत्तं बलं पुंसां शुक्रायत्तं तु जीवनम् ॥
तस्माद्यत्नेन संरक्षेद्यक्ष्मिणो मलरेतसी ॥३९॥

अगस्त्य हरीतकी । शार्ङ्गधरात् ।

हरीतकीशतं युंज्याद्यवानामाढकं तथा ॥
पलानि दशमूलस्य विंशतिश्च नियोजयेत् ॥४०॥
चित्रकं पिप्पलीमूलमपामार्गः सटी तथा ॥
कपिकच्छुः शंखपुष्पी भार्गी च गजपिप्पली ॥४१॥
बला पुष्करमूलं च पृथग्द्विपलमात्रया ॥
पचेत्पंचाढके तोये यवैः स्विन्नैः सृतं नयेत् ॥४२॥
तच्चाभयाशतं दद्यात्क्वाथे तत्र विचक्षणः ॥
सर्पिस्तैलाष्टपलकं क्षिपेद् गुडतुलां तथा ॥४३॥
पक्त्वा लेहत्वमानीय सिद्धं दत्वा पृथक्पृथक् ॥
क्षौद्रं च पिप्पलीचूर्णं दद्यात्कुडवमात्रया ॥४४॥
हरीतकीद्वयं खादेत्तेन लेहेन नित्यशः ॥
क्षयं कासं ज्वरं श्वासं हिक्काशोरुचिपीनसान् ॥४५॥
ग्रहणीं नाशयत्येतद् वलीपलितनाशनः ॥
बलवर्णकरः पुंसामवलेहो रसायनः ॥
विहितोगस्त्यमुनिना सर्वरोगप्रणाशनः ॥४६॥

कुमुदेश्वर रसः । रसार्णवात् ।

पारदं शोधितं गंधमभ्रक च समं मतम् ॥
तदर्धं दरदं दद्यात्तदर्धा च मनःशिला ॥४७॥
सर्वार्द्धं मृतलोहं च खल्वमध्ये विनिक्षिपेत् ॥
द्विःसप्त भावना देयाः शतावर्या रसेन च ॥४८॥
ततः शुष्को भवत्येष कुमुदेश्वरसंज्ञकः ॥
सितया मरिचेनाथ गुंजाद्वित्रिप्रमाणतः ॥४९॥
भक्षयेत्प्रातरुत्थाय पूजयित्वेष्टदेवताम् ॥
यक्ष्माणमुग्रं हंत्येष वातपित्तकफामयान् ॥५०॥
ज्वरादीनखिलान् रोगान्यथा दैत्याञ्जनार्दनः ॥
सतताभ्यासयोगेन वलीपलितनाशनः ॥५१॥

पञ्चामृत रस' ।

भस्मीभूतसुवर्णतारहिनकृत्सूताभ्रसत्वैः क्रमा-
त्संवृद्धैस्त्रितयत्र्यक्रिमिहराम्भोदैर्युतः कट्फलैः ॥
निर्गुंडीदशमूलवह्निरजनीव्योषार्द्रकै र्भावितो
गोलीकृत्य विशेषतो निगदितः पंचामृताख्यो रसः ॥५२॥
नानेन सदृशः कोपि रसोस्ति भुवनत्रये ॥
निहंति सकलान् रोगान्भवरोगमिवाच्युतः ॥५३॥
सर्वरोगहरः सूतस्तत्तद्रोगानुपानतः ॥
अयं पचामृतः सूतस्त्रदशानामिवामृतम् ॥५४॥

वसंतकुसुमाकरो रस ।

पृथग्द्वौ हाटकं चंद्रस्त्रयो वंगाहिकांतयोः ॥
चत्वारि सूतमभ्रं च प्रवालं मौक्तिकं पविः ॥५५॥
भावना गव्यदुग्धेक्षुवासाश्रीकदली निशा ॥
शतपत्रं श्वेतकंजं मालत्या कुसुमैस्तथा ॥५६॥

पश्चान्मृगमदा भाव्यं सुसिद्धो रसराड् भवेत् ॥
कुसुमाकरविख्यातो वसंतपदपूर्वकः ॥५७॥
वल्लद्वयमिदं चास्य सिताज्यमधुना सह ॥
वलीपलितहन्मेध्यं कामदं सुखवर्धनम् ॥५८॥
मेहघ्नं पुष्टिदं कांतं परं सौख्यं रसायनम् ॥
सिताचंदनसंयुक्तमम्लपित्तादिरोगनुत् ॥५९॥

स्वर्ण मालिनी वसंतः ।

स्वर्णं मुक्तादरदमरिचं भागवृद्धया प्रयोज्यं
खर्पर्यष्टौ प्रथमजनवनीतेन निंबंबुना च ॥
यावत्स्नेहो व्रजति विलयं मर्दयेत्तावदेव
गुंजामात्रं मधुचपलया सर्वरोगे वसंतः ॥६०॥

रत्नगर्भ पोटली रसः ।

रसं वज्रं हेम तारं नागं लोहं च ताम्रकम् ॥
तुल्यांशं मारितं योज्यं मुक्तामाक्षिकविद्रुमम् ॥६१॥
राजावर्त्तं च वैक्रांतं गोमेदं पुष्परागकम् ॥
शंखं च तुल्यतुल्यांशं सप्ताहं चित्रकद्रवैः ॥६२॥
मर्दयित्वा विचूर्ण्याथ तेनापूर्य वराटकान् ॥
टंकणं रविदुग्धेन पिष्ट्वा तन्मुद्रणं चरेत् ॥६३॥
मृद्भांडे तान्सुसंयंत्र्य सम्यग्गजपुटे पचेत् ॥
आदाय चूर्णयेत्सम्यक् निर्गुंड्याः सप्त भावना ॥६४॥
आर्द्रकस्य रसैः सप्त चित्रकस्यैकविंशतिः ॥
द्रवैर्भाव्यं ततः शुष्कं देयं गुंजाचतुष्टयम् ॥६५॥
क्षयरोगं निहंत्याशु सत्यं शिव इवांधकम् ॥
योजयेत्पिप्पलीक्षौद्रैः सघृतैर्मरिचैश्च वा ॥
पोटलीरत्नगर्भोयं सर्वरोगहरो मतः ॥६६॥

राजमृगांकः । सारसंग्रहात् ।

रसभस्म त्रयो भागाः स्वर्णभस्मैकभागिकम् ॥
मृतताम्रस्यैकभागः शिलागंधकतालकम् ॥६७॥
तथा भागद्वयं शुद्धं मेलयित्वा विचूर्णयेत् ॥
वराटी पूरयेत्तेन अजाक्षीरेण टंकणम् ॥६८॥
पिष्ट्वा च तन्मुखं रुद्ध्वा मृद्भांडे तान्निरोधयेत् ॥
शुष्कं गजपुटे पक्त्वा चूर्णयेत्स्वांगशीतलम् ॥६९॥
रसो राजमृगांकोयं पंचगुंजः क्षयापहः ॥
दशपिप्पलिकाक्षौद्रैर्मरिचैकोनविंशतिः ॥
सघृतं दापयेत्पथ्यं राजरोगप्रशांतये ॥७०॥

राजमृगांकः । रसरत्नप्रदीपात् ।

रसेन तुल्यं कनकं तयोस्तु
साम्येन युंज्यान्नवमौक्तिकानि ॥
रसप्रमाणो बलिरंघ्रिभागः
शुल्वस्य सर्वं तुषवारिणा तु ॥७१॥
संमर्द्य घस्रं सुविधाय गोलं
दिनं पचेत्तं लवणेन पूर्णे ॥
भांडे मृगांकोयमतिप्रगल्भः
क्षयाग्निमांद्यग्रहणीगदेषु ॥७२॥
साज्योषणाभिर्मधुपिप्पलीभि
र्वल्लोस्य देयो न ततोधिकस्तु ॥
पथ्यं हितं शीतलमेव योज्यं
त्याज्यं सदा पित्तकरं विदाहि ॥७३॥

कनकसुंदर रसः ।

रसः कनकभागिकः कनकमाक्षिकस्तालकः
शिलारसकगंधका रससमाः सशुल्वा इमे ॥
विमर्द्य पयसा रवेः सकलमेतदस्योपरि
द्रवैः प्रतिदिनं पृथक्तदिति भावयेद्बुद्धिमान् ॥७४॥

जयामुनिकलिप्रियादहनभृंगवासोद्भवै-
र्विभाव्य च रसैस्ततः सुदृढगोलकं स्वेदयेत् ॥
मृगांकवदथार्द्रकद्रवभरेण तं सप्तधा
विमर्द्य च कटुत्रयांबुभिरयं क्षयस्यांतकृत् ॥७२॥
रसः कनकसुंदरो भवति सन्निपातेप्ययं
सहार्द्रकरसैस्तथा पवनगुल्मशूलादिहृत् ॥
सविश्वघृतयोजितः सकलमत्र पथ्यं हितं
मृगांकवदथापरं किमपि नैव योज्यं क्वचित् ॥७३॥
शोकः स्त्रियः क्रोधमसूयनं च
त्यजेदुदारान्विषयान्भजेच्च ॥
गुरुं द्विजातिंस्त्रिदशांश्च पूजये-
त्कथाश्च पुण्याः शृणुयाद्द्विजेभ्यः ॥७७॥

इतिश्री योगतरंगिणी संहितायां क्षयचिकित्सानाम
अष्टाविंशस्तरंगः ॥ २८ ॥

॥ अथ एकोनत्रिंशस्तरंगः ॥२९॥

॥ अथ कासाधिकारः ॥

प्राणो ह्युदानमन्वेत्य यदोर्ध्वमुपसर्पति ॥
तदा संजायते कासः कंठहृन्नाभिकर्षणः ॥ १ ॥
पंचमूलीकृतः क्राथः पिप्पलीचूर्णसंयुतः ॥
रसान्नमश्नतो नित्यं वातकासमुदस्यति ॥ २ ॥
भार्गी द्राक्षा सटी शृंगी पिप्पली विश्वभेषजम् ॥
गुडतैलयुतो लेहो हितो मारुतकासिनाम् ॥ ३ ॥

बलाद्विबृहतीवासाद्राक्षाभिः क्वथितं जलम् ॥
पित्तकासापहं योज्यं शर्करामधुसंयुतम् ॥ ४ ॥
पुष्करं कट्फलं भांर्गीविश्वपिप्पलिसाधितम् ॥
पिबेत्क्वाथ कफोद्रेके श्वासे कासे च हृद्ग्रहे ॥ ५ ॥
प्रस्थं विभीतकानामस्थीनि विहाय साधयेद्जामूत्रे ॥
लेहवद्वलेहोय मधुना सहितोतिकासहरः ॥ ६ ॥

मरिचादि गुटिका । शार्गधरात् ।

मरिचं कर्षमात्रं स्यात्पिप्पली कर्षसंमिता ॥
अर्द्धकर्षो यवक्षारः कर्षयुग्मं च दाडिमम् ॥ ७ ॥
एतच्चूर्णीकृत युंज्यादष्टकर्षगुडेन हि ॥
शाणप्रमाणां गुटिकां कृत्वा वक्त्रे विधारयेत् ॥
अस्याः प्रभावात्सर्वेपि कासा यांत्येव संक्षयम् ॥ ८ ॥

भार्गोत्तर वटक ।

रसगन्धकणापथ्याकलिद्रुफलवासकाः ॥
भांर्गी चेति क्रमाद्वृद्धमेतद् बब्बुलजैर्द्रवैः ॥ ९ ॥
पिष्टं विंशतिवारं तत्कुर्यात्क्षौद्रेण गोलकान् ॥
कर्षप्रमाणानेतस्य तमेकं प्रातरुत्थितः ॥१०॥
अद्यान्मासत्रयं क्षुद्राक्वाथं दशकणायुतम् ॥
पिबेत्तदनुकासाच्च श्वासाच्च परिमुच्यते ॥११॥

पर्पटी रसः । रसरत्नप्रदीपात् ।

भागो रसस्य गंधस्य द्वावेको लोहभस्मनः ॥
एतद् घृष्टं द्रवीभूतं मृद्वग्नौ कदलीदले ॥१२॥
पातयेद्गोमयगते तथैवोपरि योजयेत् ॥
ततः पिष्ट्वा द्रवैरेभिर्मर्दयेत्सप्तधा पृथक् ॥१३॥

भांर्गीमुंडीमुनिवराजयानिर्गुंडिकाद्रवैः ॥
व्योषवासककन्थार्द्रद्रवैः शुष्कं पुटेल्लधु ॥१४॥
आगंधं खर्परे नाम्ना पर्पटीति रसो भवेत् ॥
सर्वरोगहरः स्वैः स्वैरनुपानैर्हिमाषिकः ॥१५॥
तांबूलीपत्रसहितः कासश्वासहरः परः ॥
सकणः सुरसाकाथोऽनुपानं वा सगोजलम् ॥१६॥

सर्वकासघ्न रसः ।

पारदं गंधकं शुद्धं मृतं लोहं च टंकणम् ॥
रास्ना विडंगं त्रिफला देवदारु कटुत्रयम् ॥१७॥
अमृता पद्मकं क्षौद्रं विषं तुल्यानि चूर्णयेत् ॥
त्रिगुंजः सर्वकासघ्नो ज्वरारोचकमेहनुत् ॥१८॥
रात्रिद्वयशिलाधूमपानात्कासश्रुतिः कुतः ॥
जलपानादपि तथा क्रमेण क्षणदाक्षये ॥१९॥
वासायां विद्यमानायामाशायां जीवितस्य च ॥
रक्तपित्ती क्षयी कासी किमर्थमवसीदति ॥२०॥
मैथुनस्निग्धमधुरदिवास्वापपयोदधि ॥
मिष्टान्नपायसादीनि कासी धूमं च वर्ज्जयेत् ॥२१॥

इतिश्री योगतरंगिणी संहितायां कासचिकित्सानाम
एकोनत्रिंशस्तरंगः ॥ २९ ॥

॥ अथ त्रिंशस्तरंगः ॥ ३० ॥

॥ अथ हिक्काधिकारः ॥

अपानादूर्ध्वगात्क्रुद्धाद्धिक्का पंच कफान्वितात् ॥
अन्नजा यमला क्षुद्रा गंभीरा महतीति च ॥ १ ॥

नारीपयःपिष्टमशुक्लचंदन
घृतं सुखोष्णं च ससैंधवं च ॥
पिष्टं तथा सैंधवमंबुना च
निहंति हिक्कां ननु नावनेन ॥ २ ॥

इति नारायणीयात् ॥

यष्ट्याह्वं वा माक्षिकेनावलीढ
कृष्णाचूर्णं शर्कराढ्यं च किंवा ॥
सर्पिः कोष्ण क्षीरमुष्णं रसो वा
हन्यादिक्षोः पानतः पंच हिक्काः ॥ ३ ॥

इति सुश्रुतात् ॥

शिखिपिच्छभस्मकृष्णाचूर्णं मधुमिश्रितं मुहुर्लीढम् ॥
हिक्कां हंति प्रबलां श्वासं चैवातिदुस्तरां छर्दिम् ॥ ४ ॥

कोलमज्जांजनं लाजास्तिक्ताकांचनगैरिकम् ॥
कृष्णा धात्री सिता शुंठी कासीसं दधिनाम च ॥५॥
पाटल्याः सफलं पुष्पं कृष्णाखर्जूरमुस्तकम् ॥
षडेते पादिका लेहा हिक्काघ्ना मधुसयुताः ॥ ६ ॥
मधुकं मधुसंयुक्तं पिप्पलीशर्करान्वितम् ॥
नागरं गुडसंयुक्तं हिक्काघ्नं नावनत्रयम् ॥ ७ ॥
स्तन्येन मक्षिकाविष्टा नस्ये वालक्तकांबुना ॥
योज्या हिक्काभिभूतेभ्यः स्तन्यं वा चंदनान्वितम् ॥ ८ ॥

मधुसौवर्चलोपेतं मातुलुंगरसं पिबेत् ॥
हिक्कार्तो मधुना लिह्याच्छुंठीं धात्रीकणान्विताम् ॥ ९ ॥
कृष्णामलकशुंठीनां चूर्णं मधुसितायुतम् ॥
मुहुर्मुहुः प्रयोक्तव्यं हिक्काश्वासनिवारणम् ॥१०॥
हिक्की श्वासी पिबेद्भार्गीं सविश्वामुष्णवारिणा ॥
नागरं वा सिताभार्गीसौवर्चलसमन्वितम् ॥१२॥
दशमूलीजलयुतं सूतं हिक्किषु योजयेत् ॥
श्वासकासहरः सर्वो विधिरत्रापि युज्यते ॥१३॥
पाटलाफलतोयेन क्षौद्रेण च समन्वितम् ॥
हेमभस्म निहंत्येव हिक्काः पंच सुदारुणाः ॥१४॥
कटुकागैरिकाभ्यां च मुक्ताभस्म तथैव च ॥
बीजपूरस्य तोयेन ताम्रं तद्वत्समाक्षिकम् ॥१५॥
हेममुक्तार्ककांतानां भस्म वल्लमितं वरं ॥
बीजपूररसः क्षौद्रं सौवर्चलसमन्वितः ॥१६॥
हंति हिक्काशतं सत्यमेकमात्रप्रयोगतः ॥
का कथा पंचहिक्कानां हरणे पुनरुच्यते ॥१७॥

इति बौद्धसर्वस्वात् ॥

दशमूलीकषायेण मधुना च समन्वितम् ॥
कांतायोभस्म हिक्कानां पंचानां पंचतां नयेत् ॥१८॥

इति वसंतराजात् ॥

इतिश्री योगतरंगिणी संहितायां हिक्काचिकित्सा
नाम त्रिंशस्तरंगः ॥ ३० ॥
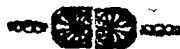
॥ अथ एकत्रिंशस्तरंगः ॥ ३१ ॥

॥ अथ श्वासाधिकारः ॥

यैर्निमित्तैर्भवेद्धिक्का श्वासस्तैरेव जायते ॥
कुलत्थनागरव्याघ्रीवासाभिः कथितं जलम् ॥
पीतं पौष्करसंयुक्तं श्वासकासनिवारणम् ॥ १ ॥
गुडशुण्ठीशिवामुस्तैर्धारयेद् गुटिकां मुखे ॥
श्वासकासेषु सर्वेषु बिभीतं वापि केवलम् ॥ २ ॥

भार्गी हरीतकी अवलेहः ।

भार्गीजटापलशतं सलिलार्मणाभ्यां
युक्पञ्चमूलतुलया सहितं विपाच्यम् ॥
पादस्थिते तु शतमत्र हरीतकीनां
पक्तव्यमुज्ज्वलगुडस्य शतेन साकम् ॥ ३ ॥
उत्तार्य तत्र शिशिरे मधुनः पलानि
चत्वारि च द्विगुणितानि पलत्रयं च ॥
व्योषत्रुटित्वगिभकेसरपत्रकाणा-
मेषां पलं खलु निधेयमथोपयोज्यम् ॥ ४ ॥
श्वासं च कासमपि शोषमथापि हिक्का-
मेकाहिकं ज्वरमथोत्कटपीनसं च ॥
हन्याद्रसायनमिदं हि पुरंदरस्य
प्रोक्तं सहस्रकरपुत्रभिषग्वराभ्याम् ॥ ५ ॥

श्वासकुठारः ।

रसं गंधं विषं चैव टंकणं च मनःशिला ॥
एतानि टंकमात्राणि मरिचं चाष्टटंककम् ॥ ६ ॥
एकैकं मरिचं दत्वा खल्वे चूर्णं विमर्दयेत् ॥
त्रिकटुं टंकषट्कं च दत्वा पश्चाद्विचूर्णयेत् ॥ ७ ॥

सर्वमेकत्र संयोज्य काचकूप्यां विनिःक्षिपेत् ॥
श्वासे कासे च मंदाग्नौ तथा श्लेष्मामयेषु च ॥ ८ ॥
गुंजामात्रं प्रदातव्यं पर्णखंडेन धीमता ॥
सन्निपाते च मूर्छायामपस्मारे तथा पुनः ॥ ९ ॥
अतिमोहत्वमापन्ने नस्यं दद्याद्विचक्षणः ॥
रसः श्वासकुठारोऽयं सर्वश्वासविकारजित् ॥ १० ॥

इतिश्री योगतरंगिणी संहितायां श्वासचिकित्सानाम
एकत्रिंशस्तरङ्गः ॥ ३१ ॥

अथ द्वात्रिंशस्तरंगः ॥ ३२ ॥

॥ अथ स्वरभेदाधिकारः ॥

अम्लादेः कुपितैर्दोषैः स्वरनाडीगतैर्नृणाम् ॥
स्वरभेदः पृथक्सर्वैर्मेदसा च क्षयेण च ॥ १ ॥

चव्यादि मोदकः ।

चव्याम्लवेतसकटुत्रयतिंतिडीक-
तालीसजीरकतुगादहनैः समांशैः ॥
चूर्णं गुडप्रमृदितं त्रिसुगन्धियुक्तं
वैस्वर्यपीनसकफारुचिषु प्रशस्तम् ॥ २ ॥

बदरीपत्रकल्कं वा घृतभ्रष्टं ससैंधवम् ॥
स्वरोपघाते कासे च लेहमेनं प्रयोजयेत् ॥ ३ ॥
व्याघ्रीस्वरसविपक्वं रास्नावाट्यालगोक्षुरव्योषैः ॥
सर्पिः स्वरोपघातं हन्यात्कासं च पंचविधम् ॥ ४ ॥

इतिश्री योगतरंगिणी संहितायां स्वरभेदचिकित्सानाम
द्वात्रिंशस्तरंगः ॥ ३२ ॥
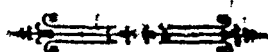
॥ अथ त्रयस्त्रिंशस्तरंगः ॥३३॥

॥ अथ अरोचकाधिकारः ॥

वस्ति समीरणे पित्ते विरेकं वमनं कफे ॥
कुर्यादरोचके बुद्ध्वा हर्षणं मनसस्तथा ॥ १ ॥
अम्लिका गुडतोयं च त्वगेलामरिचान्वितम् ॥
अभक्तछंदरोगेषु शस्तं कवलधारणम् ॥ २ ॥
जिह्वाकंठविशोधनं तदनु च स्याच्छृंगवेरान्वितं
सिंधूत्थं हितमत्र वाथ मधुना शस्तो रसो दाडिमः ॥
अग्न्युद्बोधकराण्यजीर्णशमनान्याहुस्तथा भेषजा-
न्यत्रारोचकरोगवत्यथ मुहुस्तत्तत्प्रधानानि च ॥ ३ ॥

इतिश्री योगतरंगिणी संहितायां अरोचकचिकित्सानाम
त्रयस्त्रिंशस्तरंगः ॥ ३३ ॥

॥ अथ चतुस्त्रिंशस्तरंगः ॥ ३४ ॥

॥ अथ छर्दि रोगाधिकारः ॥

दुष्टदोषैः पृथक्सर्वैर्बीभत्सालोकनादिभिः ॥
छर्दयः पंच विज्ञेयास्तोः पृथग्लक्षणैर्मताः ॥ १ ॥
दधित्थरससंयुक्तं पिप्पलीं माक्षिकान्वितां ॥
मुहुर्मुहुर्नरो लीढ्वा छर्दिभ्यः प्रतिमुच्यते ॥ २ ॥

इति सुश्रुतात् ॥

करंजपत्र योग ।

कोमलकरंजपत्रं सलवणमम्लेन संयुक्तं ॥
यः खादति दिनवदने छर्दिकथा तस्य कुत्रेह ॥ ३ ॥

एलादि चूर्णं ।

एलालवंगगजकेसरकोलमज्जा-
लाजप्रियंगुघनचंदनपिप्पलीनाम् ॥
चूर्णानि माक्षिकसितासहितानि लीढ्वा
छर्दिं निहंति कफमारुतपित्तजाताम् ॥ ४ ॥

छर्दिहरा योगाः ।

कषायो भ्रष्टमुद्गस्य सलाजमधुशर्करः ॥
रंभाकन्दरसो वापि मधुना छर्दिनाशकृत् ॥ ५ ॥
अश्वत्थवल्कलं शुष्कं दग्ध्वा निर्वापितं जले ॥
तद्वारिपानतो नूनं छर्दिं जयति दुस्तराम् ॥ ६ ॥
पुराणसणगोण्या वा खंडं दग्ध्वा तदंबु वै ॥
पिबेच्छर्दिहरं किं वा मधुना मक्षिकामलम् ॥ ७ ॥
ईषद्भ्रष्टं करंजस्य बीजं खंडीकृतं पुनः ॥
मुहुर्मुहुर्नरो भुक्त्वा छर्दिं जयति दुस्तराम् ॥ ८ ॥
पर्पटक्वाथमादाय शीतलं दापायेन्नृणाम् ॥
वमिं हंति महाघोरां सपित्तभ्रमसंयुताम् ॥ ९ ॥
शंखपुष्पीरसं टंकद्वयं समरिचं मुहुः ॥
सक्षौद्रं मनुजः पीत्वा छर्दिभ्यः किल मुच्यते ॥१०॥
अजाजीधान्यपथ्याभिः सक्षौद्रैः सकटुत्रिकैः ॥
एतैः सार्द्धं भस्म सूतः सद्यो वांतिं विनाशयेत् ॥११॥

इति रसरत्नप्रदीपात् ॥

इतिश्री योगतरंगिणी संहितायां छर्दिचिकित्सानाम
चतुस्त्रिंशस्तरंगः ॥ ३४ ॥
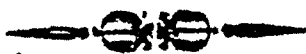
॥ अथ पंचत्रिंशस्तरंगः ॥ ३५ ॥

॥ अथ तृष्णाधिकारः ॥

सततं यः पिबेद्वारि न तृप्तिमधिगच्छति ॥
पुनः कांक्षति तोयं च तं तृष्णार्दितमादिशेत् ॥ १ ॥

तृष्णातिवृद्धावुदरे च पूर्णे
संछर्दयेन्मागधिकोदकेन ॥
विलंघनं चात्र हितं विधेयं
स्याद्दाडिमाम्लातकमातुलुंगैः ॥ २ ॥

सुवर्णरूप्यादिभिरग्नितप्तै-
र्लोष्ठैः कृतं वा सिकतोपलैर्वा ॥
जलं सुखोष्णं शमयेच्च तृष्णां
सशर्करं क्षौद्रयुतं हिमं वा ॥ ३ ॥

कशेरुशृंगाटकपद्मबीज-
बिसेक्षुसिद्धंससितं च वारि ॥
तृषां क्षतोत्थामपि पित्तजातां
निहंति पीतं शिशिरीकृतं च ॥ ४ ॥

अरुणचंदनचंदनवालकै-
र्नलदपद्मकतुल्यकृतां शनैः ॥
शिरसि लेपनमाचरतां नृणां
तृडुपघात्युपशांतिमसंशयम् ॥ ५ ॥

नीलाब्जकुष्ठमधुलाजवटप्ररोहैः
श्लक्ष्णीकृतैर्विरचिता गुटिका मुखस्था ॥
तृष्णां निवारयति तत्क्षणमेव तीव्रां
मंत्रस्पृहामिव यतेः परमार्थचिंता ॥ ६ ॥

तृषाहर रसः ।

रसगंधककर्पूरैः शैलोशीरमरीचकैः ॥
ससितैः कमलैश्च सूक्ष्मं चूर्णमहर्मुखे ॥ ७ ॥
त्रिगुंजाप्रमितं खादेत्पिबेत्पर्युषितांबु च ॥
भृशं तृषां निहंत्येषजाभिनेयप्रकाशितम् ॥ ८ ॥
सक्षौद्रमाम्रजंबूत्थं पिबेत्क्वाथं रसान्वितम् ॥
सतृष्णो मधुना कुर्याद् गंडूषान् शिशिरस्थितः ॥ ९ ॥
तृषितो मोहमायाति मोहात्प्राणान्विमुंचति ॥
अतः सर्वास्ववस्थासु न कचिद्वारि वार्यते ॥१०॥
पानीयं प्राणिनां प्राणो विश्वमेतच्च तन्मयम् ॥
अतोत्यंतनिषेधेपि न कचिद्वार्यते जलम् ॥
घोरोपद्रवसंयुक्ता तृष्णा मरणमादिशेत् ॥११॥

इति श्रीयोगतरंगिणी संहितायां तृष्णाचिकित्सा नाम पंचत्रिंशस्तरंगः ॥ ३५ ॥
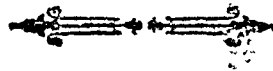
॥ अथ षट्त्रिंशस्तरंगः ॥ ३६ ॥

॥ अथ मूर्छाधिकारः ॥

सुखदुःखव्यपोहाच्च नरः पतति काष्ठवत् ॥
मोहो मूर्छेति तामाहुः षड्विधा सा प्रकीर्तिता ॥ १ ॥

इति रुग्विनिश्चयात् ॥

सेकावगाहौ मणयः सहाराः
शीतोपचारा व्यजनानिलाश्च ॥
पुष्पाण्यनेकानि च गंधवंति
बिसानि शस्तानि च मूर्छितेषु ॥ २ ॥

सिताप्रियालेक्षुरसद्रुतानि
द्राक्षामधूकस्वरसान्वितानि ॥
खर्जूरकाश्मर्यरसैः शृतानि
सिद्धानि सर्पींषि सजीवनानि ॥ ३ ॥
सिद्धानि वर्गे मधुरे पयांसि
सदाडिमा जांगलजा रसाश्च ॥
तथा यवा लोहितशालयश्च
मूर्छासु पथ्याश्च सदा सतीनाः ॥ ४ ॥
नासावदनरोधे तु नस्यैर्मरिचनिर्मितैः ॥
नरं जागरयेद् भूमौ मूर्छितं मंदमारुतैः ॥ ५ ॥
तीक्ष्णांजनाभ्यंजनधूमयोगै-
स्तथा नखाभ्यंतरतोत्रपातैः ॥
वादित्रगीतानुभयैरपूर्वै-
र्विस्मापनैर्गूसफलावघर्षैः ॥ ६ ॥
आभिः क्रियाभिर्यदि नाप्तसंज्ञः
सानाहलालाश्वसनश्च वर्ज्यः ॥
प्रबुद्धसंज्ञं वमनानुलोमै-
स्तीक्ष्णैर्विशुद्धं लघुपथ्यमुक्तम् ॥ ७ ॥
यथास्वं च ज्वरघ्नानि कषायाण्युपयोजयेत् ॥
सर्वमूर्छापरीतानां विषजानां विषापहम् ॥ ८ ॥

रस योगः ।

कणामधुयुतं सूतं मूर्छायामनुशीलयेत् ॥
शीतसेकावगाहानि सर्वैर्वा पीडनं हठात् ॥ ९ ॥

इति रसरत्नप्रदीपात् ॥

इति श्रीयोगतरंगिणी संहितायां मूर्छाचिकित्सा नाम
षट्त्रिंशस्तरंगः ॥ ३६ ॥

॥ अथ सप्तत्रिंशस्तरंगः ॥ ३७ ॥

॥ अथ पानात्ययः ॥

अयुक्त्या मद्यपानेन बहुना स्यान्मदात्ययः ॥
दाहमूर्छाभ्रमिभ्रांतिवैकल्यविषचेष्टितैः ॥ १ ॥
मंथः खर्जूरमृद्वीकावृक्षाम्लाम्लीकदाडिमैः ॥
परूषकैः सामलकैर्युक्तो मद्यविकारनुत् ॥ २ ॥
मथितं गोदधि ससितं सैलं कर्पूरसंमिश्रम् ॥
आस्वाद्य पीतमाशु क्षपयति पानात्ययं रोगम् ॥ ३ ॥
समरिचघनसारं वारि मीनांडिकाद्यैः ॥
परिमिलितममंदैर्दाडिमीबीजतोयैः ॥
पिबति य इह मर्त्यस्तस्य पानात्ययाख्यो ॥
विरमति मदिराक्षीचुंबनाश्लेषभाजः ॥ ४ ॥

इति श्री योगतरंगिणी संहितायां पानात्ययचिकित्सा नाम
सप्तत्रिंशस्तरंगः ॥ ३७ ॥

॥ अथ अष्टात्रिंशस्तरंगः ॥ ३८ ॥

॥ अथ दाहाधिकारः ॥

त्वचं प्राप्तः स पानोष्मा पित्तरक्ताभिमूर्छितः ॥
दाहं प्रकुरुते घोरं पित्तवत्तत्र भेषजम् ॥ १ ॥
शतधौतघृताभ्यक्तो लिप्तः सक्तुभिराघृतम् ॥
कोलामलकसंयुक्तैर्दाडिमाम्लैश्च बुद्धिमान् ॥ २ ॥
छादयेत्तस्य सर्वांगमारनालार्द्रवाससा ॥
लामज्जेनाथ युक्तेन चंदनेनानुलेपयेत् ॥ ३ ॥

चांदनांबुकणास्यंदितालवृंतोपवीजनैः ॥
शैवालकदलीपद्मोशीरतल्पे शयीत च ॥ ४ ॥
अंतर्दाहं प्रशमयेदेतैश्चान्यैश्च शीतलैः ॥
फलिनीलोध्रसेव्यांबुहेमपत्र कुटनटम् ॥ ५ ॥
कालीयकरसोपेत दाहे शस्तं प्रलेपनम् ॥
ह्रीवेरपद्मकोशीरचांदनोदकवारिणा ॥
संपूर्णमवगाहेत्तु द्रोणीं दाहार्दितो नरः ॥ ६ ॥

दाहादित्य रसः ।

जातीफलेशवलयश्चिरथ छिरर्क-
माक्षीकधातुरहिफेन मनःशिलैला ॥
मल्लीपभृंगदशक मनुभावित तद्
विश्वाम्बुना च जरणकथनैस्त्रिवारं ॥ ७ ॥
दाहादित्यो रक्तिका-मात्र एष
प्रातर्भुक्तो विश्वजीरानुपानः ॥
दाह दीर्घं सज्वरं वातिसार
हन्ति प्रौढं संग्रहण्यामय च ॥ ८ ॥

इति श्री योगतरंगिणी सहितायां दाहचिकित्सा नाम
अष्टात्रिंशस्तरंगः ॥ ३८ ॥
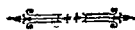
॥ अथ एकोनचत्वारिंशत्तरंगः ॥ ३९ ॥

॥ अथ उन्मादाधिकारः ॥

मदयंत्युद्गता दोषा यस्मादुन्मार्गगामिनः ॥
मानसोऽयमतो व्याधिरुन्माद इति कीर्तितः ॥ १ ॥

चौरैर्नरेंद्रपुरुषैररिभिस्तथान्यै-
र्वित्रासितस्य धनबांधवसंक्षयाद्वा ॥
गाढं क्षते मनसि च प्रियया रिरंसो-
र्जायेत चोत्कटतरो मनसो विकारः ॥ २ ॥

इति रुग्विनिश्चयात् ॥

वातिके स्नेहपानं च प्राग्विरेकश्च पित्तजे ॥
कफजे वमनं कार्यं परो बस्त्यादिकक्रमः ॥ ३ ॥
यथा च वक्ष्यते किंचिदपस्मारे चिकित्सितम् ॥
उन्मादे तच्च कर्तव्यं सामान्याद्दोषदूष्ययोः ॥ ४ ॥

सिद्धार्थकादि अगदः ।

सिद्धार्थको वचा हिंगु करंजो देवदारु च ॥
मंजिष्ठा त्रिफला श्वेता कटभीत्वक्कटुत्रयम् ॥ ५ ॥
समांशानि प्रियंगुश्च शिरीषो रजनीद्वयम् ॥
बस्तमूत्रेण पिष्टोऽयमगदः पानमंजनम् ॥ ६ ॥
नस्यमालेपनं चैव स्नानमुद्वर्तनं तथा ॥
अपस्मारविषोन्मादकृत्याऽलक्ष्मीज्वरापहम् ॥ ७ ॥
भूतेभ्यश्च भयं हंति राजद्वारे च शस्यते ॥
सर्पिरेतेन सिद्धं वा गोमूत्रेण तदर्थकृत् ॥ ८ ॥
दशमूलांबु सघृतं युक्तं मांसरसेन वा ॥
ससिद्धार्थकचूर्णं वा केवलं वा नवं घृतम् ॥ ९ ॥

उन्मादशांतये पेयो रसो वा कालशाकजः ॥
प्रयोज्यं सार्षपं तैलं नस्याभ्यंजनयोः सदा ॥१०॥
आश्वासयेत्सुहृद्वाक्यैर्ब्रूयादिष्टविनाशनम् ॥
दर्शयेदद्भुतं कर्म ताडयेच्च कशादिभिः ॥११॥
सुबद्धं विजने गेहे त्रासयेदहिभिर्धिया ॥

कल्याणक घृत ।

विशाला त्रिफला कौन्ती देवदार्वेलवालुकम् ॥१२॥
स्थिरा नतं हरिद्रे द्वे सारिवे द्वे प्रियंगुका ॥
नीलोत्पलैलामंजिष्ठादंतीदाडिमकेसरम् ॥१३॥
तालीसपत्रं बृहती मालतीकुसुमं नवम् ॥
विडंगं पृष्ठिपर्णी च कुष्ठं चांदनपद्मकौ ॥१४॥
एतैः कर्षमितैः कल्कैर्विंशत्यष्टाभिरेव च ॥
जले चतुर्गुणे पक्त्वा घृतप्रस्थं प्रयोजयेत् ॥१५॥
अपस्मारे ज्वरे कासे शोषे मंदानले तथा ॥
वातरक्ते प्रतिश्याये तृतीयकचतुर्थके ॥१६॥
वम्यर्शोमूत्रकृच्छ्रे च विसर्पोपहतेषु च ॥
कण्डूपांड्वामयोन्मादविषमेषु ज्वरेषु च ॥१७॥
भूतोपहतचित्तानां गद्गदानामचेतसाम् ॥
शस्तं स्त्रीणां च वंध्यानां धन्यमायुर्बलप्रदम् ॥१८॥
अलक्ष्मीपापरोगघ्नं सर्वग्रहनिवारणम् ॥
कल्याणकमिदं सर्पिः श्रेष्ठं पुंस्त्वप्रसाधने ॥१९॥

ब्राह्मीरसः स्यात्सवचः सकुष्ठः
सशंखपुष्पः ससुवर्णचूर्णः ॥
उन्मादिनामुन्मदमानसाना-
मपस्मृतो भूतहतात्मनां हि ॥२०॥

नस्यंजने पानविधौ च शस्तो ॥
ब्राह्मीरसोयं सवचादिचूर्णः ॥२१॥

इति वीरसिंहावलोकनतः ॥

हिंग्वाद्यं घृतं ।

हिंगुसौवर्च्चलव्योषैर्द्विपलांशैर्घृताढकम् ॥
चतुर्गुणे गवां मूत्रे सिद्धमुन्मादनाशनम् ॥२२॥

उन्मादहर अंजनं रसरत्नप्रदीपात् ।

कृष्णधत्तूरजैर्बीजैः पंचभिः पर्पटीरसः ॥
साज्यो योज्यः प्रणाश्यर्थमुन्मादस्याशु नस्यके ॥२३॥

इति श्री योगतरंगिणी संहितायां उन्मादचिकित्सा नाम
एकोनचत्वारिंशस्तरंगः ॥ ३९ ॥

॥ अथ चत्वारिंशस्तरंगः ॥ ४० ॥

॥ अथ अपस्माराधिकारः ॥

तमः प्रवेशसंरंभो दोषोद्रेकहतस्मृतिः ॥
अपस्मार इति ज्ञेयो गदो घोरश्चतुर्विधः ॥ १ ॥
पूर्वं युंज्यादपस्मारे छर्द्यादीनि च बुद्धिमान् ॥
वातिकं बस्तिभिः प्रायः पैत्तं प्रायो विरेचनैः ॥ २ ॥
कफजं वमनैः प्रायस्त्वपस्मारमुपाचरेत् ॥
ततस्तीक्ष्णं प्रयुंजीत शिरःक्षुरण्यप्रबोधनम् ॥ ३ ॥
सर्वतः शुद्धदेहस्य स्यादुन्मादहरी क्रिया ॥

करंजादि योगः ।

करंजदारुसिद्धार्थकटभी रामठं वचा ॥
समंगा त्रिफला व्योषं प्रियंगुश्च समांशतः ॥ ४ ॥

वस्तमूत्रेण सपिष्ट्या नस्यपानांजनादिभिः ॥
योज्यो योगोयमुन्मादेऽपस्मारे भूतयोगिषु ॥ ५ ॥
पुष्योद्धृतं शुनः पित्तमपस्मारघ्नमंजनात् ॥
तदेव सर्पिषा युक्तं धूपन परमं स्मृतम् ॥ ६ ॥
यः खादेत्क्षीरभक्ताशी माक्षिकेण वचारजः ॥
अपस्मारं महाघोरं सुचिरोत्थं जयेद् ध्रुवम् ॥ ७ ॥
इति योगरत्नावली ॥

भूतभैरव रस रसरत्नप्रदीपात् ।

रसः सतालः सशिलः सलोहः
स्रोतोंऽजनं सार्कमिद सगंधम् ॥
पिष्टं नृमूत्रेण सम समस्ता-
द्देयो द्विभागोऽथ वलिः पचेच्च ॥ ८ ॥
लोहे क्षण हंति घृतेन माषो-
ऽपस्मारमस्योन्मदमानमत्स्वम् ॥
पिबेदनु त्र्यूषणहिंगुयुक्तं
सर्पिर्नृमूत्र कचकेन सार्द्धम् ॥ ९ ॥
भूतोन्मादेषु सर्वेषु रसोऽयं भूतभैरवः ॥
स्वर्णजैः पंचभिर्वीजैर्देयः सर्पिस्त्रिमिश्रितः ॥१०॥

इति श्री योगतरंगिणी संहितायां अपस्मारचिकित्सा नाम चत्वारिंशत्तरंगः ॥ ४० ॥

॥ अथ एकचत्वारिंशस्तरंगः ॥ ४१ ॥

॥ अथ वातरोगाधिकारः ॥

स्वहेतुकुपितो वातो यथादंशग्रहो बली ॥
तस्मादाद्यो बहुरुजः कुरुतेऽशीतिमामयान् ॥ १ ॥
अभ्यंगः स्वेदनं बस्तिर्नस्यं स्नेहविरेचनम् ॥
स्निग्धाम्ललवणस्वादु वृष्यं वातामयापहम् ॥ २ ॥
माषात्मगुप्तैरंडवाट्यालकशृतं पिबेत् ॥
हिंगुसैंधवसंयुक्तं पक्षाघातनिवारणम् ॥ ३ ॥
पंचमूलीकृतः क्वाथो दशमूलीकृतोऽथवा ॥
रूक्षः स्वेदस्तथा नस्यं मन्यास्तंभे प्रशस्यते ॥ ४ ॥

इति योगरत्नावली ॥

वातहरगणः ।

वाजिगंधाबलाशिग्रुदशमूलीमहौषधैः ॥
छिन्नरुहानलौ रास्ना च गणो मारुतनाशनः ॥ ५ ॥

माषसप्तकं ।

माषबलात्मगुप्ताशिंबीकत्तृणरास्नाश्वगंधोरुबूकाणाम् ॥
क्वाथः प्रातः पीतो रामठलवणान्वितः कोष्णः ॥ ६ ॥
अपनयति पक्षघातं मन्यास्तंभं सकर्णनादरुजम् ॥
दुर्जयमर्दितवातं सप्ताहाज्जयति चावश्यम् ॥ ७ ॥

रसोन सप्तकं ।

पलमर्धपलं वापि रसोनस्य सुकुट्टितम् ॥
हिंगुजीरकसिंधूत्थैः सौवर्चलकटुत्रिकैः ॥ ८ ॥
चूर्णितैर्माषमात्रैस्तद्विलोड्य च विचूर्णितैः ॥
यथाग्निभक्षितं प्रातरेरंडस्नेहसंयुतम् ॥ ९ ॥

दिनेदिने प्रयोक्तव्यं मासमेकं निरंतरम् ॥
वातरोगं निहंत्येव मर्दितं चापतंत्रकम् ॥
सर्वांगैकांगरोगं च गृध्रस्याक्षेपकावपि ॥१०॥

रसोनपंचकम् ।

कंदः सार्षपतैलं च लशुनं शृंगवेरकम् ॥
सर्वाष्टमांशं सिंधूत्थं संधित दिनसप्तकम् ॥११॥
संचूर्ण्य धर्मनध्ये तु प्रातः खादेद्यथाबलम् ॥
एष निर्गंधतामेत्य सर्वत्रानामयाञ्जयेत् ॥१२॥
स्निग्धभोजी मासमात्र सेवनाद्यातजिद्भवेत् ॥
अजीर्णमातपं रोषमतिनीरं पयो गुडम् ॥१३॥
रसोनमश्नन्पुरुषस्त्यजेदेतन्निरंतरम् ॥
मद्यं मांसं तथाम्ल च रस सेवेत नित्यशः ॥१४॥

आमाशयस्थे स्वनिले प्रशस्तं
प्राग्लंघनं दीपनपाचन च ॥
प्रच्छर्दनं तीक्ष्णविरेचन च
पुराणमुद्गा यवशालयश्च ॥१५॥
पूतीकपथ्यासटिपुष्कराणि
विल्वं गुडूची सुरदारु शुठी ॥
विडंगवासातिविषाकणाह्वाः
क्राथास्त्रयः सामसमीरणघ्नाः ॥१६॥

षट्चरणयोग ।

चित्रर्केंद्रयवौ पाठा कटुकातिविषाभया ॥
वातव्याधिप्रशमनो योगः षट्चरणः स्मृतः ॥१७॥
आमाशयगते वाते छर्दिताय यथाक्रमम् ॥
देयः षट्चरणो योगः सप्तरात्रं सुखांबुना ॥१८॥

सर्वथा कोष्ठगो वातः प्रशमं याति देहिनः ॥
कार्यो बस्तिगते वाते विधिर्बस्तिविशोधनः ॥१९॥
श्रोत्रादिषु प्रकुपिते कार्यश्चानिलहाक्रमः ॥
त्वङ्मांसासृक्‌शिराप्राप्ते कुर्याच्चासृग्विमोक्षणम् ॥२०॥
स्वेदोपनाहाग्निकर्मबंधनोन्मर्दनानि च ॥
स्नायुसंध्यस्थिसंप्राप्ते कुर्याद्वाते विचक्षणः ॥२१॥
निगूढेऽस्थिगते वाते पाणिमंथेन दारिते ॥
नाडीं दत्वास्थनि भिषक्चूषयेत्पवनं बली ॥२२॥
शुक्रप्राप्तेऽनिले कार्यं शुक्रदोषचिकित्सितम् ॥२३॥
कार्पासास्थिकुलत्थिकातिलयवैरंडाख्यमाषातसी-
वर्षाभूसणबीजकांजिकयुतैरेकीकृतैर्वा पृथक् ॥
स्वेदः स्यादिति कूर्परोदरहनुस्फिक्पाणिपादांगुली-
गुल्फस्तंभकटीरुजो विजयते क्षामाः समीरोद्भवाः ॥२४॥
नवनीतेन संयुक्ताः खादेन्माषेंडरीर्नरः ॥
दुर्वारमर्दितं हंति सप्तरात्रान्न संशयः ॥२५॥

माषादि तैलं ।

माषातसीयवकुरंटककंटकारी-
गोकंटटुंटुकजटाकपिकच्छुतोयैः ॥
कार्पासकास्थिशणबीजकुलत्थकोल-
क्वाथेन बस्तपिशितस्य रसेन चापि ॥२६॥
शुंठ्या च मागधिकया शतपुष्पया च
सैरंडमूलसपुनर्नवया सरण्या ॥
रास्नाबलामृतलताकटुकैर्विपक्वं
माषाख्यमेतदपबाहुकहारि तैलम् ॥२७॥

अर्द्धांगशोषमपतानकमाढ्यवात-
माक्षेपकं सभुजकंपशिरःप्रकंपम् ॥
नस्येन बस्तिविधिना परिषेचनेन
हन्यात्कटीजघनजानुशिरःसमीरान् ॥२८॥

महाबला तैलं ।

बलामूलकषायस्य दशमूलीकृतस्य च ॥
यवकोलकुलत्थानां क्काथस्य पयसस्तथा ॥२९॥
अष्टावष्टौ शुभा भागास्तैलादन्ये तदेकतः ॥
पचेदावाप्य मधुरं गणं सैंधवसयुतम् ॥३०॥
तथागुरुं सर्जरसं सरलं देवदारु च ॥
मंजिष्ठां चंदनं कुष्ठमेलां कालां च सारिवाम् ॥३१॥
मांसीं शैलेयकं पत्रं तगरं सारिवां वचाम् ॥
शतावरीमश्वगर्भां शतपुष्पां पुनर्नवाम् ॥३२।
तत्साधुसिद्धं सौवर्णे राजते मृन्मयेऽथ वा ॥
प्रक्षिप्य सकलं सम्यक्सुगुप्तं स्थापयेद् बुधः ॥३३॥
इदं महाबलातैल सर्ववातविकारनुत् ॥
यथाबलं भिषङ्मात्रां सूतिकायै प्रदापयेत् ॥३४॥
या च गर्भार्थिनी नारी क्षीणशुक्रश्च यः पुमान् ॥
क्षीणे वाते मर्महते मथिते पीडिते तथा ॥३५॥
भग्ने श्रमाभिपन्ने च सर्वथैव प्रयोजयेत् ॥
सर्वानाक्षेपकादींश्च वातव्याधीन्व्यपोहति ॥३६॥
प्रत्यग्रधातुः पुरुषो भवेच्च स्थिरयौवनः ॥
राज्ञामेतद्धि कर्तव्यं राजमान्यैस्तथापरैः ॥३७॥

महानारायण तैल निरामिष ।

बिल्वोग्निमंथः स्योनाकः पाटला पारिभद्रकः ॥
प्रसारिण्यश्वगंधा च बृहती कंटकारिका ॥३८॥

बला चातिबला चैव श्वदंष्ट्रा सपुनर्नवा ॥
एषां दशपलान्भागांश्चतुर्द्रोणांभसा पचेत् ॥३९॥
पादशेषं परिस्राव्य तैलपात्रे प्रदापयेत् ॥
शतपुष्पा देवदारु मांसी शैलेयकं वचा ॥४०॥
चंदनं तगरं कुष्ठमेला पर्णीचतुष्टयम् ॥
रास्ना तुरगगंधा च सैंधवं सपुनर्नवम् ॥४१॥
एषां द्विपलिकान्भागान्पेषयित्वा विनिक्षिपेत् ॥
शतावरीरसं चैव तैलतुल्यं प्रदापयेत् ॥४२॥
आजं वा यदि वा गव्यं क्षीरं दत्वा चतुर्गुणम् ॥
पाने बस्तौ तथाभ्यंगे भोज्ये नस्ये प्रयोजयेत् ॥४३॥
अश्वो वा वातभग्नो वा गजो वा यदि वा नरः ॥
पंगुर्वा भग्नहस्तो वा भग्नपादोथ वा नरः ॥४४॥
अधोभागे च ये वाताः शिरोमध्यगताश्च ये ॥
दंतशूले हनुस्तंभे मन्यास्तंभेऽपतंत्रके ॥४५॥
एकांगग्रहणे वापि सर्वांगग्रहणे तथा ॥
क्षीणेंद्रिया नष्टशुक्रा ज्वरग्रस्ताश्च ये नराः ॥४६॥
लुलज्जिह्वाश्च बधिरा विस्वरा मंदमेधसः ॥
मंदप्रजा च या नारी या च गर्भं न विन्दति ॥४७॥
वातार्तौ वृषणौ येषां अंत्रवृद्धिश्च दारुणा ॥
महानारायणं तैलं शस्तं सर्वत्र सर्वदा ॥४८॥

प्रसारणी तैलं ।

समूलपत्रामुत्पाट्य जातसारां प्रसारणीम् ॥
कुट्टयित्वा पलशतं कटाहे समधिश्रयेत् ॥४९॥
वारिद्रोणसमायुक्तं चतुर्भागावशेषितम् ॥
[illegible] तु तैलमत्र प्रदापयेत् ॥५०॥

दुग्धरतत्राढकं दद्याद् द्विगुणं चाम्लकांजिकम् ॥
भेषजानि तु पेष्याणि तत्रेमानि समावपेत् ॥५१॥
शुंठीपलानि पंचैव रास्नायाश्च पलद्वयम् ॥
यवक्षारपले द्वे च सैन्धवस्य पलद्वयम् ॥५२॥
द्वेपले पिप्पलीमूलात् चित्रकस्य पलद्वयम् ॥
प्रसारणीपले द्वे च द्वे पले मधुकस्य च ॥५३॥
एतत्सर्वं समालोडय शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥
एतत्प्रभंजने श्रेष्ठं नस्यकर्मणि शस्यते ॥५४॥
पाने बस्तौ च दातव्यं न कचित्प्रतिषिध्यते ॥
अशीतिं वातरोगाणां तैलमेतद् व्यपोहति ॥५५॥
एकांगग्रहणं वापि सर्वांगग्रहणं तथा ॥
अपस्मारं तथोन्माद विद्रधिं मंदवह्निताम् ॥५६॥
त्वग्गताश्चापि ये वाताः शिरासंधिगता अपि ॥
अस्थिसंधिगता ये च ये च शुक्रांतरस्थिताः ॥५७॥
सर्वान्वातामयान्नून नाशयत्येव सर्वथा ॥
हयं नरं गजं वापि वातजर्जरितं भृशम् ॥५८॥
सद्यः प्रशमयेत्तैलमेतन्नात्र विचारणा ॥
इंद्रियस्य प्रजननं वंध्यानां च प्रजाकरम् ॥५९॥
वृद्धानां बालकानां च स्त्रीणां राज्ञां हितं परम् ॥
पंगुर्वा पृष्ठभग्नो वा पीत्वैतत्संप्रधावति ॥६०॥

महानारायण तैलं-सामिषं ।

बलाश्वगंधा बृहती श्वदंष्ट्रा
श्योनाकवाट्यालकपारिभद्राः ॥
क्षुद्राकठिल्लातिबलाग्निमंथ
रास्नारणिर्बं कपिकच्छुरा च ॥६१॥

निर्गुंडिकैरंडकुरंटकानां
मूलानि वर्षासरणीयुतानि ॥
मूलं विदध्यादथ पाटलानां
संकुट्य पादांशतयोद्धृतानाम् ॥६२॥

द्रोणैरपामष्टभिरेव पक्त्वा
पादावशेषेण रसेन तेन ॥
तैलाढकाभ्यां सह दुग्धमत्र
गव्यं विदध्यादथचाजदुग्धम् ॥६३॥

दद्याद्रसं चैव शतावरीणां
तैलेन तुल्यं पुनरेव तत्र ॥
पक्त्वा दिनैकं कृतवस्त्रपूतं
कल्कानि चैषां हि समावपेच्च ॥६४॥

रास्नाश्वगंधामिसिदारुकुष्ठ-
पर्णीतुरुष्कागुरुकेसराणि ॥
सिंधूत्थमांसी रजनीद्वयं च
शैलेयकं पुष्करचंदनानि ॥६५॥

एलासयष्टीतगराब्दपत्रं
भृंगाष्टवर्गं च जयापलाशम् ॥
वृश्चीकथौणेयकचोरकाख्यं
मूर्वा त्वचा कट्फलपद्मकं च ॥६६॥

मृणालजातीफलकेतकी च
सनागपुष्पं सरलं मुरा च ॥
जीवंतिका चंदनकं मुशीरं
दुरालभा वानरिका नखं च ॥६७॥

कैवर्तिकं तालशिरः सतिक्तं
खर्जूरमुस्तं समभागमेषाम् ॥
एतैः समेत्यार्द्धपलप्रमाणैर्भा-
गानथाष्टौ किल कालमेष्याः ॥६८॥

एणः कुरंगो हरिणो मयूरो
गोधा शशः शल्लकचक्रवाकौ ॥
वर्त्तीरलावौ चरनिस्सिरी च
ससारसक्रौंचककंधुवर्णाः ॥६९॥

अजाः सकूर्मा इह मांसयूपं
क्रमात्क्षिपेच्चात्र यथैव लाभम् ॥
रोहीतकोथासवनेत्रनामा
कंसाढको मुद्गरशृंगिके च ॥७०॥

पाठीनकालीयकतोणिका च
सशेखरा ये कुररादयश्च ॥
ये च पि तोये शिशुमारमुख्या
लभ्याश्च ये श्वभ्रगता भुजंगाः ॥७१॥

अन्येपि ये भूचरखेचराश्च
यूषा अमीषां क्रमशोऽत्र योज्याः ॥
सुताम्रपात्रेष्वथ भुक्तिकाले
कर्पूरकाश्मीरमृगांडजं च ॥७२॥

दद्यात्सुगंधाय वदंति केचित्
प्रस्वेददौर्गंध्यविनाशनाय ॥
वदंति केचिद्भिषजः समेतं
शुभे तिथावृक्षमुहूर्तलग्ने ॥७३॥

संतोष्य विप्रान्भिषजोऽर्थिनश्च
शुभाजने यत्नघृतं तथैव ॥
पाने च नस्ये च निरूहणे च
भोज्ये प्रयोज्यं तत एव नूनम् ॥७४॥

अभ्यंगमादौ च सदा प्रशस्तं
निवार्यते कर्मसु केषुचिन्न ॥
उन्मादशोषक्षतरक्तपित्त
श्वासभ्रमच्छर्दिषु मूर्छितेषु ॥७५॥

कासाग्निवाताहतशूलदंत
कृमीन्पृथुप्लीहहलीमदाहान् ॥
सतालुशूलं श्रवणाक्षिशूलं
बाधिर्यमुच्चैर्ज्वरपीडितं च ॥७६॥

मंदेंद्रियत्वं च तथाग्निमांद्यं
प्रणष्टमुष्कत्वमथांगकंडूः ॥
निहन्ति सत्यं स्वगुणप्रभावा-
त्कटिग्रहापस्मृतिगृध्रसीं च ॥७७॥

पक्षाभिघातं चरणाभिघातं
हस्ताभिघातं च शिरोग्रहं च ॥
कुष्ठानि सर्वाणि च सर्वगुल्मा-
न्भगंदरं शूलमुरःक्षतं च ॥७८॥

यक्ष्माणमुग्रं सकलप्रमेहा-
न्नासाक्षिकर्णप्रभवान्विकारान् ॥
वातादिजातान्निकिल भूतजाता-
न्कृत्यादिजातान्ग्रहजान्विकारान् ॥७९॥

रोगः स नास्त्येव नरस्य देहे
नानेन शांतिं समुपैति यो हि ॥
सद्योव्रणानस्थिविचूर्णितं वा
नाडीव्रणान्वापि च योजयित्वा ॥८०॥
सुवर्णवर्णं वितनोति रूपं
नारायणाख्यः किल तैलराजः ॥
वंध्याः पुमान्वापि वरांगना वा
सुपुत्रमाप्नोति विलेपतोस्य ॥८१॥
सिध्यत्यनेनैव नियोजितेन
निदाघदग्धः प्रहृतोपि वृक्षः ॥
अन्यस्य का वा भणितिर्नरस्य
रोगस्य जंतोरपरस्य वापि ॥८२॥
नारायणोक्तं यदिदं सुतैलं
नारायण नाम ततः प्रसिद्धं ॥

महामाष तैल ।

माषक्वाथे बलाक्वाथे रास्नाया दशमूलजे ॥
यवकोलकुलत्थानां छागमांसरसे पृथक् ॥८३॥
प्रस्थे तैलस्य च प्रस्थं क्षीरं दद्याच्चतुर्गुणम् ॥
रास्नात्मगुप्तासिंधूत्थशताह्वैरंडमुस्तकैः ॥८४॥
जीवनीयबलाव्योषैः पचेदक्षमितैर्भिषक् ॥
हस्तकंपे शिरःकंपे बाहुकंपेऽपबाहुके ॥८५॥
बस्त्यभ्यंजनपानेषु नावनेषु प्रयोजयेत् ॥
माषतैलमिदं श्रेष्ठं मूर्द्धजत्रुगदापहम् ॥८६॥

रास्नादि गुग्गुलु ।

रास्नामृतैरंडसुराह्वविश्वं
तुल्येन गाढं पुरुणा विमर्द्य ॥
स्यादेत्समीरी सशिरोगदी च
नाडीगदी चापि भगंदरी च ॥८७॥

द्वात्रिंशको गुग्गुलुः ।

त्रिकटु त्रिफला मुस्तं विडंगं चव्यचित्रकौ ॥
वचैलापिप्पलीमूलं हपुषा सुरदारु च ॥८८॥
तुम्बरं पौष्करं कुष्ठं विषा च रजनीद्वयम् ॥
वाष्पिका जीरकं शुंठी पत्रं च सकुराल्वम् ॥८९॥
सौवर्चलं विडंगं च क्षारौ द्विरदपिप्पली ॥
सैंधवं च समानेतांस्तुल्यं दद्याच्च गुग्गुलुम् ॥९०॥
साधयित्वा विधानेन कोलमात्रां वटीं चरेत् ॥
घृतेन मधुना वापि भक्षयेत्तामहर्मुखे ॥९१॥
आमं हन्यादुदावर्तमंत्रवृद्धिगुदांकुरान् ॥
महाज्वरोपसृष्टानां भूतोपहतचेतसाम् ॥९२॥
आनाहं च तथोन्मादं कुष्ठानि गुल्मानि च ॥
शोफं प्लीहामयं देहे कामलामपचीं तथा ॥९३॥
नाम्ना द्वात्रिंशको ह्येष गुग्गुलुः कथितो महान् ॥
धन्वंतरिकृतो योगः सर्वरोगनिषूदनः ॥९४॥

त्रयोदशांग गुग्गुलुः ।

आभाश्वगंधा हपुषा गुडूची
शतावरी गोक्षुरकं च रास्ना ॥
श्यामा सठी धोषवली यवानी
सनागरा चेति समं विचूर्ण्य ॥९५॥
तुल्यं वरं कौशिकमत्र देयं
गव्यं च सर्पिश्च ततोर्द्धभागं ॥
अक्षार्द्धमात्रां तु ततः प्रयोग-
स्तत्रानुपानं सुरया च यूषैः ॥९६॥

कोष्णांबुना वा पयसा रसेन
मांसस्य वा कोमलवस्त्यजस्य ॥
कटिग्रहे गृध्रसि बाहुपृष्ठ
हनुग्रहे जानुनि पादयुग्मे ॥९७॥
संधिस्थिते चास्थिगते च वाते
मज्जागते कोष्टगते तथापि ॥
रोगान्जयेद्वातकफानुविद्धा
न्वातोत्थितान् हृद्ग्रहयोनिदोषान् ॥९८॥
भग्नास्थिविद्धेषु च खांजवाते ॥
त्रयोदशांगं प्रवदंति सिद्धाः ॥९९॥

योगराज गुग्गुलु सारसंग्रहात् ।

नागरं पिप्पलीमूलं पिप्पली चव्यचित्रकौ ॥
भ्रष्टं हिंग्वजमोदा च सर्षपा जीरकद्वयम् ॥१००॥
रेणुकेंद्रयवा पाठा विडग गजपिप्पली ॥
कटुकातिविषा भार्गी बचा मूर्वेति भागतः ॥१०१॥
प्रत्येक शाणमात्राणि द्रव्याणीमानि विंशतिः ॥
द्रव्येभ्यः सकलेभ्यश्च त्रिफला द्विगुणा भवेत् ॥१०२॥
एभिश्चूर्णीकृतैः सर्वैः समो देयस्तु गुग्गुलुः ॥
एकं पिंडं ततः कृत्वा धारयेद् घृतभाजने ॥१०३॥
गुटिकाः शाणमात्रास्तु कृत्वा ग्राह्या यथोचिताः ॥
गुग्गुलुर्योगराजोयं त्रिदोषघ्नो रसायनः ॥१०४॥
मैथुनाहारपानानां त्यागो नैवात्र विद्यते ॥
सर्वान्वातामयान्कुष्टमर्शांसि ग्रहणीगदम् ॥१०५॥
प्रमेहं वानरक्तं च नाभिशूलं भगंदरम् ॥
उदावर्तं क्षयं गुल्ममपस्मारमुरोग्रहम् ॥१०६॥

मंदाग्निं श्वासकासांश्च नाशयेदरुचिं तथा ॥
रेतोदोषहरः पुंसां रजोदोषहरः स्त्रियाः ॥१०७॥
पुंसामपत्यजनको वंध्यानां गर्भदस्तथा ॥
रास्नादिक्काथसंयुक्तो विविधं हंति मारुतम् ॥१०८॥
काकोल्यादिशृतात्पित्तं कफमारग्वधादिना ॥
दार्वीशृतेन मेहांश्च गोमूत्रेण च पांडुताम् ॥१०९॥
मेदोवृद्धिं च मधुना कुष्ठं निंबशृतेन च ॥
छिन्नाकाथेन वातास्रं शोथं मूलकजाद् घृतात् ॥११०॥
पाटलाक्काथसहितो विषं मूषकजं जयेत् ॥
त्रिफलाक्काथसहितो नेत्रार्तिं हंति दारुणाम् ॥
पुनर्नवादिक्काथेन हन्यात्सर्वोदराणि च ॥१११॥

योगराज गुग्गुलुः द्वितीयः ।

चित्रकं पिप्पलीमूलं यवानी कारवी तथा ॥
विडंगान्यजमोदा च जीरकं सुरदारु च ॥११२॥
चव्यैला सैंधवं कुष्ठं रास्ना गोक्षुरधान्यकम् ॥
त्रिफला मुस्तकं व्योषं त्वक्क्षीरं तु यवाग्रजम् ॥११३॥
तालीसपत्रं पत्रं च लवंगं सर्जिका त्रुटी ॥
दंती गुडूची हपुषा वाजिगंधा शतावरी ॥११४॥
प्रत्येकं कर्षमात्रं स्याच्चतुःकर्षमयोरजः ॥
एतानि सुभिषक्पट्टैःसूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥११५॥
यावंत्येतानि चूर्णानि तावन्मात्रो हि गुग्गुलुः ॥
संमर्द्य सर्पिषा गाढं स्निग्धभांडे निधापयेत् ॥११६॥
ततोमात्रां प्रयुंजीत यथेष्टाहारवानपि ॥
योगराज इति ख्यातो योगोयममृतोपमः ॥११७॥

आमवातादिवातादीन्कृमीन्दुष्टव्रणानपि ॥
प्लीहगुल्मोदरानाड्‌योर्नामानि निनाशयेत् ॥११८॥
अग्निं च कुरुते दीप्तं तेजोवृद्धिं बलं तथा ॥
वातरोगान् जयत्याशु संधिमज्जागतानपि ॥११९॥
पादग्रहं क्रोष्टुशीर्षं मन्यास्तंभं गलग्रहम् ॥
बाहुग्रहं पक्षवातं हनुग्रहं च कटिग्रहम् ॥१२०॥
दुष्टशुक्रं च दुष्टार्त्तं गृध्रसीमक्षिनिग्रहम् ॥
कर्णग्रहं कर्णशूलं शिरःशूलं मरुत्कृतम् ॥
रास्नाक्वाथेन हत्येव केवलो वा प्रशस्यते ॥१२१॥

महारास्नादि क्वाथ. शार्ङ्गधरात् ।

रास्ना द्विगुणभागा स्यादेकभागास्तथापरे ॥
धन्वयासबलैरंडदेवदारुसटीवचाः ॥१२२॥
वासको नागरं पथ्या चव्यमुस्तापुनर्नवाः ॥
गुडूचीवृद्धदारश्च शतपुष्पा च गोक्षुरः ॥१२३॥
अश्वगंधा प्रतिविषा कृतमालः शतावरी ॥
कृष्णा सहचरश्चैव धान्यकं बृहतीद्वयम् ॥१२४॥
एभिः कृतं पिबेत्क्वाथं शुंठीचूर्णेन संयुतम् ॥
कृष्णाचूर्णेन वा योगराजगुग्गुलुना सदम् ॥१२५॥
अजमोदादिना वापि तैलेनैरंडजेन वा ॥
सर्वांगकंपे कुब्जत्वे पक्षाघातापबाहुके ॥१२६॥
गृध्रस्यामामवाते च श्लीपदे चापतानके ॥
अंत्रवृद्धौ तथाध्माने जंघाजानुगतेर्दिते ॥१२७॥
शुक्रामये मेढ्ररोगे वंध्यायोन्यामयेषु च ॥
महारास्नादिराख्यातो ब्रह्मणा गर्भकारणम् ॥१२८॥

वातनाशन रसः ।

सूतहाटकवज्राणि ताम्रं लोहं च माक्षिकम् ॥
तालं नीलांजनं तुत्थमब्धिफेनं समांशकम् ॥१२९॥
पंचानां लवणानां च भागमेकं विमर्दयेत् ॥
वज्रीक्षीरैर्दिनैकं तु रुध्वा तं भूधरे पचेत् ॥१३०॥
माषैकमार्द्रकद्रावैर्लेहयेद्वातनाशनम् ॥
पिप्पलीमूलजं क्वाथं सकृष्णमनुपाययेत् ॥
सर्वान्वातविकारांश्च निहंत्याक्षेपकादिकान् ॥१३१॥

स्वच्छंदभैरव रसः ।

शुद्धं सूतं मृतं लोहं ताप्यं गंधकतालकम् ॥
पथ्याग्निमंथनिर्गुंडी त्र्यूषणं टंकणं क्षिपेत् ॥१३२॥
तुल्यांशं मर्दयेत्खल्वे दिनं निर्गुंडिकाद्रवैः ॥
मुंडीद्रवैर्दिनैकं तु द्विगुंजो वटकीकृतः ॥१३३॥
भक्षयेद्वातरोगार्तो नाम्ना स्वच्छंदभैरवः ॥
रास्नामृतादेवदारुशुंठीवातारिजं शृतम् ॥
सगुग्गुलुं पिबेत्कोष्णमनुपानं सुखावहम् ॥१३४॥

इति श्री योगतरंगिणी संहितायां वातरोग चिकित्सा नाम
एकचत्वारिंशस्तरंगः ॥ ४१ ॥
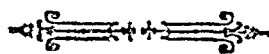
॥ अथ द्वाचत्वारिंशस्तरंगः ॥ ४२ ॥

॥ अथ वातरक्ताधिकारः ॥

वाहनाभिरतस्यासृग्दूपयित्वानिलो बली ॥
स्पर्शाज्ञत्वं मंडलानि स्फोटकानि विरूचिकाम् ॥ १ ॥
करोत्यंगुलिवक्रत्वं वातरक्तमिदं स्मृतम् ॥
कालातिक्रांतमेतत्तु कुष्ठं भवति दुर्धरम् ॥ २ ॥
वातशोणितिनो रक्तं स्निग्धस्य बहुशो हरेत् ॥
अल्पाल्पं रक्षता रक्तं यथादोषं यथानलम् ॥ ३ ॥
वासागुडूचीचतुरंगुलानामेरंडतैलेन पिबेत्कषायम् ॥
क्रमेण सर्वांगजमप्यशेषं जयेदसृग्दानभवं विकारम् ॥ ४ ॥

नवकार्षिक क्वाथ ।

त्रिफलानिंबमंजिष्ठावचाकटुकरोहिणी ॥
वत्सादनीदारुनिशाकषायं नवकार्षिकम् ॥ ५ ॥
वातरक्तं तथा कुष्ठं पामानं रक्तमंडलम् ॥
कृच्छ्रं कापालिकं कुष्ठं पानादेवापकर्षति ॥ ६ ॥

किशोर गुग्गुलु ।

वनमहिषलोचनोदर सन्निभवर्णस्य गुग्गुलोः प्रस्थम् ॥
प्रक्षिप्य तोयराशौ त्रिफलां च यथोक्तपरिमाणाम् ॥ ७ ॥
द्वात्रिंशच्छिन्नरुहापलानि देयानि यत्नतो विबुधैः ॥
मृद्वग्निनाथ विपचेद्दर्व्या संघट्टयेन्मुहुर्यावत् ॥ ८ ॥
अर्द्धक्वथितं तोयं जातं ज्वलनस्य संपर्कात् ॥
अवतार्य वस्त्रपूतं पुनरपि संपाचयेदयःपात्रे ॥ ९ ॥
सांद्रीभूते तस्मिन्नवतार्य्य हिमोपलप्रख्ये ॥
त्रिफलाचूर्णार्द्धपलं त्रिकटोश्चूर्णं षडक्षपरिमाणम् ॥ १० ॥

कृमिरिपुचूर्णार्धपलं कर्षं कर्षं त्रिवृद्दंत्योः ॥
पलमेकं तु गुडूच्या दत्वा संचूर्ण्य यत्नेन ॥११॥
उपभुंज्यात्त्वनुपानं यूषं तोयं सुगंधि सलिलं च ॥
इच्छाहारविहारी भेषजमुपभुंज्य सर्वकालमिदं ॥१२॥
तनुरोगिवातशोणितमेकजमथ द्वंद्वजं च सुचिरोत्थम् ॥
जयति शृतं परिशुष्कं स्फुटितमाजानुगं चापि ॥१३॥
व्रणकासगुल्मकुष्ठश्वयथूदरपांडुमेहांश्च ॥
मंदाग्निं च चिरस्थं प्रमेहपिडिकाश्च नाशयत्याशु ॥१४॥
सततं निषेव्यमाणः कालवशाद्धंति सर्वगदान् ॥
अभिभूय जरादोषं वितरति कैशोरकं रूपम् ॥१५॥

महामंजिष्ठादि क्वाथः शार्ङ्गधरात् ।

मंजिष्ठामुस्तकुटजगुडूची कुष्ठनागरैः
भार्गीक्षुद्रावचानिंबनिशाद्वयफलत्रिकैः ॥
पटोल कटुकामूर्वाविडंगाऽसनचित्रकैः
शतावरीत्रायमाणाकृष्णेंद्रयव वासकैः ॥१६॥
भृंगराजमहादारुपाठाखदिरचंदनैः ॥
त्रिवृद्वरुणकैरातबाकुचीकृतमालकैः ॥१७॥
शाखोटकमहानिंबकरंजातिविषांबुभिः ॥
इंद्रवारुणिकानंतासारिवापर्पटैः समैः ॥१८॥
एभिः कृतं पिबेत्क्वाथं कणागुग्गुलुसंयुतम् ॥
अष्टादशसु कुष्ठेषु वातरक्तेऽर्दिते तथा ॥१९॥
उपदंशे श्लीपदे च प्रसुप्तौ पक्षघातके ॥
मेदोदोषे नेत्ररोगे महामंजिष्ठादिकः शुभः ॥२०॥

द्विगुंजो लिह्यते क्षौद्रैः सुसिमंडलकुष्ठनुत् ॥
वाकुची देवकाष्ठं च कर्षमात्रं सुचूर्णयेत् ॥
लिहेदेरंडतैलाक्तमनुपानं सुखावहम् ॥३८॥

वातरक्तारि तैलं ।

कनकभुजगवल्ली मालतीपत्रमूर्वा-
रसगदकुनटीभिर्मर्दितस्तैलयोगात् ॥
अपहरति रसेंद्रः कुष्ठकंडूविसर्प-
स्फुटितचरणरंध्रात् श्यामलत्वं त्वचायाः ॥३९॥
अस्य तैलस्य लेपेन वातरक्तं प्रशाम्यति ॥
दिवास्वप्नाग्निसंतापं व्यायामं मैथुनं तथा ॥
कटूष्णगुर्वभिष्यंदिलवणाम्लानि वर्जयेत् ॥४०॥
रसेन्द्र चिंतामणि. ॥

इति श्री योगतरंगिणो संहितायां वातरक्त चिकित्सा नाम द्वाचत्वारिंशस्तरंगः ॥ ४२ ॥

॥ अथ त्रिचत्वारिंशस्तरंग ॥ ४३ ॥

॥ अथ आमवाताधिकारः ॥

वृद्धेन वायुना नुन्न आमो यातिकफाशयम् ॥
लभ्येत स च नाडीभिरामवातोऽयमीरितः ॥ १ ॥
कट्यूरूजानुजंघासु पृथुशोथरुजाकरः ॥
लंघनं स्वेदनं तिक्तदीपनानि कटूनि च ॥ २ ॥
विरेचनं स्नेहपानं बस्तयश्चाममारुते ॥
रूक्षः स्वेदो विधातव्यो वालुकापुटकैस्तथा ॥ ३ ॥

उपनाहाश्च कर्तव्यास्तेपि स्नेहविवर्जिताः ॥

शठ्यादि काथः ।

सटी शुंठ्यभया चोग्रा देवदारु विषामृता ॥ ४ ॥
कषायमामवातस्य पाचनं रूक्षभोजनम् ॥

चित्रकादि चूर्णं ।

चित्रकं कटुका पाठा कलिंगातिविषामृता ॥ ५ ॥
देवदारु वचा मुस्तं नागरातिविषाभया ॥
पिबेदुष्णांबुना नित्यमामवातस्य भेषजम् ॥ ६ ॥

रास्ना पंचकः ।

रास्नां गुडूचीमेरंडदेवदारु महौषधम् ॥
पिबेत्सर्वांगगे वाते सामे संध्यस्थिमज्जगे ॥ ७ ॥

रास्ना सप्तकं ।

रास्नामृतारग्वधदेवदारु
त्रिकंटकैरंडपुनर्नवानाम् ॥
क्वाथं पिबेन्नागर चूर्णमिश्रं
जंघोरुपृष्ठत्रिकपार्श्वशूली ॥ ८ ॥

सिंहनाद गुग्गुलुः ।

गुडूच्यग्नित्रिवृद्दंतीवषासूरणमाणकम् ॥
प्रत्येकं त्रैफलं प्रस्थं सार्धद्रोणजले पचेत् ॥
पादशेषं ततः पूतं पुनरग्नावधिश्रयेत् ॥ ९ ॥
त्रिकटु त्रिफला मुस्तं विडंगं सुरदारु च ॥१०॥
पारदं गंधकं चैव प्रत्येकं शुक्तिसंमितम् ॥
पिंडितं गुग्गुलोः प्रस्थं कटुतैलं पलाष्टकम् ॥११॥
शुद्धं सहस्रं प्रत्यग्रं जैपालस्य फलं बुधः ॥
त्वगंकुरविनिर्मुक्तं क्षिप्त्वे संचूर्ण्य नि[illegible]म् ॥१२॥

ततो माषद्वयं जग्ध्वा पिबेत्तप्तजलादिकम् ॥
अग्निं च कुरुते दीप्तं प्रलयानलसंनिभम् ॥१३॥
धातुवृद्धिं वयोवृद्धिं पलं च विपुलं तथा ॥
आमवातं शिरोवातं कटिवातं भगंदरम् ॥१४॥
जानुजंघाश्रितं वात सकटिग्रहमेव च ॥
अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रं च साध्मानं तिमिरं तथा ॥
सिंहनाद इति ख्यातो रोगवारणदर्पहा ॥१५॥

महा रसोनपिंड ।

तुलाश्चुण्णरसोनस्य तदर्द्धमसितास्तिलाः ॥
पात्रे तु गन्धतकस्य पिष्टद्रव्यैः समं क्षिपेत् ॥१६॥
त्र्यूषणं धान्यकं चव्यं चित्रकं गजपिप्पली ॥
अजमोदा त्वगेला च ग्रंथिकं च पलांशकम् ॥१७॥
शर्करायाः पलान्यष्टौ पंचाजाज्याः पलानि च ॥
कृष्णाजाज्याश्च चत्वारि राजिकायास्तथैव च ॥१८॥
पलप्रमाणं दातव्यं हिंगु लोणानि पंच च ॥
आर्द्रकस्य च चत्वारि सर्पिषोष्टौ पलानि च ॥१९॥
तिलतैलस्य तावति सुक्तस्यापि च विंशतिः ॥
सिद्धार्थकस्य चत्वारि द्विगुणं मधुनस्तथा ॥२०॥
एकीकृत्य दृढे भांडे धान्यमध्ये विनिक्षिपेत् ॥
द्वादशाहात्समुद्धृत्य प्रातः खादेद्यथाबलम् ॥२१॥
सुरां सौवीरकं चापि मधु वापि पिबेत्ततः ॥
जीर्णे यथेप्सित भोज्य दधिपिष्टकवर्जितम् ॥२२॥
एष मासोपयोगेन सर्वव्याधिहरो भवेत् ॥
अशीतिर्वातरोगाश्च चत्वारिंशच्च पित्तजाः ॥२३॥
विंशतिः श्लेष्मजास्तद्वन्नश्यंते चास्य सेवनात् ॥
योनिशूल प्रमेहांश्च कुष्ठोदरभगंदरान् ॥२४॥

अर्शोगुल्मक्षयांश्चापि जयेद् बलरुचिप्रदः ॥
महारास्नादिना जग्धो योगराजो हि गुग्गुलुः ॥
आमवातं कटीपृष्ठजानुजंघग्रहं जयेत् ॥२५॥

अत्रापि वातनाशना रसा योज्याः ॥

दधिमत्स्यगुडक्षीरपोतकीमाषपिष्टकम् ॥
वर्जयेदामवातार्तो मांसमानूपजं च यत् ॥२६॥
अभिष्यंदकरा ये च ये चान्ये गुरुपिच्छलाः ॥
वर्जनीयाः प्रयत्नेन आमवातार्दितैर्नरैः ॥२७॥
हितं यूषं च कौलत्थं कालायहरिमंथयोः ॥
यवान्नं कोरदूषान्नं पुराणं शालिषष्टिकम् ॥२८॥
लावकानां तथा मांसं हितं तक्रेण संस्कृतम् ॥
पटोलं गोक्षुरं चैव वरुणं कारवेल्लकम् ॥
वास्तुकं शाकशालीर्णं शाकं पौनर्नवं हितम् ॥२९॥

इति श्रीयोगतरंगिणी संहितायां आमवातचिकित्सा नाम
त्रिचत्वारिंशस्तरंगः ॥ ४३ ॥
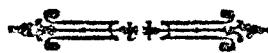
शिवा वचा हिंगु विषा कालिंगं रुचकं समम् ॥
कर्षमुष्णांबुना पेयमनुपान हि शूलिभिः ॥२१॥

शूल गज केसरी रस ।

क्षारं कपर्दाद्विपसैंधवौ च
व्योषं च संमर्द्य भुजंगवल्ल्याः ॥
रसेन गुंजाप्रमितः प्रचंडः
समीरशूले गजकेसरी वै ॥२२॥

अग्निमुख रस ।

रसबलिगगनार्कं वेतसाम्लं विषं स्या-
त्समिति पृथगेतद्भावयेद् घस्रमेतैः ॥
कनकभुजगवल्लीकंटकारीजयाद्भिः
कमलशमिक वासामुष्टिराष्ट्र्यंबुपूरैः ॥२३॥
अरुणसदृशशाकैर्मातुलान्याथयोज्यः
पटुगणरसवत्या भावयेदार्द्रकाद्भिः ॥
दहनवदनसंज्ञो वल्लमात्रो निहंति
प्रबलपवनशूलं तद्विकारानशेषान् ॥२४॥
व्यायाम मैथुनं मद्यं लवणं कटुकानि च ॥
वेगरोधं शुचं क्रोधं वर्जयेच्छूलवान्नरः ॥२५॥

इति श्रीयोगतरंगिणी संहितायां शूल चिकित्सा नाम
चतुश्चत्वारिंशस्तरंगः ॥ ४४ ॥

॥ अथ पंचचत्वारिंशस्तरंगः ॥ ४५ ॥

॥ अथ परिणाम शूलाधिकारः ॥

अन्ने जीर्यति यच्छूलं तदेव परिणामजम् ॥
साऽऽध्मानाऽऽटोपविण्मूत्रबंधमष्टविधं तथा ॥ १ ॥
लंघनं प्रथमं कुर्याद्वमनं सविरेचनम् ॥
बस्तिकर्मापरं चात्र पक्तिशूले प्रशस्यते ॥ २ ॥
नागरतिलगुडकल्कं पयसा संसाध्य यः पुमानद्यात् ॥
उग्रं परिणतिशूलं सप्ताहान्नाशमायाति ॥ ३ ॥
शंबूकजं भस्म पीतं जलेनोष्णेन तत्क्षणात् ॥
पक्तिजं विनिहंत्येव शूलं विष्णुरिवासुरान् ॥ ४ ॥

क्षीरमंडूरः ।

लोहकिट्टपलान्यष्टौ गोमूत्राद्वीढके पचेत् ॥
क्षीरप्रस्थे च तत्सिद्धं पक्तिशूलहरं परम् ॥ ५ ॥

कृष्णादि योगः ।

कृष्णाभयालोहचूर्णं लिह्यात्समधुशर्करम् ॥
परिणामभवं शूलं सद्यो हंति न संशयः ॥ ६ ॥

तारामण्डूरः ।

विडंगं चित्रकं चव्यं त्रिफला त्र्यूषणानि च ॥
नवभागानि चैतानि लोहकिट्टसमानि च ॥ ७ ॥
गोमूत्रं द्विगुणं दत्वा मूत्राद् द्विगुणको गुडः ॥
शनैर्मृद्वग्निना पक्त्वा सुसिद्धं पिंडतां गतम् ॥ ८ ॥
स्निग्धभांडे विनिक्षिप्य भक्षयेत्कोलमात्रया ॥
प्राङ्मध्यांते क्रमेणैव भोजनस्य प्रयोजितः ॥ ९ ॥

योगोऽयं शमयत्याशु पक्तिशूलं सुदारुणम् ॥
कामलां पांडुरोगं च शोफ मेदोनिलार्शसी ॥
शूलार्तानां कृपाहेतोस्तारया प्रकटीकृतः ॥१०॥

शूल दावानल रसः ।

शुद्धं सूतं विषं गंधं पलांशं मर्दयेद् दृढम् ॥
मरिचं पिप्पली शुंठी हिंगु चैव द्वयंद्वयम् ॥११॥
पलाष्टकं पट्वनां च चिंचाक्षारं पलाष्टकम् ॥
स्वसंचारं शंखभस्म जंबीराम्लेन सेचयेत् ॥१२॥
पलाष्टकं च संयोज्यं तत्सर्वं निंबुकद्रवैः ॥
दिनं मर्द्यं कोलमात्रं भक्षयेत्सर्वशूलनुत् ॥१३॥
अजीर्णोदरमंदाग्निमसाध्यमपि नाशयेत् ॥
शूलदावानलाख्योयं रसो जीर्णशिरोग्रहान् ॥१४॥

सारसंग्रहात् ॥

इति श्री योगतरंगिणी संहितायां परिणामशूल चिकित्सा नाम पंचचत्वारिंशस्तरंगः ॥ ४५ ॥
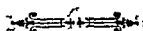
॥ अथ षट्चत्वारिंशस्तरंगः ॥ ४६ ॥

॥ अथ उदावर्ताधिकारः ॥

वातविण्मूत्रजृंभाश्रुक्षवोद्गारवमींद्रियैः ॥
क्षुत्तृष्णोच्छ्वासनिद्राणां धृत्योदावर्तसंभवः ॥ १ ॥

हरीतक्यादि चूर्ण ।

हरीतकी यवक्षारपीलुनी त्रिवृता तथा ॥
साज्यं चूर्णं पिबेदेषामुदावर्तनिवर्तकम् ॥ २ ॥

हिंगुपंचकं चूर्ण ।

हिंगु कुष्ठं वचा स्वर्जि विडं चेति द्विरुत्तरम् ॥
पीतं मद्येन तच्चूर्णमुदावर्तहरं परम् ॥ ३ ॥

मदनादि फलवर्तिः ।

मदनं पिप्पली कुष्ठं वचा गौराश्च सर्षपाः ॥
गुडक्षारसमायुक्ता फलवर्तिः प्रशस्यते ॥ ४ ॥

नाराच चूर्ण ।

खंडपलं त्रिवृतासममुपकुल्याकर्षचूर्णितं श्लक्ष्णम् ॥
प्राग्भोजनस्य समधु बिडालपदकं लिहेत्प्राज्ञः ॥ ५ ॥
एतद् गाढपुरीषे पित्ते च कफे च विनियोज्यम् ॥
स्वादुर्नृपयोग्योयं चूर्णो नाराचको नाम्ना ॥ ६ ॥
सुरां सौवर्चलवतीं मूत्रे त्वभिहते पिबेत् ॥
पंचमूलीशृतं क्षीरं द्राक्षारसमथापि वा ॥ ७ ॥
मूत्रकृच्छ्राश्मरीबंधे प्रयुंजीत भिषग्वरः ॥
स्नेहस्वेदैरुदावर्तं जृंभाजं समुपाचरेत् ॥ ८ ॥
अश्रुमोक्षोऽश्रुजे कार्यः स्निग्धस्वेदेन यत्नतः ॥ ९ ॥

क्षवजे सूत्रवर्त्या च घ्राणपथाऽऽनयेत्क्षवम् ॥
उद्गारजे क्रमश्चात्र स्नैहिकं धूपमाचरेत् ॥१०॥
छर्दिघाते यथादोषं नालं स्नेहादिभिर्जयेत् ॥
शुक्रोदावर्तिनं वैद्यो रमयेत्सह कान्तया ॥११॥
राढधूमविडव्योषगुडमूत्रैर्विपाचिता ॥
गुदेंगुष्टसमा वर्तिर्विवमानाहशूलनुत् ॥१२॥

आमाशये शूलमथो गुरुत्वं
हृल्लास उद्गारविघातनं च ॥
स्तंभः कटीपृष्ठपुरीषमूत्रे
शूलोथमूर्छा शकृतो वमिश्च ॥
श्वासश्च पक्वाशयजे भवंति
तथालसोक्तानि च लक्षणानि ॥१३॥

तृष्णार्दित परिक्लिष्टं क्षीणं शूलैरुपद्रुतम् ॥
शकृद्वमंत मतिमानुदावर्तिनमुत्सृजेत् ॥१४॥

अत्र क्रव्यादो रसो देयः ॥

इति श्री योगतरंगिणी संहितायां उदावर्त चिकित्सा नाम
षट्चत्वारिंशस्तरंगः ॥ ४६ ॥

॥ अथ सप्तचत्वारिंशस्तरंगः ॥ ४७ ॥

॥ अथ गुल्माधिकारः ॥

हृद्बस्त्योरंतरे ग्रंथिर्जायते यश्चलाचलः ॥
नाभेरधस्तात्संजातः संचारी यदि वाऽचलः ॥ १ ॥
स गुल्मः पंचधा दोषैः सर्वैश्चासृग्भवोऽपि सः ॥
लंघनं दीपनं स्निग्धमुष्णं वातानुलोमनम् ॥
बृंहणं च भवेदन्नं तद्धितं सर्वगुल्मिनाम् ॥ २ ॥
सर्जिकाकुष्ठसहितः क्षारः केतकिजोऽपि वा ॥
पीतस्तैलेन शमयेद् गुल्मं पवनसंभवम् ॥ ३ ॥
सुखोष्णो जांगलरसः सुस्निग्धो व्यक्तसैंधवः ॥
कटुत्रिकसमायुक्तो हितः पानेषु गुल्मिनः ॥ ४ ॥
काकोल्यादिसुसिद्धेन सर्पिषा पित्तगुल्मकम् ॥
जयेच्च शीतलैरेवोपचारैः पित्तनाशनैः ॥ ५ ॥

मिश्रकः स्नेहः ।

त्रिफला त्रिवृता दंती दशमूलं पलोन्मितम् ॥
जलेचतुर्गुणे पक्त्वा चतुर्भागस्थिते रसे ॥ ६ ॥
सर्पिरैरंडजं तैलं क्षीरं चैकत्र साधयेत् ॥
संसिद्धो मिश्रकः स्नेहः सक्षौद्रः कफगुल्मनुत् ॥ ७ ॥
कफवातविकारेषु कुष्ठप्लीहोदरेषु च ॥
प्रयोज्यो मिश्रकस्नेहो योनिशूलेषु चाधिकम् ॥ ८ ॥
क्षारद्वयानलव्योषनीली लवणपंचकम् ॥
चूर्णितं सर्पिषा पेयं सर्वगुल्मोदरापहम् ॥ ९ ॥
तिलक्वाथो गुडव्योषहिंगुभार्गीयुतो भवेत् ॥
पीतो रक्तभवे गुल्मे नष्टे पुष्पे च योषिताम् ॥१०॥

सक्षारत्र्यूषणं मद्यं प्रपिबेदस्त्रगुल्मनुत् ॥
पलाशक्षारतोयेन सिद्धं सर्पिः पिबेच्च सा ॥११॥

नादेयी क्षार.।

नादेयीकुटजाऽर्कशिग्रुबृहती
स्नुग्बिल्वभल्लातकी ॥
व्याघ्री किंशुकपारिभद्रकुटजाऽ-
पामार्गनीपाऽग्निकान् ॥१२॥

वासामुष्ककपाटलान् सलवणा-
न्दग्ध्वा रसं पाचितान् ॥
हिंग्वादिप्रतिवापमेतदुदितं
गुल्मोदराष्ठीलिषु ॥१३॥

वज्रक्षारः।

क्षीरं वज्रतरूद्भवं दशपलं तावत्पयोऽप्यर्कजं
प्रत्येकं पलपंचकं च लवणं क्षारं च पंचात्मकम् ॥
विशल्यार्कदलैर्युतं पवितरैर्भिन्नैश्चतुर्भिः पलै-
र्मृद्भांडे गुरुमार्गतो गजपुटे वह्नौ विपक्वीकृतम् ॥१४॥

संचूर्ण्याथ कटुत्रयं त्रिफलमप्येक पल रामठं
सर्वं वस्त्रपुनीतमेतदमले पात्रे सुखं स्थापयेत् ॥
वज्रक्षारमिदं निहंति सकलान्गुल्मानुदग्रान् नृणां
पीतं तक्रयुतं प्रभातसमये कर्षप्रमाणं क्रमात् ॥१५॥

मंदाग्निं सविसूचिकामरुचितामापांडुतां क्षीणतां
श्वासं कासमजीर्णशैल्यपवनव्याधीन्बलासोद्भवान् ॥
वज्रक्षारमिदं निवार्य भिषजां कीर्तिं विधत्तेतरां
मांसं द्रावयति स्फुटं घटिकयोर्द्वन्द्वे किमन्नं पुनः ॥१६॥

हिंग्वाद्यं चूर्णं । आश्विन संहिता ।

हिंगुग्रंथिकधान्यजीरकवचाचव्याग्निपाठासटी
वृक्षाम्लं लवणत्रयं त्रिकटुकं क्षारद्वयं दाडिमम् ॥
पथ्यापौष्करवेतसाम्लहपुषाऽजाज्यस्तदेभिः कृतं
चूर्णं भावितमेतदार्द्रकरसे स्याद्बीजपूरस्य च ॥१७॥
आध्मानग्रहणीविकारगुदजान्गुल्मानुदावर्तकान्
प्रत्याध्मानगुदोदराश्मरियुतांस्तूणीद्वयारोचकान् ॥
ऊरुस्तंभमतिभ्रमं च मनसो बाधिर्यमष्ठीलिकां
प्रत्यष्ठीलिकिकामथापहरते प्राक्पीतमुष्णाबुना ॥१८॥
हृत्कुक्षिवंक्षणकटीजठरांतरेषु-
बस्तिस्तनांसफलकेषु च पार्श्वयोश्च ॥
शूलानि नाशयति वातबलासजानि
हिंग्वादि मांद्यमिदमाश्विनसंहितायाम् ॥१९॥
वल्लूरं मूलकं मत्स्यान् शुष्कशाकानि वैदलम् ॥
न खादेद्वास्तुकं गुल्मी मधुराणि फलानि च ॥२०॥
विश्वहिंगुविडैः सार्द्धं क्रव्यादो भक्षितो रसः ॥
गुल्मानशेषान् प्लीहांश्च विद्रधीनपि नाशयेत् ॥२१॥
शंखद्रावो जयत्याशु पथ्यासैंधवसंयुतः ॥
दुःसाध्यानपि गुल्मांश्च पृथुलोपद्रवोत्कटान् ॥२२॥

इतिश्री योगतरंगिणी संहितायां गुल्मचिकित्सा नाम
सप्तचत्वारिंशस्तरंगः ॥ ४७ ॥

॥ अथ अष्टचत्वारिंशस्तरंगः ॥ ४८ ॥

॥ अथ हृदयरोगाधिकारः ॥

शोषयित्वा रसं दोषा विगुणा हृदयंगताः ॥
हृदि बाधां प्रकुर्वंति हृद्रोग तं प्रचक्षते ॥ १ ॥

घृतेन दुग्धेन गुडांभसा वा
पिबंति चूर्णं ककुभत्वचो ये ॥
हृद्रोगजीर्णज्वररक्तपित्तं हत्वा
भवेयुश्चिरजीविनस्ते ॥ २ ॥

हिंगूग्रगंधाविडविश्वकृष्णा
कुष्ठाभयाचित्रकयावशूकम् ॥
पिबेच्च सौवर्चलपौष्कराढ्यं
यवांभसा शूलहृदामयघ्नम् ॥ ३ ॥

कृमिजे च पिबेन्मूत्रं विडंगामयसंयुतम् ॥
हृदि स्थिताः पतत्येव मध्यस्थाः कृमयो नृणाम् ॥ ४ ॥

बाल्हीकविश्वदहनामययावशूक-
पथ्यावचाविडकणारुचकैर्निहन्यात् ॥
सूतः सपुष्करजटो यववारिपीतो
हृद्रोगमग्निविकलत्वमतिप्रवृद्धम् ॥ ५ ॥

इतिश्री योगतरंगिणी संहितायां हृद्रोगचिकित्सानाम
अष्टचत्वारिंशस्तरंगः ॥ ४८ ॥

॥ अथ एकोनपचाशस्तरंगः ॥ ४९ ॥

॥ अथ मूत्रकृच्छ्राधिकारः ॥

पृथक्समस्तैस्तैः शुक्रविड्रोधादभिघाततः ॥
अश्मर्याश्चाछयेति स्यान्मूत्रकृच्छ्ररुजाकरः ॥
मूत्रकृच्छ्रः स यः कृच्छ्रान्मूत्रयेद् बस्तिरोधकृत् ॥ १ ॥

अभ्यंजनस्नेहनिरूहबस्ति
स्वेदोपनाहोत्तरबस्तिसेकान् ॥
स्थिरादिभिर्वातहरैश्च सिद्धान्
दद्याद्रसांश्चानिलमूत्रकृच्छ्रे ॥ २ ॥

अमृता नागरं धात्री वाजिगंधा त्रिकंटकं ॥
प्रपिबेद् वातरोगार्तः शूलवान्मूत्रकृच्छ्रवान् ॥ ३ ॥

सेकावगाहाः शिशिराः प्रदेहाः
श्रेष्ठो विधिर्बस्तिपयोविकाराः ॥
द्राक्षाविदारीक्षुरसैर्घृतं च
कृच्छ्रेषु पित्तप्रभवेषु कार्यम् ॥ ४ ॥

कुशः काशः शरो दर्भ इक्षुश्चेति तृणोद्भवम् ॥
पित्तकृच्छ्रहरं पंचमूलं बस्तिविशोधनम् ॥ ५ ॥

एतत्सिद्धं पयः पीतं मेढ्रगं हंति शोणितम् ॥
मूत्रेण सुरया वापि कदलीस्वरसेन वा ॥ ६ ॥

कफकृच्छ्रविनाशाय सूक्ष्मां पिष्ट्वा त्रुटीं पिबेत् ॥
यवक्षारसमायुक्तं पिबेत्तक्रं प्रकामतः ॥ ७ ॥

मूत्रकृच्छ्रविनाशाय तथैवाश्मरिनाशनम् ॥
तथाभिघातजे कुर्यात्सद्योव्रणचिकित्सितम् ॥
केषं शुक्रविबंधोत्थे शिलाजतु समाक्षिकम् ॥ ८ ॥

एलाश्मभेदकशिलाजतुपिप्पलीनां
चूर्णानि तंडुलजलैर्लुलितानि पीत्वा ॥
दद्याद् गुडेन सहितान्यवलोडय धीमा-
नासन्नमृत्युरपि जीवति मूत्रकृच्छ्री ॥९॥
निदिग्धिकारसो वापि सक्षौद्रः कृच्छ्रनाशनः ॥
सितातुल्यो यवक्षारः सर्वकृच्छ्रविनाशनः ॥१०॥

महाचंद्रकला रसः ।

प्रत्येकं तोलमादाय सूतं ताम्रं तथाभ्रकम् ॥
द्विगुणं गंधकं चैव कृत्वा कज्जलिकां शुभाम् ॥११॥
मुस्ता दाडिमतोयेन केतकीपुष्पवारिणा ॥
सहदेव्याः कुमार्याश्च पर्पटोशीरयोरपि ॥१२॥
तालमूल्याश्च वर्याश्च भावयित्वा दिनंदिनम् ॥
तिक्तागुडूचिकासत्वं पर्पटोशीरमागधी ॥१३॥
श्रीगंधं सारिवा चैषां समानं चूर्णकं क्षिपेत् ॥
द्राक्षाफलकषायेण सप्तधा परिभावयेत् ॥१४॥
छायाशुष्कं विधायाथ वटी कार्या चणोपमा ॥
महाचंद्रकलानाम्ना रसेंद्रोयं निरूपितः ॥१५॥
अम्लपित्तप्रशमनः प्रदरध्वंसकारकः ॥
अंतर्बाह्यमहादाहविध्वंसनघनात्यये ॥१६॥
ग्रीष्मकाले शरत्काले विशेषेण प्रशस्यते ॥
रक्तमूर्छारक्तपित्ततापज्वरवनानलः ॥१७॥
मूत्रकृच्छ्राणि सर्वाणि प्रमेहानपि दुस्तरान् ॥
हरत्येष रसो नूनं महाचंद्रकलाभिधः ॥१८॥

इतिश्री योगतरंगिणी संहितायां मूत्रकृच्छ्रचिकित्सा नाम
एकोनपंचाशत्तरंगः ॥ ४९ ॥

॥ अथ पञ्चाशस्तरंग ॥ ५० ॥

॥ अथ मूत्राघाताधिकारः ॥

मूत्रनाडीगतैर्दोषैरल्पमल्पं सवेदनम् ॥
यदा प्रवर्तते मूत्रं मूत्राघातः स उच्यते ॥ १ ॥

तद्भेदा वातकुंडलिकादयः ।

पटोलाद्यावशूकाच्च पारिभद्रानिलादपि ॥
क्षारोदकेन मदिरां त्वगेलोषणसंयुताम् ॥ २ ॥
पिबेद् गुडोदकं सम्यक् लिह्यादेतान्पृथक्पृथक् ॥
त्रिफलाकल्कसंयुक्तं लवणं चापि यः पिबेत् ॥ ३ ॥
जले कुंकुमकल्कं वा सक्षौद्रमुषितं निशि ॥ ४ ॥
स्त्रीणामतिप्रसंगेन शोणितं यस्य सिच्यते ॥
मैथुनोपरमस्तस्य बृंहणीयो विधिर्हितः ॥ ५ ॥

चित्रकाद्यं घृतं चरकात् ।

चित्रकं सारिवा चैव बला कालापि सारिवा ॥
द्राक्षाविशालापिप्पल्यस्तथा च त्रिफला भवेत् ॥ ६ ॥
तथैव मधुकं दद्यात्पुष्टान्यामलकानि च ॥
घृताढकं पचेदेतैः कल्कैरक्षसमन्वितैः ॥ ७ ॥
क्षीरद्रोणे जलद्रोणे तत्सिद्धमवतारयेत् ॥
शीतं परिसृतं चैव शर्कराप्रस्थसंयुतम् ॥ ८ ॥
तुगाक्षीर्या च तत्सर्वं मतिमान्परिमिश्रयेत् ॥
ततो हितं पिबेत्काले यथादोषं यथाबलम् ॥ ९ ॥
वातरेताः पित्तरेताः श्लेष्मरेताश्च ये नराः ॥
रक्तरेता ग्रंथिरेताः पिबेदिच्छन्नरोगताम् ॥ १० ॥

सर्पिरेतत्प्रयुंजीत स्त्री गर्भं लभतेऽचिरात् ॥
असृग्दोषे योनिदोषे मूत्रदोषे तथैव च ॥
प्रयोक्तव्यमिदं सर्पिश्चित्रकाद्यं सदा बुधैः ॥११॥

अत्रापि महाचंद्रकला रसः प्रशस्यते ।

इतिश्री योगतरंगिणी संहितायां मूत्राघातचिकित्सा नाम पंचाशस्तरंगः ॥ ५० ॥

॥ अथ एकपञ्चाशस्तरंगः ॥ ५१ ॥

॥ अथ अश्मरी अधिकारः ॥

निरुध्य मूत्रमार्गं या यातनां जनयेद् भृशम् ॥
कटीवस्तिप्रदेशेषु साश्मरीति निगद्यते ॥ १ ॥

विशोषयेद्वस्तिगतं सशुक्रं
मूत्रं सपित्तं पवनः कफं वा ॥
यदा तदाश्मर्युपजायते तु
क्रमेण पित्तेष्विव रोचना गोः ॥ २ ॥

इति रुग्विनिश्चयात् ॥

वरुणस्य त्वचं श्रेष्ठां शुंठीगोक्षुरसंयुताम् ॥
यवक्षारगुडं दत्वा क्वाथयित्वा तु तां पिबेत् ॥ ३ ॥

अथ वीरतर्वादिगणः सुश्रुतात् ।

वीरतरुसहचरद्वयदर्भवृक्षादनीगुंद्रानलकुशकाशाश्मिभेदमोरटावसुकवसिरभल्लूककुरंटकेंदीवरकपोतवकाश्वदंष्ट्राः चेति ॥

वीरतर्वादिरित्येष गणो वातविनाशनः ॥
अश्मरीशर्कराकृच्छ्रमूत्राघातरुजापहः ॥ ४ ॥

वीरतर्वादिकं क्राथं तृणपंचसमन्वितम् ॥
भिनत्ति पित्तसंभूतामश्मरीं क्षिप्रमेव तु ॥ ५ ॥

वरुणत्वक्छिलाभेदशुंठीगोक्षुरकैः कृतः ॥
कषायः क्षारसंयुक्तः शर्करां प्रभिनत्त्यलम् ॥ ६ ॥

क्षारो निपीतस्तिलनालजातः
समाक्षिकः क्षीरयुतस्त्रिरात्रात् ॥
हंत्यश्मरीं सीधुविमिश्रितं वा
निपीयमानं रुचकं प्रयत्नात् ॥ ७ ॥

गोपाल कर्कटी योगः राजमार्तंडात् ।

गोपालकर्कटीमूलं पिष्टं पर्युषितांभसा ॥
पीयमानं त्रिरात्रेण पातयेच्चाश्मरीं हठात् ॥ ८ ॥

एलादिक्वाथः योगशतात् ।

एलोपकुल्यामधुकाश्मभेदकौंतीश्वदंष्ट्रावृषकोरुबूकैः ॥
शृतं पिबेदश्मजतु प्रगाढं सशर्करे साश्मरिमूत्रकृच्छ्रे ॥९॥

अथ त्रिविक्रमो रसः रसरत्नप्रदीपात् ।

निर्गुंडिकाद्भिर्बलिसूततान्रं
विमर्द्य गोलं सिकताख्ययंत्रे ॥
पक्त्वास्य वल्लः किल मातुलुंगी-
जलैर्निहंत्यश्मरिरोगमुग्रम् ॥१०॥

अत्रापि महाचंद्रकलैव रसो योज्यः ॥

इति श्री योगतरंगिणी संहितायां अश्मरीचिकित्सा नाम एकपंचाशस्तरंगः ॥ ५१ ॥

॥ अथ द्विपंचाशत्तरंगः ॥५२॥

॥ अथ प्रमेहाधिकारः ॥

दशषट् चापि चत्वारः कफपित्तसमीरजाः ॥
साध्या याप्या असाध्यास्ते प्रमेहाः क्रमशो नृणाम् ॥१॥

श्यामाककोद्रवोद्दालगोधूमचणकाढकी ॥
कुलत्थाश्च हिता भोज्ये मेहिनां देहिनां सदा ॥ २ ॥

सौवीरकं सुरां शुक्तं तैलं क्षीरं गुडं घृतम् ॥
अम्लेक्षुजरसान् पिष्टं मेहे ह्येतानि वर्ज्जयेत् ॥ ३ ॥

फलत्रिकं दारुनिशां विशालां
मुस्तां च निःक्वाथ्य निशां सकल्कां ॥
पिबेत्कषायं मधुसंप्रयुक्त,
सर्वप्रमेहेषु समुत्थितेषु ॥ ४ ॥

न्यग्रोधादि चूर्ण ।

न्यग्रोधोडुंबराश्वत्थस्योनाकारग्वधासनम् ॥
आम्रं कपित्थं जंबूं च प्रियालं ककुभं धवम् ॥ ५ ॥
मधुकं मधुक लोध्रं वरुण पारिभद्रकम् ॥ ६ ॥
करंजं त्रिफला शक्रं भल्लातकफलानि च ॥
एतानि समभागानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत ॥ ७ ॥
न्यग्रोधाद्यमिदं चूर्ण मधुना सह लेहयेत् ॥
फलत्रयं ॰॰॰श्चानुपिबेत्तेन मूत्रं विशुध्यति ॥ ८ ॥
एतेन विंशतिर्मेहा मूत्रकृच्छाणि यानि च ॥
प्रशमं यांति योगेन पिडिका न च जायते ॥ ९ ॥
शिलाजतु नरः पीत्वा प्रातः क्षीरसितायुतम् ॥
मुच्यते सर्वमेहेभ्यस्त्रिसप्तदिवसैर्नरः ॥१०॥

शराविकाद्याः पिडिकाः शोधयेच्छोथवद्भिषक् ॥
पक्वाश्चिकित्सेद्व्रणवत्संधिमर्मसमुद्भवाः ॥११॥

चन्द्रप्रभा गुटिका ।

वेल्लव्योषफलत्रयत्रिलवणद्विक्षारचव्यानल-
श्यामापिप्पलिमूलमुस्तकशटीमाक्षीकधातुत्वचः ॥
षड्ग्रंथानरदारुवारणकणाभूनिंबदंतीनिशा-
पत्रैलातिविषापिचुप्रमितयो लोहस्य कर्षाष्टकम् ॥१२॥

त्वक्क्षीरी पलिका पुरोर्दशपला-
नष्टौ शिलाजन्मनो ॥
सीनांडघाः कुडवः कृतेति
गुटिका संयोज्य सर्वं भिषक् ॥१३॥
तद्वैकां प्रतिवासरं हि
सघृतक्षौद्रेण लिह्यादिमाम् ॥
तक्रं मस्तु पयो घृतं
मधुरसं पश्चात्पिबेन्मानवः ॥१४॥
अर्शांसि प्रदरं ज्वरं च
विषमं नाडीव्रणानश्मरीं ॥
कृच्छ्रं विद्रधिमग्निमांद्यमुदरं
पांड्वामयं कामलाम् ॥१५॥

यक्ष्माणं सभगंदरं सपिडकागुल्मप्रमेहारुचि ॥
रेतोदोषमुरःक्षतं कफमरुत्पित्तार्तिमुग्रां जयेत् ॥१६॥
वृद्धं संजनयेद्युवानमसमौजस्कं बलं वर्द्धये-
देतस्या न निषिद्धमन्नमखिलं नाध्वागमं मैथुनम् ॥
विख्याता गुटिकेयमर्चिततरा चंद्रप्रभा नामतः
सांद्रानंदकरी तनोति च रुचिं चंद्रेण तुल्यां तनौ ॥१७॥

पूगीपाकः ।

हेमांभोधरचंदनं त्रिकटुकं धात्री प्रियालं कुष्ठ-
मज्जानस्त्रिसुगंधि जीरकयुतं शृंगाटकं वंशजम् ॥
जातीकोशलवंगधान्यकयुतं प्रत्येककर्षद्वयं
पूगस्याष्टपल विचूर्ण्य च पयःप्रस्थत्रये सर्पिषः ॥१८॥
दद्यात् गोः कुडवं सितार्धकतुलां
धात्री वरी द्व्यंजली ॥
मंदाग्नौ विपचेद् भिषक्शुभदिने
सुस्निग्धभांडे क्षिपेत् ॥१९॥
यः खादेद्दिनशः प्रभातसमये मेहांश्च जीर्णज्वरं ॥
पित्तं साम्लमसृक्स्रुतिं गुदहशोर्वक्त्राक्षिनासासु च ॥२०॥
मंदाग्निं च विजित्य पुष्टिमतुलां कुर्याच्च शुक्रप्रदं ॥
पूगं गर्भकर परं गदहरं स्त्रीणामसृग्दोषजित् ॥२१॥

पुन पूगीपाक ।

श्रीखंडं त्रिसुगंधिकेसरकणा शुंठी वरी चांबुदं
शृंगाट जलजं प्रियालबदरीधात्रीजबीजं तुगा ॥
द्राक्षाजीरकधान्यकं ससुमनः पुष्पं च जातीदलं
शुद्धारं दरद पलार्धकमिदं सन्नारिकेराद् गुटी ॥२२॥
पूगं चाष्टपल च सौरभपयः प्रस्थत्रये संपचेत्
पश्चादामलकी वरी जलशरावार्धेन पिष्टीकृतम् ॥
शुष्कीकृत्य कटाहके च सघृते मंदाग्निना चूर्णयुक्
वंगव्योमपलार्द्धकं तु तुलया खंडेन पाकीकृतम् ॥२३॥
भुक्तं प्रातरिदं प्रमेहपवनाध्मानानि शूलानि च ॥
क्षैण्यं दैन्यमसृक्स्रुतिं मुखगुदश्रोत्राक्षिलोमोद्भवान् ॥
हन्याद्रोगजराविषस्त्रिशमनं मंदाग्निजिद् बृंहणं
बल्यं वृद्धिकरं प्रमोदजनकं पूगं न किं सेव्यते ॥२४॥

धन्वंतरि घृतं । चिकित्सा कलिकातः ।

दंतीदारुसठीशिलाहदहनैर्भल्लातकाकीभया-
स्नुग्वर्षाभुकरंजयुग्मवरुणैर्युक्तपंचमूलीयुतैः ॥
इत्येभिर्दशपालिकैः सलमपां द्रोणे पृथक्प्रास्थिकै-
रेभिश्चापि कुलत्थकोलकयवैः पादावशेषीकृते ॥२५॥

असिम्बीपकिरातरोहिषकणाकंपिल्लविश्वौषधै-
र्भार्गीचव्यगजाहपिप्पलियुतैरेभिश्च सिद्धं घृतम् ॥
एतन्मेहहरं क्षयक्षयकरं हिक्कापहं गुल्मजित्
पांडुत्वक्प्रतिघातिहृद्गुदरुजः प्रध्वंसि धन्वंतरेः ॥२६॥

मेघनाद रसः ।

सूतं कांतं गंधतीक्ष्णे ताप्यं व्योषं फलत्रिकम् ॥
शिलाजतु शिलाकोलबीजं रात्रिः कपित्थजम् ॥२७॥

त्रिःसप्तकृत्वो भृंगाद्भिर्भावयेन्निष्कमात्रकः ॥
मेघनादाख्यसूतश्च सर्वमेहान्प्रणाशयेत् ॥२८॥

महानिंबस्य बीजानि पेषयत्तंदुलांबुना ॥
सघृतान्यचिराद्धन्युः पानान्मेहांश्चिरंतनान् ॥२९॥

हरिशंकर रसः ।

सूताभ्रमाल्लजलैः ससाहं भावयेद्रसः ॥
हरिशंकरसंज्ञः स्यान्मुक्तः सर्वप्रमेहजित् ॥३०॥

वंगेश्वर रसः ।

रसस्य भस्मना तुल्यं वंगभस्म प्रकल्पयेत् ॥
अस्य गुंजाद्वयं हंति मेहान्क्षौद्रसमन्वितम् ॥३१॥

प्रमेह कुठारः ।

एलासकर्पूरसिता सुधात्री
जातीफलं गोक्षुरशाल्मलीत्वक् ॥
सूताभ्रवंगायसभस्मसर्व-
मेतत्समानं परिमर्दनीयम् ॥
निष्कार्धमात्रा मधुनावलीह्य
निहंति सर्वामयमेहजातम् ॥३२॥

इति श्री योगतरंगिणी संहितायां प्रमेहचिकित्सा नाम
द्विपञ्चाशस्तरंग. ॥५२॥

॥ अथ त्रिपञ्चाशस्तरंगः ॥५३॥

॥ अथ मेदोधिकारः ॥

अव्यायामदिवास्वप्नश्लेष्मलाहारसेविनः ॥
मधुरान्नरसात्प्रायः स्नेहान्मेदो विवर्धते ॥ १ ॥
मेदो मांसविवृद्धित्वात्स्थूलस्फिगुदरस्तनः ॥
अयथोपचयोत्साहो नरोतिस्थूल उच्यते ॥ २ ॥
प्रातर्मधुयुतं वारि सेवितं स्थौल्यनाशनम् ॥
केवलं वा रजन्यंते पीतं मेदस्विनां हितम् ॥ ३ ॥
सचव्यजीरकव्योषहिंगुसौवर्चलाभयाः ॥
मस्तुना सक्तवः पीता मेदोवृद्धिविनाशनाः ॥ ४ ॥
क्षारं वा तालपत्रस्य हिंगुयुक्तं पिबेन्नरः ॥
मेदोवृद्धिविनाशाय भक्तमण्डसमन्वितम् ॥ ५ ॥
वासादलरसोपेतः शंखचूर्णेन संयुतः ॥
बिल्वपत्ररसो वापि गात्रदौर्गंध्यनाशनः ॥ ६ ॥

इतिश्री योगतरंगिणी संहितायां मेद चिकित्सा नाम
त्रिपचाशस्तरंगः ॥ ५३ ॥

॥ अथ चतुःपञ्चाशस्तरंगः ॥ ५४ ॥

॥ अथ उदराधिकारः ॥

रुध्वा स्वेदांबुवाहीनि दोषाः स्रोतांसि संचिताः ॥
प्राणाग्न्यपानान्संदूष्य जनयंत्युदरं नृणाम् ॥ १ ॥

रक्तशालिर्यवा मुद्गा जांगलाश्च रसा हिताः ॥
विरेकास्थापनं शस्तं सर्वेषु जठरेषु च ॥ २ ॥

क्षीरेणैरंडजं तैलं पिबेन्मूत्रेण वाऽसकृत् ॥
ज्योतिष्मत्याः पिबेत्तैलं पयसा च विरेचनम् ॥ ३ ॥

सर्वेभ्यो जठरेभ्यस्तु शीघ्रं मुच्येत मानवः ॥
वातोदरी पिबेत्तक्रं पिप्पलीलवणान्वितम् ॥ ४ ॥

शर्करामरिचोपेतं स्वादु पित्तोदरी पिबेत् ॥
यवानीसैंधवाजाजीव्योषयुक्तं कफोदरी ॥ ५ ॥

सन्निपातोदरी तक्रं त्रिकटुक्षारसैंधवैः ॥

त्रिभिरथ परिवृद्धं पंचभिः सप्तभिर्वा
दशभिरथ विवृद्धं पिप्पलीवर्द्धमानम् ॥
इति पिबति पुमान्यस्तस्य न श्वासकास-
ज्वरजठरगुदार्शोवातरक्तक्षयाः स्युः ॥ ६ ॥

स्नुहीपयोभावितानां पिप्पलीनां पयोऽश्नतः ॥
सहस्रमुपयुंजीत शक्तितो जठरामयी ॥ ७ ॥

पटोलादि चूर्णम् ।

पटोलमूलं रजनी विडंगं त्रिफलात्वचम् ॥
कंपिल्लकं नीलिनीं च त्रिवृतां चेति चूर्णयेत् ॥ ८ ॥

षडाद्यान्कार्षिकान्भागानंत्यान्द्वित्रिचतुर्गुणान् ॥
श्लक्ष्णचूर्णं ततः कर्षं गवां मूत्रेण ना पिबेत् ॥ ९ ॥

दिरिक्तो जांगलरसैर्भुंजीत मृदुमोदनम् ॥
मंडं पेयां च पीत्वा वा सव्योषं षडहं पयः ॥१०॥
शृतं पिबेत्तनश्चूर्णं पिबेदेवं ततः पुनः ॥
हंति सर्वोदराण्येतच्चूर्णं जातोदकान्यपि ॥
कामलां पांडुरोगं च श्वयथुं चापकर्षति ॥११॥

नारायण चूर्ण ।

यवानी हपुषा धान्यं त्रिफला सोपकुंचिका ॥
कारवी पिप्पलीमूलमजगंधा सटी वचा ॥१२॥
शताहृवा जीरकव्योषं स्वर्णक्षीरी सचित्रकम् ॥
द्वौ क्षारौ पौष्करं मूलं कुष्ठं लवणपंचकम् ॥१३॥
विडंगं च समांशानि दंतीभागत्रयं तथा ॥
त्रिवृद्विशाले द्विगुणे सातला स्याच्चतुर्गुणा ॥१४॥
एवं नारायणो नाम चूर्णो रोगगणापहः ॥
तक्रेणोदरिभिः पेयो गुल्मिभिर्बदरांबुना ॥१५॥
आनद्धवाते सुरया वातरोगे प्रसन्नया ॥
दधिमंडेन विट्संगे दाडिमांबुभिरर्शसि ॥१६॥
परिकर्तेतिवृक्षाम्लैरुष्णांबुभिरजीर्णके ॥
भगंदरे पांडुरोगे कासे श्वासे गलग्रहे ॥१७॥
हृद्रोगे ग्रहणीदोषे कुष्ठे मंदानले ज्वरे ॥
दंष्ट्राविषे मूलविषे गरले कृत्रिमे विषे ॥
यथार्हं स्निग्धकोष्ठेन पेयमेतद्विरेचनम् ॥१८॥

अथ बिन्दुघृत ।

त्रिवृता त्रिफला पाठा दंती कटुकरोहिणी ॥
चतुरंगुलमज्जा च तथा च कटुकत्रयम् ॥१९॥
चित्रकं च बृहत्यौ च तथा च गजपिप्पली ॥
स्नुहीक्षीरं पलं दद्याद् घृतस्याष्टौ प्रदापयेत् ॥२०॥

यावत्पिबति तद्विदुंस्तावद्वेगान्विरिच्यते ॥
एतद्बिदुघृतं सिद्धमृषिभिः समुदाहृतम् ॥२१॥

सामान्य प्रयोगाः ।

रोहीतकाभयाशुंठीः पिबेन्मूत्रेण शक्तितः ॥
सर्वोदरहरः प्लीहमेहार्शःकृमिगुल्मनुत् ॥२२॥
पातव्यो युक्तितः क्षारः क्षीरेणोदधिशुक्तिजः ॥
पयसा च प्रयोक्तव्याः पिप्पल्यः प्लीहशांतये ॥२३॥
औदकानूपजं मांसं शाकं पिष्टकृतास्तिलाः ॥
व्यायामाध्वदिवास्वापपानाजीर्णं विवर्जयेत् ॥२४॥
अत्र क्रव्यादो रसो हितः ॥

अथ उदरारि रसः ।

सूतगंधकणापथ्यातुल्यारग्वधकान् दृढं ॥
मर्दयेद्वह्निदुग्धेन तन्माषं खादयेद्दिनम् ॥२५॥
नृणां जलोदरं हंति पथ्यं शाल्योदनं दधि ॥
चिंचाफलरसं चानुपानमत्र प्रयोजयेत् ॥२६॥

अथ नाराच रसः ।

भ्रष्टटंकणतुल्यं तु मरिचं च रसं समं ॥
गंधकं पिप्पली शुंठी द्वौ द्वौ भागौ विचूर्णयेत् ॥२७॥
सर्वतुल्यं क्षिपेद्दंतीबीजं सर्वमकल्मषम् ॥
द्विगुंजं रेचनं चैतदुदराणि व्यपोहति ॥२८॥

इतिश्री योगतरंगिणी संहितायां उदरचिकित्सा नाम
चतुःपंचाशस्तरंगः ॥ ५४ ॥

॥ अथ पंचपंचाशस्तरंगः ॥ ५५ ॥

॥ अथ श्वयथु रोगाधिकारः ॥

रक्तपित्तकफान्वायुः शिराः प्रापप्य वाह्यगाः ॥
शोथं करोति नवधा दोषव्वेडाभिघाततः ॥ १ ॥

शुंठीपुनर्नवैरंडपंचमूलीशृतं जलम् ॥
वातिके श्वयथौ शस्तं पानाहारपरिग्रहे ॥ २ ॥

पटोलत्रिफलारिष्टदार्वीक्वाथः सगुग्गुलुः ॥
हंति पित्तभवं शोथं तृष्णाज्वरसमन्वितम् ॥ ३ ॥

पुनर्नवाविश्वत्रिवृद्गुडूची
शम्याकपथ्यामरदारुकल्कम् ॥
शोथे कफोत्थे महिषाक्षयुक्तं
मूत्रं पिबेद्वा सलिलं कवोष्णं ॥ ४ ॥

कफे तु कृष्णा सिकतापुराण
पिण्याकशिग्रुत्वगभिप्रलेपः ॥
गुडार्द्रकं वा गुडपिप्पली वा
गुडाभयां वा गुडनागरं वा ॥ ५ ॥

कर्षाभिवृद्ध्या त्रिपलप्रमाणं
खादेन्नरः पक्षमथापि मासम् ॥
शोथप्रतिश्यायगलास्यरोगान्
सश्वासकासारुचिपीनसादीन् ॥ ६ ॥

जीर्णज्वराशोग्रहणीविकारान्
हन्यात्तथान्यानपि वातरोगान् ॥
कृष्णाग्निविश्वघनजीरककंटकारी
पाठानिशाकरिकणामगधाजटानाम् ॥ ७ ॥

चूर्णं कवोष्णसलिलेन विलोड्य पीतं ॥
नातः परं श्वयथुरोगहरं नराणाम् ॥ ८ ॥
क्षीतैलघृतमद्यानि गुर्वम्ललवणानि च ॥
जांगलं च दिवास्वापं शोथवान्वर्जयेन्नरः ॥ ९ ॥

इतिश्री योगतरंगिणी संहितायां शोथचिकित्सा नाम पंचपंचाशत्तरंगः ॥ ५५ ॥

॥ अथ षट्पंचाशत्तरंगः ॥ ५६ ॥

॥ अथ मुष्कवृद्धि—अंडवृद्धि कुरंडरोगाधिकारः ॥

अधोगतिर्वंक्षणतो मुष्कौ प्राप्य करोति हि ॥
दोषास्रमेदोमूत्रांत्रैः सप्तधांडोन्नतिं मरुत् ॥ १ ॥
यः पित्तदोषेण कुरंडरोगो
भवेच्छिरोर्दक्षिणमुष्कभागे ॥
ततोर्द्धभागे श्रवणस्य वेधं
वामस्य कुर्यात्परतोऽपरस्र ॥ २ ॥
पथ्याक्षबीजशुंठीनिर्गुंडीनां मिथः समैश्चूर्णैः ॥
घृतमधुसहिता पिंडी न क्षमते मुष्कवृद्धिकथाम् ॥ ३ ॥
त्रिफलाक्वाथगोमूत्रं पिबेत्प्रातरतंद्रितः ॥
कोष्ठवातोद्भवं शूलं निहन्याद् वृषणोद्भवम् ॥ ४ ॥
चंदनं मधुकं पद्ममुशीरं नीलमुत्पलम् ॥ ५ ॥
क्षीरपिष्टैः प्रलेपः स्याद्दाहशोथव्रणापहः ॥
पंचवल्कलकल्केन सघृतेन प्रलेपनम् ॥ ६ ॥
सर्वं पित्तहरं कार्यं रक्तजे रक्तमोक्षणम् ॥
वचासर्षपतैलेन प्रलेपः शोथनाशनः ॥ ७ ॥

तैलमैरंडजं पीतं बलासिद्धं पयोऽन्वितम् ॥
आध्मानशूलोपचितामंडवृद्धिं जयेन्नरः ॥ ८ ॥
गोमूत्रसिद्धां रुवुतैलभृष्टां
हरीतकीं सैंधवचूर्णयुक्ताम् ॥
खादेन्नरः कोष्णजलानुपाना
न्निहंति कुरंडमतिप्रवृद्धम् ॥ ९ ॥

इतिश्री योगतरंगिणी संहितायां अंडवृद्धि-अंत्रवृद्धि कुरंड चिकित्सा नाम षट्पचाशस्तरंगः ॥ ५६ ॥
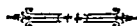
॥ अथ सप्तपंचाशस्तरंगः ॥ ५७ ॥

॥ अथ ब्रध्नरोगाधिकारः ॥

वंक्षणे दोषजः शोथो ब्रध्न इत्यभिधीयते ॥ १ ॥
मूलं विल्वकपित्थयोररलुकस्याग्नेर्बृहत्योर्द्वयोः ॥
श्यामापूतिकरंजशिग्रुकतरोर्बिम्बौषधारुष्करम् ॥
कृष्णाग्रंथिकचव्यपंचलवणाक्षाराजमोदान्वितम् ॥
पीतं कांजिककोष्णतोयमथितैश्चूर्णीकृतं ब्रध्नजित् ॥ २ ॥
भृष्टश्चैरंडतैलेन कल्कः पथ्यासमुद्भवः ॥
कृष्णासैंधवसंयुक्तो ब्रध्नरोगहरः परः ॥ ३ ॥

इति श्री योगतरंगिणी संहितायां ब्रध्न चिकित्सा नाम सप्तपंचाशस्तरंगः ॥ ५७ ॥

॥ अथ अष्टपञ्चाशस्तरंग ॥ ५८ ॥

॥ अथ गंडमालाधिकारः ॥

गंडमालोरुभिर्गंडैः कंठदेशसमुद्भवैः ॥
एषैव चिरवृद्धा स्यादपची व्रणसंज्ञिका ॥ १ ॥
माक्षिकाढयः सकृत्पीतः क्वाथो वरुणमूलजः ॥
गंडमालां निहंत्याशु चिरकालानुबंधिनीम् ॥ २ ॥

तुंबीतैलम् ।

विडंगामलसिंधूत्थरास्नोग्राक्षारदारुभिः ॥
तैलं चतुर्गुणे सिद्धं कटुतुंबीरसे शुभे ॥
गंडमालाहरं श्रेष्ठं गलगंडेपि शस्यते ॥ ३ ॥

व्योषाद्यं तैलम् ।

व्योषं विडंगं मधुकं सैंधवं देवदारु च ॥
तैलमेभिः शृतं सम्यक्कृच्छामप्यपचीं जयेत् ॥ ४ ॥

छछुंदरीतैलम् ।

छछुंदर्यां विपक्वं तु क्षणात्तैलं वरं ध्रुवम् ॥
अभ्यंगान्नाशयेन्नृणां गंडमालां सुदारुणाम् ॥ ५ ॥

अथ गलगंड चिकित्सा ।

निबद्धः श्वयथुर्यस्य मुष्कवल्लंबते गले ॥
महान्वा यदि वा ह्रस्वो गलगंडं तमादिशेत् ॥ ६ ॥
जीर्णकर्कारुकरसो विडसैंधवसंयुतः ॥
नस्येन तरुणं हंति गलगंडं न संशयः ॥ ७ ॥
श्वेतापराजितामूलं प्रातः पिष्ट्वा पिबेन्नरः ॥
सर्पिषा नियताहारो गलगंडप्रशांतये ॥ ८ ॥
तिक्तालाबुफले पक्वे सप्ताहमुषितं जलम् ॥
गलगंडं निहंत्याशु पानात्पथ्यानुशीलितम् ॥ ९ ॥

अथ ग्रंथि चिकित्सा।

वातादयो मांसमसृक्प्रदुष्टाः
प्रदूष्य मेदश्च तथा शिराश्च ॥
वृत्तोन्नतं ग्रंथिमरुक्सशोफं
कुर्वन्त्यतो ग्रंथिरिति प्रदिष्टः ॥१०॥

हिंस्रा सरोहिण्यमृताथ भार्गी
स्योनाकबिल्वागुरुकृष्णगंधा ॥
गोजीह्विका वै सह तालपत्र्या
ग्रंथौ विधेयोऽनिलजे प्रलेपः ॥११॥

जलायुकाः पित्तकृते हितास्तु
क्षीरोदकाभ्यां परिषेचनं च ॥
द्राक्षारसेनेक्षुरसेन वापि
चूर्णं पिबेद्वापि हरीतकीनाम् ॥१२॥

मधूकजंब्वर्जुनवेतसानां
त्वग्भिः प्रदेहानवचारयेच्च ॥
हृतेषु दोषेषु यथानुपूर्वं
ग्रंथौ भिषक्श्लेष्मसमुत्थितेषु ॥
अमर्मजातं सममप्रपातं
तत्पक्वमेवापहरेद्विचार्य ॥
देहस्थिते वाससि सिद्धकर्मा
सद्यः क्षतोक्तं च विधिं विदध्यात् ॥१३॥

शस्त्रेण चोत्पाट्य सुपक्वमाशु
प्रक्षालयेत्पथ्यतमैः कषायैः ॥
संशोधनैस्तं तु विशोधयेत्तु
क्षारोत्तरैः क्षौद्रघृतप्रगाढैः ॥१४॥

सिद्धं च तैलं त्ववचारणीयं
विडंगपाठारजनीविषकम् ॥
मेदःसमुत्थे किल कल्कदिग्धे
कृत्वोपरिष्टाद्विगुणं पटांतम् ॥१५॥

हुताशतप्तेन मुहुः प्रमृज्या-
ल्लोहेन धीमाननवद्धितोय ॥
प्रलिप्तदर्भा त्वथ लाक्षया वा
प्रतप्तया स्वेदनमस्य कार्यम् ॥१६॥

निपात्य वा शस्त्रमपोह्य मेदो
दहेत्सुपक्वं त्वथ वा विदार्य ॥
प्रक्षाल्य मूत्रेण तिलैः सुपिष्टैः
सुवर्चलाद्यैर्हरितालमिश्रैः ॥१७॥

ससैंधवैः क्षारघृतप्रगाढैः
क्षारोत्तरैरेनमभिप्रशोध्य ॥
तैलं विदध्याद्धि करंजगुंजा
वंशालवेशो गुदमूत्रसिद्धम् ॥१८॥

लिप्तं यवक्षारविडंगबीज
गंधोपलैः स्यान्मसृणीकृतैर्यत् ॥
रक्तेन मिश्रैः सरटस्य सद्य
स्तदर्बुदं शाम्यति नान्यथैनत्
वातार्बुदं क्षीरघृताम्लसिद्धै-
रुष्णैः सतैलैरुपनाहयेत्तु ॥
कुर्यात्तु मुख्यान्युपनाहनानि
सिद्धैश्च मांसैरथवेसवारैः ॥१९॥

स्वेदं विदध्यात्कुशलश्च नाड्या
शृंगेण रक्तं बहुशो हरेच्च ॥
वातघ्ननिर्यूहपयोऽम्लभागैः
सिद्धं शताख्यां त्रिवृतां पिवेद्वा ॥२०॥

स्वेदोपनाहा मृदवस्तु पथ्याः
पित्तार्बुदे क्वाथविरेचनं च ॥
विकृष्य सोदुंबरशाकगोजी-
पत्रैर्भृशं क्षौद्रयुतैः प्रलिपेत् ॥२१॥

शुद्धस्य जंतोः कफजेर्बुदे च
रक्ते च सिक्ते स्रवतेर्बुदं यत् ॥
मेदःकृते मांसकृतेपि कार्यं
व्रणोदितं सर्वचिकित्सितं च ॥२२॥

इतिश्री योगतरंगिणी संहितायां गंडमालापचीगलगण्डग्रन्थ्यर्बुद चिकित्सानाम अष्टपंचाशस्तरंग ॥५८॥

॥ अथ एकोनपंचाशस्तरंगः ॥ ५९ ॥

॥ अथ श्लीपदाधिकारः ॥

श्लीपदः पादशोथः स्यान्मेदःकफसमुद्भवः ॥
नासाकर्णाक्षिहस्तादावप्याहुः केप्यमुं पुनः ॥ १ ॥
धत्तूरैरंडवर्षाभूनिर्गुंडीशिग्रुसर्षपैः ॥
प्रलेपः श्लीपदं हंति चिरोत्थमपि दारुणम् ॥ २ ॥
कृष्णाचित्रकदंतीनां कर्षमर्धपलं पलम् ॥
विंशतिश्च हरीतक्या गुडस्य च पलद्वयम् ॥ ३ ॥
मधुना मोदकं खादेत् श्लीपदं हंति दुस्तरम् ॥
संपिष्टमारनालेन स्वर्पिकामूलवल्कलम् ॥
प्रलेपात् श्लीपदं हंति बद्धमूलमपि दृढम् ॥ ४ ॥
पिंडारकतरुसंभवबंदाशिफा जयति सर्पिषा पीता ॥
श्लीपदमुग्रं नियतं बद्धा सूत्रेण जंघायाम् ॥ ५ ॥
हितश्च लेपने नित्यं चित्रको देवदारु च ॥
सिद्धार्थशिग्रुकल्को वा सुखोष्णो मूत्रपेषितः ॥ ६ ॥

विडंगाद्यं तैलम् ।

विडंगमरिचार्केषु नागरे चित्रके तथा ॥
भद्रदार्वेलकाख्ये च सर्वेषु लवणेषु च ॥
तैलं पक्वं पिबेद्वापि श्लीपदानां निवृत्तये ॥ ७ ॥
यवान्नं कटुतैलं च कूर्ममांसं च भोजयेत् ॥
श्लीपदानां प्रशांत्यर्थमशांते दाहमग्निना ॥ ८ ॥

इतिश्री योगतरंगिणी संहितायां श्लीपदचिकित्सा नाम
एकोनपंचाशस्तरंगः ॥ ५९ ॥
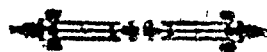
न्यग्रोधोदुंबराश्वत्थप्लक्षवेतसवल्कलैः ॥
ससर्पिष्कैः प्रलेपः स्याच्छोथनिर्वापणः परः ॥१२॥
न रात्रौ लेपनं दद्याद्दत्तं च पतितं तथा ॥
न च पर्युषितं शुष्कं न वा संधारयेत्क्वचित् ॥१३॥
सतिलाः सातसीबीजाः दध्यम्लसक्तुपिण्डिकाः ॥
सकिण्वकुष्ठलवणाः शस्ताः स्युरुपनाहने ॥१४॥
शणमूलकशिग्रूणां फलान्यसितसर्षपाः ॥
सक्तवः किण्वमुष्णानि द्रव्याण्येतानि पाचने ॥१५॥
हस्तिदंतं जले घृष्टं बिंदुमात्रप्रलेपनात् ॥
अत्यर्थकठिने चापि शोथे पाचनभेदकम् ॥१६॥
चिरबिल्वाग्निकौ दंती चित्रको हयमारकः ॥
कपोतकंकगृध्राणां पुरीषाणि च दारणे ॥१७॥
ततः प्रक्षालने क्वाथः पटोलीर्निंबपत्रजः ॥
अविशुद्धे विशुद्धे वा न्यग्रोधादित्वगुद्भवः ॥१८॥
अप्येष पूतिमांसानां मांसस्थानामरोहणम् ॥
कल्कः सरोहणः कार्यस्तिलानां मधुनान्वितः ॥१९॥
निंबपत्रमधुभ्यां तु युतः संशोधनः परः ॥२०॥
निंबपत्रं तिला दंती त्रिवृत्सैंधवमाक्षिकम् ॥
दुष्टव्रणप्रशमनो लेपः शोधनकेसरी ॥२१॥
निंबपत्रवचाहिंगुसर्पिर्लवणसैंधवैः ॥
धूपनं कृमिरक्षोघ्नं व्रणकंडूरुजापहम् ॥२२॥
अग्निदग्धे व्रणे सम्यक्प्रयुंजीत चिकित्सितम् ॥
पित्तविद्रधिवीसर्पशमनं लेपनादिकम् ॥२३॥
वातादिभूतान्सस्रावान् धूपयेद्व्रणवेदनान् ॥
यवाज्यभूर्जमदनश्रीवेष्टकसुराह्वयैः ॥२४॥

करंजारिष्टनिर्गुंडीरसो हन्यात्व्रणक्रिमीन् ॥
लशुनेनाथ वा दद्याल्लेपनं कृमिनाशनम् ॥२५॥

त्रिफला-गुग्गुलु प्रयोगः ।

ये क्लेदपाकस्रुतिगंधवंतो
व्रणा महांतः सरुजः सशोथाः ॥
प्रयांति ते गुग्गुलुमिश्रितेन
पीतेन शांतिं त्रिफलारसेन ॥२६॥

अमृतादि गुग्गुलुः ।

अमृतापटोलमूलत्रिफलात्रिकटुक्रिमिघ्नानाम् ॥
समभागानि रजांसि कौशिकभागः समः सर्वैः ॥२७॥
गोघृतबद्धां गुटिकां खादेदनुवासरं अक्षमात्रिकाम् ॥
जेतुं व्रणवातासृग्गुल्मोदरश्वयथुपांडुरोगान्वै ॥२८॥

जात्यादि घृतं (मलमः) ।

जातीनिंबपटोलपत्रकटुका-
दार्वीनिशासारिवा- ॥
मंजिष्ठाभयसिक्थतुत्थमधुकै-
र्नक्ताह्वबीजैः समैः ॥२९॥
सर्पिः सिद्धमनेन सूक्ष्मवदना
मर्माश्रिताः स्राविणो ॥
गंभीराः सरुजो व्रणाः
सगतिकाः शुध्यंति शुध्यंति च ॥३०॥

स्वर्जिकाद्यं घृतम् ।

स्वर्जिका च यवक्षारः कंपिल्लकसैंद्रिका ॥
टंकणं श्वेतखदिरं तुत्थं चूर्णं च गोघृते ॥३१॥

सर्व समांशं संचूर्ण्य [illegible] दृढम् ॥
खर्जिकादिघृतं चैव सर्वव्रणविशोधनम् ॥३२॥
पूरणं कृमिकृद्घ्नं शीघ्र पाटवकृत्तथा ॥

मनःशिलादि लेप. ।
मनःशिला समंजिष्ठा सलाक्षारजनीद्वयम् ॥
प्रलेपः सघृतक्षौद्रस्त्वग्विशुद्धिकरः परः ॥३३॥

पुनर्नवाष्टकं ।
पुनर्नवानिम्बपटोलशुंठी-
तिक्तानिशादार्व्यभयाकषायः ॥
सर्वांगशोफोदरकासशूल-
श्वासान्वितं पांडुगदं निहन्ति ॥३४॥

कार्ष्ण्यकर लेप. ।
अयोरजः सकासीसं त्रिफलाकुसुमानि च ॥
प्रलेपः कुरुते कार्ष्ण्यं सद्य एव नवत्वचि ॥३५॥

त्वक्सवर्णकरलेप ।
कालीयकफलास्थिमज्जालासुरोत्तमैः ॥
लेपः सगोमयरसस्त्वक्सवर्णकरः परः ॥३६॥

अथ सद्योव्रणः ।
सद्यः क्षतं व्रणं वैद्यः सशूलं परिषेचयेत् ॥
यष्टीमधुकयुक्तेन किंचिदुष्णेन सर्पिषा ॥३७॥
बुद्ध्वागंतुव्रणं वैद्यो घृतक्षौद्रसमन्वितां ॥
शीतां क्रियां प्रयुंजीत शीतरक्तोष्णनाशिनीम् ॥३८॥
आमाशयस्थे रुधिरे वमनं पथ्यमुच्यते ॥
पक्वाशयस्थे दातव्यं रेचनं च क्रमात्ततः ॥३९॥
कार्या वक्षस्यगैरंडवदप्यादमनिदाकृतः ॥
सहिंगुसैंधवः पीतः कोष्ठस्थं स्रावयेदसृक् ॥४०॥

यवकोलकुलत्थान्नं निःस्नेहेन रसेन वा ॥
भुंजीताल्पं यवागूं वा पिबेत्सैंधवसंयुताम् ॥४१॥
इति साप्ताहिकः प्रोक्तः सद्योव्रणहितो विधिः ॥
सप्ताहात्परतः कार्याः शारीरव्रणवत्क्रियाः ॥४२॥
व्रणे श्वयथुरायासात्स च रागश्च जागरात् ॥
तौ च रुक् च दिवास्वापात्ताश्च मृत्युश्च मैथुनात् ॥४३॥

अथ विपरीतमल्ल तैलं ।

सिंदूरकुष्ठविषहिंगुरसोनचित्र-
बाणांघ्रिलांगलिककल्कविपक्वतैलम् ॥
प्रासादकंजयुतकुंकुमतुल्यफेनः
क्लिन्नव्रणप्रशमनो विपरीतमल्लः ॥४४॥

वल्मीकपादगुदगंडमहोपदंश-
नाडीव्रणव्रणविचर्चिककुष्ठपामाः ॥
एता निहंति विपरीतकमल्लनाम
तैलं यथेष्टशयनासनभोजनस्य ॥४५॥

अथ भग्नानि ।

आदौ भग्नं विदित्वा तु सेचयेच्छीतवारिणा ॥
पंकेनालेपनं कुर्याद्बंधनं च कुशान्वितम् ॥४६॥
आलेपनार्थं मंजिष्ठा मधुकं चाम्लपेषितं ॥
शतधौतघृतोन्मिश्रं शालिपिष्टं च लेपनम् ॥४७॥
न्यग्रोधादिकषायस्तु सुशीतः परिषेचने ॥
पंचमूलीविपक्वं च क्षीरं दद्यात्सवेदने ॥४८॥
मूलं शृगालविन्नायाः पीत्वा मांसरसेन तु ॥
तच्चूर्णीकृत्य सप्ताहादस्थिभंगमपोहति ॥४९॥

आभाचूर्णं मधुयुतमस्थिभंगे त्र्यहं पिबेत् ॥
पीत्वा चास्थि भवेत्सम्यग्वज्रसारनिभं दृढम् ॥५०॥
लवणं कटुकं क्षारमम्लं मैथुनमातपम् ॥
व्यायामं च न सेवेत भग्नो रूक्षान्नमेव च ॥५१॥

अथ नाडीव्रण ।

नाडीनां गतिमन्विष्य शस्त्रेणोत्पाट्य कर्मवित् ॥
सर्वव्रणक्रमं कुर्याच्छोधनं रोपणादिकम् ॥५२॥
नाडीं वातकृतां साधुपाटितां लेपयेद्भिषक् ॥
प्रत्यक्पुष्पीफलयुतैस्तिलैः पिष्टैः प्रलेपयेत् ॥५३॥
पैत्तिकीं तिलमंजिष्ठानागदंतीनिशाद्वयैः ॥
श्लैष्मिकीं तिलयष्ट्याह्वनिकुंभारिष्टसैंधवैः ॥५४॥
शल्यजां तिलमध्वाज्यैर्लेपयेच्छुद्धशोधनैः ॥
आरग्वधनिशाकालाचूर्णाज्यक्षौद्रसंयुताः ॥
सूत्रवर्तिर्व्रणे योज्या शोधिनी गतिनाशिनी ॥५५॥

घर्षाहृतं माक्षिकसंप्रयुक्तं
नाडीघ्नमुक्तं लवणोत्तमं च ॥
दुष्टव्रणे यद्विहितं च तैलं
तत्सेव्यमानं गतिमाशु हंति ॥५६॥

जात्यर्कशंपाककरंजदंती
सिंधूत्थसौवर्चलयावशूकैः ॥
वर्तिः कृता हंत्यचिरेण नाडीं
स्नुक्क्षीरलिप्ता सह सैंधवेन ॥५७॥

कृशदुर्बलभीरूणां नाडीमर्माश्रिता तु या ॥
क्षारसूत्रेण तां छिंद्यान्न शस्त्रेण कदाचन ॥५८॥

अथ सप्तांगगुग्गुलुः ।

गुग्गुलुस्त्रिफलाव्योषैः समांशैश्चाज्ययोजितैः ॥
नाडीं दुष्टव्रणं चापि जयेदपि भगंदरम् ॥५९॥

नाडीदुष्टव्रणापह तैलं ।

समूलपत्रां निर्गुंडीं पीडयित्वा रसं हरेत् ॥
तेन सिद्धं समं तैलं नाडीदुष्टव्रणापहम् ॥६०॥

इति श्री योगतरंगिणी संहितायां शोथव्रणसद्योव्रणभग्ननाडीव्रण चिकित्सानामैकषष्टितमस्तरंगः ॥ ६१ ॥
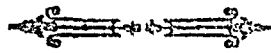
॥ अथ द्वाषष्टितमस्तरंगः ॥ ६२ ॥

॥ अथ भगंदररोगाधिकारः ॥

गुदस्य व्यंगुले क्षेत्रे पार्श्वतः पिडकार्तिकृत् ॥
भिन्नो भगंदरो ज्ञेयः स च पंचविधो मतः ॥ १ ॥
वातपित्तकफैस्त्रेधा चतुर्थः सन्निपाततः ॥
उन्मार्गगः पंचमः स्यादेवं पंचविधो मतः ॥ २ ॥
गुदस्य श्वयथुं दृष्ट्वा विशोध्यादौ विशोधयेत् ॥
रक्तावसेचनं कार्यं यथा पाकं न गच्छति ॥ ३ ॥

भगंदरहर लेप ।

स्वररुधिरसमेतं स्नुक्लतायाः शरीरं
दृषदि सहितमस्थ्ना सारमेयस्य पिष्टम् ॥
भवति सदुपलेपादाशु भागंदरीणा-
मपि विषमतराणामापदां नाशहेतुः ॥ ४ ॥

वटपत्रेष्टिकासौंडीगुडूच्यः सपुनर्नवाः ॥
सुपिष्टाः पिडकावस्थे लेपः शस्तो भगंदरे ॥ ५ ॥

पिडिकानामपक्वानामपतर्पणपूर्वकम् ॥
कर्म कुर्याद्विरेकांत भिन्नानां वक्ष्यते क्रिया ॥ ६ ॥
स्नुह्यर्कदुग्धदार्वीभिर्वर्तिं कृत्वा विचक्षणः ॥
भगंदरगतिं ज्ञात्वा दद्याद्दुष्टविशोधिनीम् ॥ ७ ॥
दुष्टां सर्वशरीरस्थां नाडीं हन्यादसंशयम् ॥

अथ रूपराज रसः ।

रसेंद्रभागद्वितयं म्लेच्छक्षारचतुष्टयम् ॥ ८ ॥
काकजंघारसैर्मर्द्यं खल्वे दिवसपंचकम् ॥
ताम्रस्य संपुटे रुद्ध्वा सच्छिद्रे हंडिकांतरे ॥ ९ ॥
निवेश्य वालुकां दत्वा देयोऽग्निः प्रहराष्टकम् ॥
स्वांगशीतं समुद्धृत्य मधुटंकणसंयुतम् ॥ १० ॥
धमेन्मूषागतं तावद्यावद्भ्रमति तारवत् ॥
रूपराजरसः सोऽयं भगंदरविनाशनः ॥ ११ ॥
वल्लमात्रमिमं खादेत्त्रिफलामनुपाययेत् ॥
मुक्तः स्वल्पैरहोभिः स्याद्भगंदरमहागदात् ॥ १२ ॥

अथ नवकार्षिको गुग्गुलुः ।

त्रिफलापुरकृष्णानां त्रिपंचैकभागयोजिता गुटिका ॥
कुष्ठभगंदरनाडीदुष्टव्रणशोधिनी कथिता ॥ १३ ॥
तिलाभयालोध्रमरिष्टपत्रं निशावचाकुष्ठमगारधूमः ॥
भगंदरे नाड्युपदंशयोश्च दुष्टव्रणे शोधनरोपणोऽयम् ॥ १४ ॥
त्रिफलारससंयुक्तं विडालास्थिप्रलेपनम् ॥
भगंदरं निहंत्याशु दुष्टव्रणविशोधनम् ॥ १५ ॥

अथ चित्रकाद्यं तैलं ।

चित्रकार्कौ त्रिवृत्पाठेमलपूहयमारकौ ॥
सुधां वचां लांगलीं च हरितालं मनःशिलाम् ॥ १६ ॥

ज्योतिष्मतीं च संहृत्य तैलं धीरो विपाचयेत् ॥
एतद्विष्यंदनं नाम तैलं दद्याद् भगंदरे ॥
शोधनं रोपणं चैव दुष्टनाडीं व्यपोहति ॥१७॥

अथ करवीरादि तैलं ।

करवीरनिशादंतीलांगलीलवणाग्निभिः ॥
मातुलुंगार्कपयसा पचेत्तैलं भगंदरे ॥१८॥

अथ रवितांडव रसः ।

भागो रसस्य गंधस्य द्वौ कन्याद्भिर्विमर्दयेत् ॥
कृत्वा गोलं ताम्रपत्रं तावत्तस्योपरि क्षिपेत् ॥१९॥
भस्मनापूर्य तद्भांडं वह्निं कुर्याद्दिनं तले ॥
शीतमुद्धृत्य जंबीरद्रावैस्तत्सप्तधा पुटेत् ॥२०॥
गुंजाद्वयं मधुसर्पिभ्यां हंति सद्यो भगंदरम् ॥
तालमूलीं सलशुनां पिबेदनु सकांजिकाम् ॥२१॥
व्यायामं मैथुनं युद्धं पृष्ठयानं गुरूणि च ॥
संवत्सरं परिहरेदुपरूढव्रणो नरः ॥२२॥

उपदंशः ।

हस्ताभिघातान्नखदंतघाता
दधावनादत्युपसेवनाद्वा ॥
योनिप्रदोषाच्च भवंति शिश्ने
पंचोपदंशा विविधोपचारैः ॥२३॥

जलौकापातनं च स्यादूर्ध्वाधः शोधनं तथा ॥
पाको रक्ष्यः प्रयत्नेन शिश्नक्षयकरो हि सः ॥२४॥

पटोलनिंबत्रिफलागुडूची
क्वाथं पिबेद्वा खदिरासनाभ्यां ॥
सगुग्गुलुं वा त्रिफलायुतं वा
सर्वोपदंशापहरः प्रयोगः ॥२५॥

त्रिफलाद्याः कषायेण भृंगराजरसेन वा ॥
व्रणप्रक्षालनं कुर्यादुपदंशप्रशांतये ॥२६॥
दहेत्कटाहे त्रिफलां समापां मधुसंयुतां ॥
उपदंशप्रलेपोयं सद्यो रोपयति व्रणम् ॥२७॥
जपाजात्यश्वमारार्कशम्याकानां दलैः पृथक् ॥
कृतं प्रक्षालने कार्यं मेढ्रपाके प्रयोजयेत् ॥२८॥
करंजनिपार्जुनसालजवू
घटादिभिः कल्ककषायसिद्धं ॥
सर्पिर्निहन्यादुपदंशदोषं
सदाहपाकं स्रुतिरागयुक्तं ॥२९॥

अथ शूकदोषा. ।

अक्रमाच्छेफसो वृद्धिं योभिवांछति मूढधीः ॥
व्याधयस्तस्य जायंते दश चाष्टौ च शूकजाः ॥३०॥
हितं च सर्पिषः पानं पथ्यं वापि विरेचनम् ॥
हितः शोणितमोक्षश्च यचापि लघुभोजनम् ॥३१॥
शूकदोषे हरेद्रक्तं पक्के शोधनरोपणम् ॥
तिंदुकत्रिफलालोध्रैर्लेपस्तैलं च रोपणम् ॥३२॥

इति श्री योगतरंगिणी संहितायां भगंदरोपदंशशूकदोष
चिकित्सा नाम द्वाषष्टिमस्तरंगः ॥ ६२ ॥

॥ अथ त्रयःषष्टितमस्तरंगः ॥ ६३ ॥

॥ अथ कुष्ठरोगाधिकारः ॥

अत्युग्रपातकाहारधर्मश्रमविरेकिणाम् ॥
कुष्ठान्यष्टादशनृणां जायंते घोरकर्मणाम् ॥ १ ॥
वातोत्तरेषु सर्पिर्वमनं श्लेष्मोत्तरेषु कुष्ठेषु ॥
पित्तोत्तरेषु मोक्षो रक्तस्य विरेचनं श्रेष्ठम् ॥ २ ॥
एलाकुष्ठविडंगानि निशाद्वा चित्रको बला ॥
दंती रसांजनं चेति लेपः कुष्ठविनाशनः ॥ ३ ॥

अथ महाकषायः ।

निंबमूर्निबपाठाब्दपटोलत्रिफलानलैः ॥
श्यामाशम्याकनायन्तीभार्गीवासाकचंदनैः ॥ ४ ॥
वचाऽमृताकणाशुंठीसठीद्राक्षानिशाद्वयैः ॥
वत्सकत्वक्फलानंतामूर्वात्रायंत्यवल्गुजैः ॥ ५ ॥
ऐंद्रीगोपारुणावृक्षो वृषकृष्णपर्पटैः ॥
महाकषायो गोमूत्रैः सर्वकुष्ठान्तकोऽर्कवत् ॥ ६ ॥

दद्रूकण्डूहर लेपः ।

दुर्वाभयासैंधवचक्रमर्द-
कुठेरकैः कांजिकतक्रपिष्टैः ॥
त्रिभिः प्रलेपैरपि बद्धमूलां
दद्रूं च कंडूं च निवारयंति ॥ ७ ॥
गोमूत्रवारिसंपिष्टैः शिलातालांशतुत्थकैः ॥
लेपः किटिभकुष्ठानि हंति सिध्मानमेव च ॥ ८ ॥
स्थौणेयारुङ्निशादूर्वाः सप्तवारप्रलेपनात् ॥
धत्तूररसपिष्टाश्च कंडुरकशनाशनाः ॥ ९ ॥

कासमर्दकमूलं तु सौवीरेण प्रपेषितम् ॥
दद्रुकिटिभकुष्ठानि जयेदेतत्प्रलेपनात् ॥१०॥

एडगजास्तिलसर्षपकुष्ठं
मागधिकारजनीद्वयमुस्त ॥
पूतिकृतं दिवसत्रयमेतद्धंति
सकुष्ठविसर्पकदद्रूः ॥११॥

सिंदूरादि तैलम् ।

सिंदूरगुग्गुलुरसांजनसिक्थतुल्यै-
स्तुल्यांशकैः कटुकतैलमिद विपक्वम् ॥
कुष्ठं स्रवत्पिडकिनीमथ वापि शुष्क-
मभ्यजनेन सकृदुद्धरति प्रसह्य ॥१२॥

माहेश्वर घृतम् ।

कृत्वा कज्जलिकां रसौ[1] च कुनटी द्वे जीरके द्वे निशे
गोदंतोपणनागएडगजिका चाकृचिका सर्षपा ॥
लोहे लोहविमर्दितं दृढतरं माहेश्वराख्यं घृतं
कंडूकुष्ठविचर्चिकादिशमन पामाहरं स्वेदनात् ॥१३॥

खदिराष्टकचूर्ण ।

खदिरत्रिफलानिंबपटोलामृतवासकैः ॥
अष्टकोऽयं जयेत्कुष्ठ कंडूविस्फोटकानि च ॥
विसर्पपामाकिटिभरोमांतिकमसूरिकाः ॥१४॥

अर्क तैलम् ।

अर्कपत्ररसे पक्वं हरिद्राकल्कसंयुतं ॥
नाशयेत्सार्षपं तैलं पामां कच्छु विचर्चिकाम् ॥१५॥

आदित्यपाकतैलम् ।

मंजिष्ठात्रिफलालाक्षाशिलागंधकरात्रिभिः ॥
तैलमादित्यसंपक्व पामाकंडूविसर्पनुत् ॥१६॥

---

१ रसौ-रसगंधकौ

अथ मरिचादि तैलम् ।

मरिचालधिलाब्दार्कपयोऽश्वारिजटात्रिवृत् ॥
शकृद्रसविशालारुङ्निशायुग्दारुचंदनैः ॥१७॥
कटुतैलं पचेत्प्रस्थं द्वयक्षैर्विषपलान्वितैः ॥
सगोमूत्रं तदभ्यंगाद्दद्रुश्वित्रविनाशकृत् ॥
सर्वेष्वपि च कुष्ठेषु तैलमेतत्प्रयोजयेत् ॥१८॥
धात्रीखदिरयोः क्वाथं पीत्वा वल्गुजसंयुतम् ॥
शंखेन्दुधवलं श्वित्रं हंति तूर्णं न संशयः ॥१९॥
मथितेन पिबेच्चूर्णं काकोदुंबरिवल्गुजम् ॥
तैलाक्तो घर्मसेवी स्यात्तक्राशी श्वित्रमुद्धरेत् ॥२०॥
इंद्रासनं समादाय प्रशस्तेह्नि च्योद्धृतम् ॥
तच्चूर्णं मधुसर्पिर्भ्यां लिहेत्क्षीरंघृताशनः ॥२१॥
हत्वा स सर्वकुष्ठानि जीवेद्वर्षशतत्रयम् ॥
तिलाज्यत्रिफलाक्षौद्रव्योषभल्लातशर्कराः ॥२२॥
वृष्यः सप्तसमो मेध्यः कुष्ठहा कामचारिणः ॥
यः खादेदभयारिष्टमरिष्टामलकानि च ॥
स जयेत्सर्वकुष्ठानि मासादूर्ध्वं न संशयः ॥२३॥

अवल्गुजादि लेपः ।

कुडवोवल्गुजबीजाद्धरितालचतुर्थभागसंमिश्रः ॥
मूत्रेण गवां पिष्टः सवर्णकरणः परः श्वित्रे ॥२४॥

बोलयोगः ।

चत्वारो बोलभागाः स्युर्द्वौ भागौ तु कुलिंजनात् ॥
बसलकी चैकभागा स्याद्यवानीपोटलीयुते ॥२५॥
जले समुचिते हंड्यां घर्मलब्धे दिनत्रयम् ॥
संस्थाप्य तज्जलं लेपाद्धंति दद्रूं न संशयः ॥२६॥

दद्रूहर लेपः ।

चंद्रसूर्याख्यबीजानि प्रपुन्नाटस्य तानि च ॥
कंकुत्या अपि बीजानि समांशत्रितयं क्षिपेत् ॥२७॥
सर्वद्विगुणतक्रेण सूक्ष्मं संपिष्य साधयेत् ॥
दिनत्रयं ततो वन्यगोमयेन प्रघर्षयेत् ॥
तं कल्कं लेपयेतस्थाद्दद्रुर्गच्छति निश्चितम् ॥२८॥

महाभल्लातक अवलेह ।

निंबगोपारुणाकट्वीत्रायंतीत्रिफलाघनम् ॥२९॥
पर्पटावल्गुजानंतापचास्वदिरचंदनम् ॥
पाठाशुंठीसटीभार्गीवासाभूनिंबवत्सकम् ॥३०॥
श्यामेंद्रवारुणीमूर्वाबिडगेंद्रविषानलं ॥
हस्तिकर्णामृताद्रेक्का पटोलं रजनीद्वयम् ॥३१॥
कणारग्वधसप्ताह्व कृष्णामूलोचटाफलम् ॥
एतान् द्विपलिकान्भागान्जलद्रोणे विपाचयेत् ॥३२॥
अष्टभागावशेषं च कषायमवतारयेत् ॥
भल्लातकसहस्राणि क्षिप्त्वा त्रीण्यर्मणोंभसि ॥३३॥
चतुर्भागावशिष्टं च कषायं परिकल्पयेत् ॥
तौ कषायौ समादाय पक्वपूतौ च कारयेत् ॥३४॥
एकीकृत्य कषायौ तौ पुनरग्नावधिश्रयेत् ॥
गुडस्यैकतुलां दत्वा लेहवत्साधयेद्भिषक् ॥३५॥
भल्लातकसहस्राणां मज्जानं तत्र दापयेत् ॥
त्रिकटुत्रिफलामुस्तसैंधवानां पलपलम् ॥३६॥
सौगंधिकस्य दातव्यं चूर्णं पलचतुष्टयम् ॥३७॥
दीप्यकस्य पलं चैव चातुर्जातं पलंपलम् ॥
संमेल्य प्रक्षिपेत्कोष्णे घृतभांडे निधापयेत् ॥३८॥

महाभल्लातको ह्येष महादेवेन निर्मितः ॥
प्राणिनां तु हितार्थाय नाशयेच्छीघ्रमेव तु ॥३९॥
श्वित्रमौदुंबरं दद्रुमृक्षजिह्वं सकाकणम् ॥
पुंडरीकं च चर्माख्यं विस्फोटं रक्तमण्डलम् ॥४०॥
कृच्छ्रं कापालिकं कुष्ठं पामां चापि विपादिकाम् ॥
वातरक्तमुदावर्तं पांडुरोगं बलिं कृमीन् ॥४१॥
अर्शांसि षट्प्रकाराणि श्वासं कासं भगन्दरम् ॥
अनुपानेन दातव्यं छिन्नातोयेन तद्भिषक् ॥४२॥
भोजनं च सदा त्याज्यमुष्णं चाम्लं विशेषतः ॥

विपादिका हरः ।

मुंडीरसेन संसिद्धं घृतं हंति विपादिकाम् ॥४३॥

महामंजिष्ठादि क्वाथः ।

मंजिष्ठा कुटजो घनामृतवचा शुंठीहरिद्राद्वयं
क्षुद्रारिष्टपटोलकुष्ठकटुकाभार्ङ्गीविडंगानिकाम् ॥
मूर्वादारुकलिंगभृंगमगधात्रायंतिपाठावरी-
गायत्रीत्रिफलाकिरातकमहानिंबासनारग्वधं ॥४४॥
श्यामावल्गुजचंदनं सवरुणं पूतीकदासीटकं ॥
वासापर्पटसारिवाप्रतिविषानंताविशालाजलं ॥४५॥
मंजिष्ठादिरयं कषायविधिना नित्यं पुमान्यः पिबेत् ॥
त्वग्दोषास्त्वचिरेण यांति विलयं कुष्ठानि चाष्टादश ॥४६॥
वातरक्ते प्रसुप्तौ च विसर्पे विद्रधौ तथा ॥
रक्तदोषेषु च महामंजिष्ठादिः प्रशस्यते ॥४७॥
पिबति सकटुतैलं गन्धपाषाणचूर्णं
रविकिरणसुतप्तः पामलो यः पलार्द्धम् ॥
त्रिदिवसमभिषिक्तः क्षीरभोजी च शीघ्रं
भवति कनकदीप्तिः कामयुक्तो मनुष्यः ॥४८॥

कुष्ठ कालानल तैलं ।

क्षाराम्लपञ्चिकटुक पंचैव लवणानि च ॥
वचा कुष्ठं हरिद्रे द्वे विडगं चित्रकं विषम् ॥
हरितालं शिला गंधं सिंदूरं तुत्थखर्परम् ॥४९॥
रामठ च रसोनञ्च मदन च रसांजन ॥
भल्लातकं वाकुचिका चोकं कर्चूरकं तथा ॥५०॥
लांगली च पटोली च हंसपादी तथैव च ॥
तेजिनी मुरमांसी च कंपिल्ल खदिरांतरम् ॥५१॥
एतच्चूर्णं समांशेन वज्रार्कपयसा प्लुतम् ॥
षड्गुणं सार्षपं तैलं कारंज वा विशेषतः ॥५२॥
तैलं गर्धवज वापि तिलतैल तथैव च ॥
तैलाच्चतुर्गुणं मूत्रं गोमहिष्यश्वसंभवम् ॥५३॥
हस्तिगर्दभज वापि तथोष्ट्राजाविजं क्षिपेत् ॥
सर्वमेकत्र संपक्वं कटाहे मंदवह्निना ॥५४॥
तैलावशेषं संगृह्य कुर्यादभ्यंगमाचरेत् ॥
वातरक्तविनाशाय दद्रुकंडूविचर्चिकाः ॥५५॥
अष्टादशानि कुष्ठानि मांसमेदोगतानि च ॥
दुष्टव्रणानि सर्वाणि जीर्णनाडीव्रणानि च ॥५६॥
भगंदरं च दुर्नामलूतागर्दभजालकम् ॥
एतत्तैलं सदाभ्यंगात्सर्वकुष्ठं व्यपोहति ॥५७॥

सिंदूरादि तैलम् ।

सिंदूरं चंदनं मांसी विडंगं रजनीद्वयम् ॥
प्रियंगु पद्मकं कुष्ठं मंजिष्ठा खदिर वचा ॥५८॥
जात्यर्कत्रिवृतानिंबकरंजो विषमेव च ॥
कृष्णवेत्रकलोध्रं च प्रपुंनाटं च संहरेत् ॥५९॥

श्लक्ष्णपिष्टानि सर्वाणि योजयेत्तैलमात्रया ॥
अभ्यंजने प्रयुंजीत सर्वकुष्ठानि नाशयेत् ॥६०॥
पामाविचर्चिकाकच्छूविसर्पादिहरं परम् ॥
वातरक्तोत्थितान्हंति रोगानेवंविधान्बहून् ॥६१॥

सैंधवादि घृतं ।

सैंधवं मदनं रालं मधु सर्पिः पुरो गुडम् ॥
गैरिकं स्फुटितौ पादौ लिप्तौ पंकजलन्निभौ ॥६२॥
कार्पासिकापत्रविमिश्रकाक-
जंघाकृतो मूलकबीजयुक्तः ॥
तक्रेण लेपः क्षितिपुत्रवारे
सिध्मानि सद्यो नयति प्रणाशम् ॥६३॥
उन्मत्तकस्य बीजानि मानकक्षारवारिणा ॥
कटुतैलं विपक्तव्यं शीघ्रं हंति विपादिकाम् ॥६४॥

हरताल भस्म ।

जंबीरद्रवमध्ये तु प्रक्षाल्य नटमंडनम् ॥
दशांशं टंकणं दत्वा खंडशः परिमेलयेत् ॥६५॥
चतुर्गुणे गाढपटे निबध्य प्रहरद्वयम् ॥
दोलायंत्रेण संस्वेद्यं प्रदीपप्रमितेऽनले ॥६६।
चूर्णतोये कांजिके च कूष्माडांबुनि तैलके ॥
त्रिफलांबुनि तत्पश्चात्क्षालयित्वामलवारिणा ॥६७॥
ततः पलाशमूलत्वग्वारिपिष्टं प्रशोषयेत् ॥
महिषीमूत्रसंपिष्टं पुनस्तं परिशोषयेत् ॥६८॥
तं गोलकं शरावाभ्यां संपुटीकृत्य यत्नतः ॥
स्थाले गजपुटे पक्त्वा स्वांगशीतं समुद्धरेत् ॥६९॥

॥ अथ बहुगाहितमस्तरंगः ॥ ६४ ॥

॥ अथ अम्लपित्तरोगाधिकारः ॥

अत्यम्लकटुकाहाराद्दनकाष्ठातिकर्षणात्
दिवास्वप्नाद्रसस्तिक्तोम्लो वाऽऽस्याद् द्रवते बलात् ॥ १ ॥
अविपाकक्रमोत्क्लेदतिक्ताम्लोद्गारगौरवैः ।
हृत्कण्ठदाहारुचिभिश्चाम्लपित्तं वदेद्भिषक् ॥ २ ॥
वमनानन्तरं तत्र विरेकं मृदु कारयेत् ।
सम्यग्वान्तविरिक्तस्य सुस्निग्धस्यानुवासनम् ॥ ३ ॥
तिक्तभूयिष्ठमाहारं पानं चापि कल्पयेत् ॥
यवगोधूमविकृतिं तीक्ष्णसंस्कारवर्जितम् ॥
यथार्हं छागसक्तूंश्च सितामधुयुतान् लिहेत् ॥ ४ ॥
निस्तुषयवकृपवाशीकाथस्त्रिसुगन्धिमधुयुतः पीतः ॥
अपनयति चाम्लपित्तं यदि भुक्ते मुद्गयूषेण ॥ ५ ॥
एलातुगाचोचशिवाभयानां
त्वग्ग्रन्थिपाठीरदलालकानां ॥
चूर्णं सितातुल्यमपाकरोति
मासाम्लपित्तं दिवसाष्टमुक्तम् ॥ ६ ॥
इति वोद्धसर्वस्वे ॥

नारिकेलखण्ड

कुडवमितमिह स्यान्नालिकेरं सुपिष्टं
पलपरिमितसर्पिः पाचितं खंडतुल्यम् ॥
निजपयसि तदेतत्प्रस्थमात्रे विपक्वं
गुडवदथ सुशीते शाणमात्रं क्षिपेच्च ॥ ७ ॥
धान्याकपिप्पलिपयोदतुगाद्विजीरैः
साकं त्रिजातमिभकेशरवह्निचूर्णं ॥
हंत्यम्लपित्तमरुचिं क्षयमस्रपित्तं
शूलं वमिं सकलपौरुषकारि पुंसाम् ॥ ८ ॥

लीला विलास रसः ।

शुद्धसूतसमं गंधं मृततात्राभ्ररूप्यकं ॥
तुल्यांशं मर्दयेद्यामं रुद्ध्वा लघुपुटे पचेत् ॥९॥
अक्षधात्रीहरीतक्यः क्रमवृद्ध्या विपाचयेत् ॥
जलेनाष्टगुणेनैव ग्राह्यमष्टावशेषकम् ॥१०॥
अनेन भावयेत्पूर्वं पक्वं सूतं पुनःपुनः ॥
पंचविंशतिवारं तु तावता भृंगजैर्द्रवैः ॥११॥
शुष्कं तच्चूर्णितं खादेत्पंचगुंजं मधुप्लुतम् ॥
रसो लीलाविलासोयमम्लपित्तं नियच्छति ॥१२॥

कूष्णांडावलेहः ।

कूष्मांडस्य रसो ग्राह्यः पलानां शतमात्रकं ॥
रसतुल्यं गवां क्षीरं धात्रीचूर्णं पलाष्टकम् ॥१३॥
लघ्वग्निना पचेत्तावद्यावद्भवति पिंडितम् ॥
धात्रीतुल्या सिता योज्या पलार्द्धं लेहयेत्सदा ॥
अम्लपित्तं वातपित्तं मूर्छां श्वासं च नाशयेत् ॥१४॥

खण्डपिप्पली ।

पिप्पल्याः कुडवं चूर्णं घृतस्य कुडवद्वयम् ॥
पलषोडशकं खंडात् शतावर्याः पलाष्टकम् ॥१५॥
शिवायाः स्वरसस्यापि पलषोडशकं मतम् ॥
क्षीरप्रस्थद्वये साध्यं लेहीभूतेत्र निक्षिपेत् ॥१६॥
त्रिजातकाभयाजाजीधान्यमुस्तशिवातुगाः ॥
एतेषां कार्षिकं चूर्णं कर्षार्द्धं कृष्णजीरकम् ॥१७॥
नागरं नागकं जातिफलं समरिचं हिमं ॥
दत्वा पलत्रयं क्षौद्रं स्निग्धभांडे निधापयेत् ॥१८॥

प्रातर्यथाबल लिह्यादम्लपित्तप्रशांतये ॥
हृल्लासारोचकच्छर्दिपिपासादाहनाशनम् ॥
शूलहृद्रोगशमनं हृद्यं चेदं रसायनं ॥१९॥
अत्र महा चंद्रकला रसो देयः ॥

रसामृत चूर्ण ।

त्रिकटुत्रिफलामुस्तविडंगदहनाः समाः ॥
एतेषां चूर्णितानां च प्रत्येकं च पलं भवेत् ॥२०॥
कर्षद्वयं गंधकस्य तदर्धं पारदस्य च ॥
बिडालपदमात्रं तु लिह्यात्समधुसर्पिषा ॥२१॥
शीतोदकं चानुपिबेत्क्रमाद् द्रव्यं पयस्तथा ॥
अम्लपित्तं चाग्निमांद्यं परिणामरुजं तथा ॥
कामलां पांडुरोगं च हन्यादत्र न संशयः ॥२२॥

शतावरी घृतं ।

शतावरीमूलकल्के घृतं सिद्धं पयोऽन्वितम् ॥
पचेन्मृद्वग्निना गव्यं क्षीरं दत्वा चतुर्गुणम् ॥२३॥
नाशयेदम्लपित्तं च वातपित्तभवान्गदान् ॥
रक्तपित्तं तृषां मूर्छां श्वासं संतापमेव च ॥२४॥

यवादि योग ।

यवकृष्णापटोलानां क्वाथं क्षौद्रयुतं पिबेत् ॥
नाशयेदम्लपित्तं च वमिं चारुचिमेव च ॥२५॥
अम्लपित्ते प्रयोक्तव्यः कफपित्तहरो विधिः ॥
गुडकूष्मांडकं चैव तथा खंडामलक्यपि ॥
गुडक्षीरकणासिद्धं सर्पिर्वात्र प्रयोजयेत् ॥२६॥

इतिश्री योगतरंगिणी संहितायां अम्लपित्त चिकित्सा नाम चतुःषष्टितमस्तरंगः ॥ ६४ ॥

॥ अथ पञ्चषष्टितमस्तरंगः ॥ ६५ ॥

॥ अथ विसर्पाधिकारः ॥

क्षुद्रपामाकृतिर्देहे परितः परिसर्पणात ॥
विसर्पो जायते जंतोस्तोदस्रावरुजाकरः ॥ १ ॥
विरेकवमनालेपसेवनासृग्विमोक्षणात् ॥
उपाचरेद्यथादोषं विसर्पानविदाहिभिः ॥ २ ॥

दशांग लेपः ।

शिरीषयष्टीनवचंदनैला
मांसीहरिद्राद्वयकुष्ठवालैः ॥
लेपो दशांगः सघृतः प्रयोज्यो
विसर्पदुष्टव्रणशोथहारी ॥ ३ ॥

वृषादि घृतं ।

वृषखदिरपटोलपत्रनिंब-
त्वगमृतआमलकीकषायकल्कैः ॥
घृतमभिनवमेतदाशु पक्वं
जयति सदास्त्रविसर्पकुष्ठगुल्मान् ॥ ४ ॥

इतिश्री योगतरंगिणी संहितायां विसर्पचिकित्सा नाम
पञ्चषष्टितमस्तरंगः ॥ ६५ ॥

॥ अथ षट्षष्टितमस्तरंगः ॥ ६६ ॥

॥ अथ विस्फोटाधिकारः ॥

अग्निदग्ध इव स्फोटा विस्फोटाः स्युर्ज्वरानना ॥
क्वचित्सर्वत्र देहेषु रक्तपित्तसमुद्भवाः ॥ १ ॥

किरातादि गण क्वाथः ।

किराततिक्तकारिष्टपटोलाम्बुदवासकम् ॥
पटोलपर्पटोशीरत्रिफला कौटजान्वितं ॥
किरातादिरयं प्रोक्तो गणो विस्फोटनाशनः ॥ २ ॥

पंचतिक्त घृतं ।

पटोलसप्तच्छदनिंबवासा
फलत्रिकच्छिन्नरुहाविपक्वं ॥
तत्पंचतिक्त घृतमाशु हन्यात्
त्रिदोषविस्फोटविसर्पकंडूः ॥ ३ ॥

पटोलादि क्वाथः ।

पटोलामृतभूनिंबवासकारिष्टपर्पटैः ॥
खदिराब्दयुतैः क्वाथो विस्फोटज्वरशांतये ॥ ४ ॥

चन्दनादि लेपः ।

चंदनं नागपुष्पं च तंडुलीयकवारिणा ॥
शिरीषवल्कलं जाती लेपः स्याद्दाहनाशनः ॥ ५ ॥

इतिश्री योगतरंगिणी संहितायां विस्फोटचिकित्सा नाम
षट्षष्टितमस्तरंगः ॥ ६६ ॥

॥ अथ सप्तषष्टितमस्तरंगः ॥ ६७ ॥

॥ अथ स्नायुकरोगाधिकारः ॥

शाखासु कुपिता दोषाः शोफं कृत्वा विसर्पवत् ॥
कुर्युस्तंतुनिभान्कीटान्स्नायवस्ते निरूपिताः ॥ १ ॥

कुष्ठादि योगः ।

कुष्ठरामठशुंठीभिः कल्कं शिग्रुरसान्वितम् ॥
पानलेपनयोगेन तंतुकीटविनाशनम् ॥ २ ॥
गव्यं सर्पिस्त्र्यहं पीत्वा निर्गुंडीस्वरसं त्र्यहम् ॥
पिबेत्स्नायुकमत्युग्रं निहंत्येव न संशयः ॥ ३ ॥
शिग्रुमूलदलैः पिष्टैः कांजिकेन ससैन्धवैः ॥
लेपनं स्नायुरोगाणां शमनं परमुच्यते ॥ ४ ॥

मसूरिका ।

मसूराकृतिसंस्थानाः पिडकाः स्युर्मसूरिकाः ॥
आसां पूर्वं ज्वरः कंडूर्गात्रभंगो रतिर्भ्रमः ॥ ५ ॥

अमृतादि क्वाथः ।

अमृतवृषपटोलं मुस्तकं सप्तपर्णं
खदिरमसितवेत्रं निंबपत्रं हरिद्रे ॥
विविधविषविसर्पान्कुष्ठविस्फोटकण्डू-
रपनयति मसूरीः शीतपित्तं ज्वरं च ॥ ६ ॥

पटोलादि क्वाथः ।

पटोलमूलारुणतंडुलानां
तथैव धात्रीखदिरेण युक्तं ॥
पिबेज्जलं सुक्वथितं सुशीतं
मसूरिकारोगविनाशनं च ॥ ७ ॥

यस्तु कोद्रवको नाम कफमारुतकोपजः ॥
सप्ताहाद् वा दशाहाद्वा स्वयमेवोपशाम्यति ॥ ८ ॥
दिवसैरेकविंशत्या शाम्यंति च मसूरिकाः ॥
स्तोत्रपाठग्रहजपैर्धर्मपावनकर्मभिः ॥ ९ ॥

इतिश्री योगतरंगिणी संहितायां स्नायुक मसूरिकाचिकित्सा नाम सप्तषष्ठितमस्तरंग ॥ ६७ ॥

॥ अथ अष्टषष्ठितमस्तरंग ॥ ६८ ॥

॥ अथ क्षुद्ररोगाधिकारः ॥

क्षुद्ररोगाः समासेन चतुस्त्रिंशत्प्रकीर्तिताः ॥
ग्रंथभूयस्त्वभीत्या च वक्ष्यामि कियतोऽत्र तान् ॥ १ ॥
तत्राजगल्लिकामामां जलौकाभिरुपाचरेत् ॥
विवृतामिंद्रलुप्तं च गर्दभीं जालगर्दभीं ॥ २ ॥
इरिवेल्लीं गंधनाम्नीं जयेत्पित्तविसर्पवत् ॥
मधुरौपधिसिद्धेन सर्पिषा च जयेद् व्रणम् ॥ ३ ॥
रक्तावसेकैर्बहुभिः स्वेदनैरपतर्पणैः ॥
जयेद्विदारिकां लेपैः शिग्रुदेवद्रुमोद्भवैः ॥ ४ ॥
पनसिकां कच्छपिकां तेनैव विधिना जयेत् ॥
साधयेत्कठिनानन्यान्शोथान्दोषसमुद्भवान् ॥ ५ ॥
अंधालजीं कच्छपिकां तथा पाषाणगर्दभीम् ॥
सुरदारुशिलाकुष्टैः, स्वेदयित्वा प्रलेपयेत् ॥ ६ ॥
कफमारुतसंभूते लेपः पाषाणगर्दभे ॥
शस्त्रेणोत्कृत्य वल्मीकं क्षाराग्निभ्यां प्रसाधयेत् ॥ ७ ॥

मनःशिलालभल्लातसूक्ष्मैलागुरुचंदनैः ॥
जातीपल्लवचुर्णैश्च निंबतैलं विपाचयेत् ॥ ८ ॥
वल्मीकं नाशयेत्तद्धि बहुच्छिद्रं बहुव्रणम् ॥
शिरां च पाददारीषु वेधयेत्तलशोधनीम् ॥ ९ ॥
स्नेहस्वेदोपपन्नौ तु पादावालेपयेन्मुहुः ॥
मधूच्छिष्टवसामज्जाघृतक्षारैर्विमिश्रितैः ॥ १० ॥
सज्र्जाह्वसिंधूद्भवयोश्चूर्णं मधुघृतप्लुतम् ॥
निर्मथ्य कटुतैलाक्तं हितं पादप्रमार्जनम् ॥ ११ ॥
करंजबीजं रजनी कासीसं मधुकं मधु ॥
रोचना हरितालं च लेपोऽथमलसे हितः ॥ १२ ॥
दहेत्कदरमुद्धृत्य तैलेन दहनेन वा ॥
चिप्यमुष्णांबुना स्विन्नामाकृष्याभ्यज्य तं व्रणम् ॥ १३ ॥
दत्वा सर्जरसं चूर्णं बुद्ध्या व्रणवदाचरेत् ॥
स्वरसेन हरिद्रायाः पात्रे कृष्णायसेऽभयाम् ॥ १४ ॥
संस्थाप्य तज्जकल्केन लिंपेच्चिप्यं मुहुर्मुहुः ॥
निंबोदकेन वमनं पद्मिनीकंटके हितम् ॥ १५ ॥
निंबोदककृतं सर्पिः सक्षौद्रं पानमिष्यते ॥
अहिपूतनके धात्र्याः पूर्वं स्तन्यं विशोधयेत् ॥ १६ ॥
त्रिफलाखदिरक्वाथो व्रणानां धावने हितः ॥
रसांजनं विशेषेण पानलेपनयोर्हितम् ॥ १७ ॥
गुदभ्रंशे गुदं स्नेहैरभ्यज्याशु प्रवेशयेत् ॥
प्रविष्टे स्वेदयेच्चापि बद्धं गोफणया दृढम् ॥ १८ ॥
कोमलं पद्मिनीपत्रं यः खादेच्छर्करान्वितम् ॥
चर्मकीलं जतुमणिं माषकं तिलकालकं ॥
उद्धृत्य शस्त्रेण दहेत्क्षाराग्निभ्यामशेषतः ॥ १९ ॥

युवान पिडकादय।

युवानपिडिका न्यच्छं नीलिकाव्यंगशर्कराः ॥
शिराव्यधैः प्रलेपैश्च जयेदभ्यंजनैस्तथा ॥२०॥
लोध्रधान्यवचालेपस्तारुण्यपिडिकापहः ॥
व्यंगेषु चार्जुनत्वग्वा मंजिष्ठावृषमाक्षिकैः ॥२१॥
लेपः सनवनीतो वा श्वेताश्वखुरजा मसी ॥
रक्तचंदनमंजिष्ठाकुष्ठं लोध्रं तथैव च ॥२२॥
वटांकुराश्च व्यंगघ्ना बहुकांतिप्रदास्तथा ॥
केवलान्पयसा पिष्ट्वा तीक्ष्णान् शाल्मलिकंटकान् ॥२३॥
आलिप्त त्र्यहमेतेन भवेत्पद्मोपमं मुखम् ॥
पुराणमथ पिण्याकं पुरीषं कुक्कुटस्य च ॥२४॥
मूत्रपिष्टः प्रलेपोऽयं शीघ्रं हन्यादरुंषिकां ॥
हरिद्राद्वयमंजिष्ठा त्रिफलारिष्टचंदनैः ॥
एतत्तैलमरुंषीणां सिद्धमभ्यंजने हितम् ॥२५॥

इन्द्रलुप्तं।

इन्द्रलुप्ते शिरां विध्वा शिलाकासीसतुत्थकैः ॥
लेपयेत्परितः कल्कैस्तैलमभ्यंजने हितम् ॥२६॥
कुटनटशिखाजातीकरंजकरवीरकैः ॥
अवगाढं पद, चापि प्रच्छाद्य च पुनः पुनः ॥२७॥
गुंजाफलैश्चिरं लिंपेत्केशभूमिं समंततः ॥
इन्द्रलुप्तापहो लेपो मधुना बृहतीरसः ॥२८॥
हस्तिदंतमसीं कृत्वा छागक्षीरै रसांजनम् ॥
रोमाण्यनेन जायते लेपात्पाणितलेष्वपि ॥२९॥

पलितं।

लोहमलामलकल्कैः सजपाकुसुमैर्नरः सदा स्नायी ॥
पलितानीह न पश्यति गंगास्नायीव नरकाणि ॥३०॥

मंजिष्ठादि तैलं ।

मंजिष्ठा मधुकं लाक्षा मातुलुंगश्च यष्टिका ॥
कर्षप्रमाणैरेतैस्तु तैलस्य कुडवं तथा ॥२१॥
आजं पयस्तु द्विगुणं शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥
नीलिका पिडिका व्यंगमभ्यंगादेव नाशयेत् ॥२२॥
मुखं प्रसादोपचितं नीलकाकार्श्यवर्जितम् ॥
सप्तरात्रप्रयोगेण भवेत्कनकसुन्दरम् ॥२३॥

गुदनिर्गमः ।

कोमलं पद्मिनीपत्रं यः खादेच्छर्करान्वितं ॥
एतन्निश्चित्य निर्दिष्टं न तस्य गुदनिर्गमः ॥२४॥

इतिश्री योगतरंगिणी संहितायां क्षुद्ररोगचिकित्सा नाम
अष्टाषष्टितमस्तरंगः ॥ ६८ ॥
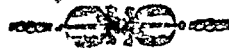
॥ अथ एकोनसप्ततितमस्तरंगः ॥ ६९ ॥

॥ अथ मुखरोगाधिकारः ॥

सरक्तः कुपितः श्लेष्मा करोत्यास्ये गदान्बहून् ॥
दौर्गंध्यपिडिकापाकोपजिह्वादीन्समासतः ॥ १ ॥

इरिमेदादि तैलं ।

अब्द्रोणाद्रिमेदवल्कलशतात्क्वाथे चतुर्थांशके
गोदुग्धे सजतुद्रवे च विपचेदेभिश्च कल्कीकृतैः ॥
पित्तलागुरुगैरिकैः सखदिरैः कंकोलजातीफल-
न्यग्रोधैः सलवंगपुष्पजतुभिः कर्पूरलोध्रान्वितैः ॥ २ ॥

तांबूलमर्ध्यस्थितचूर्णकेन
दग्धं मुखं यस्य भवेत्कथंचित ॥
तैलेन गंडूषमसौ विदध्या-
दम्लारनालेन पुनःपुनर्वा ॥१५॥

फिन्नरकंठ लेहः ।

जातीदलैलामधुमातुलुंग-
पत्रैः सलाजैर्युतपिप्पलीकैः ॥
कृतोवलेहः कुरुते नराणां
कंठे ध्वनिं किन्नरकंठतुल्यं ॥१६॥

कुंकुमादि तैल–युवतीकान्तिद ।

कुंकुमं चंदन पत्रमुशीरं कमलोत्पलम् ॥
गोरोचना हरिद्रे द्वे मंजिष्ठामधुयष्टिका ॥१७॥
सारिवालोध्रपत्तंगाः कुष्ठं गैरिककेसरे ॥
स्वर्णवल्ली प्रियगुश्च कालेयं रक्तचंदनम् ॥१८॥
एभिरक्षमितैर्भागैस्तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥
अभ्यङ्गाद्राजपत्नीनां ये चान्ये धनिनो नराः ॥१९॥
तिलकाः पिडिका व्यंगा नीलिका मुखदूषिका ॥
नश्यत्यनेन देहस्य दुश्छाया च विवर्णता ॥२०॥
नाशयित्वा च जनयेद्रूपं चातिमनोहरम् ॥
पद्मकेसरवर्णाभं युवतीकान्तिदं मुखं ॥२१॥

इतिश्री योगतरंगिणी संहितायां मुखरोगचिकित्सा नाम
एकोनसप्ततितमस्तरंगः ॥६९॥
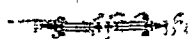
अथ सप्ततितमस्तरंगः ॥ ७० ॥

॥ अथ कर्णरोगाधिकारः ॥

करोति विगुणो वायुर्मलं संगृह्य कर्णयोः ॥
सकफः पाकबाधिर्यशूलस्रावादिकान्गदान् ॥ १ ॥

कर्णरोग हर तैलं ।

तैलं कांजिकबीजपूरकरसक्षौद्रैः समूत्रैः शृतं ॥
स्यात्क्षौद्रार्द्रकशिग्रुमूलकदलीकंदद्रवैर्वा सवैः ॥
शुंठीतुंबुरुहिंगुभिः शृतमथ स्यात्कर्णशूलापहं ॥
सिद्धं बिल्वगरेन साजपयसा मूत्रेण बाधिर्यजित् ॥ २ ॥

श्रवणामयहर तैलं ।

हिंग्वब्ददारुमिसिमूलकभस्मभूर्ज-
त्वक्क्षारसिंधुरुचकोद्भिदशिग्रुविश्वैः ॥
सस्वर्जिकाविडवचांजनमातुलुंगैः
रंभारसैः समधुसुक्तमिदं विपक्वम् ॥ ३ ॥
तैलं प्रसिद्धमिति तच्छ्रवणामयघ्नं
कर्णप्रसादवधिरत्वहरं नराणाम् ॥
भ्रूमस्तकश्रवणशष्कुलिकांतरेषु
शूलापहं चरकशास्त्रचिकित्सितोक्तम् ॥ ४ ॥

कर्णामृत तैलम् ।

रामठं निंबपत्राणि फेनं सागरसंभवम् ॥
एतानि समभागानि सदृभिर्देयं सितं विषम् ॥ ५ ॥
गोमूत्रेण समायुक्तं कटुतैलं विपाचयेत् ॥
तेनैव पूरयेत्कर्णं नरकुंजरवाजिनाम् ॥ ६ ॥

कर्णरोगं निहंत्याशु लेपनाच्छिरसो गदान् ॥
नाम्ना कर्णामृतं तैलं ब्रह्मणा निर्मितं पुरा ॥७॥

कर्णशूलहर प्रयोगः ।

आर्द्रकसूर्यावर्तकसौभांजनकमूलकस्वरसाः ॥
मधुतैलसैंधवयुताः पृथगुक्ताः कर्णशूलहराः ॥८॥
अर्कस्य पत्रं परिणामपीत-
माज्येन लिप्तं शिखिना च तप्तम् ॥
आपीडय तोयं श्रवणे निषिक्तं
निहंति शूलं बहुवेदनं च ॥९॥
तीव्रशूलातुरे कर्णे सशब्दे क्लेदवाहिनि ॥
छागमूत्रं प्रशंसंति कोष्णं सैंधवसंयुतं ॥१०॥
हिंगुतुंबुरुशुंठीभिः कटुतैलं विपाचयेत् ॥
कर्णशूले प्रणादे वा पूरणं हितमुच्यते ॥११॥

अपामार्ग तैल ।

अपामार्गक्षारजले तत्कृतकल्केन साधितं तिलं ॥
अपहरति कर्णनादं बाधिर्यं चापि पूरणतः ॥१२॥

शम्बूककीट तैलं ।

शंबूकस्य तु मांसेन कटुतैलं विपाचयेत् ॥
तस्य पूरणमात्रेण कर्णनाडी प्रशाम्यति ॥१३॥

क्षार तैलं कृष्णात्रेयात् ।

शुष्कमूलकशुंठीनां क्षारो हिंगु सनागरं ॥
सुक्तं चतुर्गुणं दद्यात्तैलमेतद्विपाचयेत् ॥१४॥
बाधिर्यं कर्णशूलं च पूयस्रावं च कर्णयोः ॥
कृमयश्चापि नश्यंति तैलस्यास्य च पूरणात् ॥१५॥

स्वर्जिकामूलकं शुण्ठं हिंगु कृष्णा महौषधम् ॥
शतपुष्पा च तैस्तैलं मस्तुपक्वं चतुर्गुणम् ॥१६॥
कर्णनादं च बाधिर्यं शूलं चास्य व्यपोहति ॥
बाधिर्यं बालवृद्धोत्थं चिरोत्थं च विवर्जयेत् ॥
स्नानं शीतांबुपानं च मैथुनं च विसर्जयेत् ॥१७॥
महिषीनवनीतयुतं सप्ताहं धान्यराशिपर्युषितम् ॥
नवमुसलिकंदचूर्णं वृद्धिकरं शिश्नकर्णपालीनाम् ॥१८॥
शतावरीवाजिगन्धापयस्यैरंडबीजकैः ॥
तैलं विपक्वं सक्षीरं शिश्नपालीविवृद्धिकृत् ॥१९॥
इति शतावरीतैलम् ॥

इतिश्री योगतरंगिणी संहितायां कर्णरोगचिकित्सा नाम सप्ततितमस्तरंगः ॥ ७० ॥
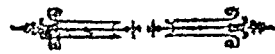
अथ एकसप्ततितमस्तरंगः ॥ ७१ ॥

॥ अथ नेत्ररोगाधिकारः ॥

अंजनं पूरणं क्वाथपानं स्नानेन शस्यते ॥
आचतुर्थीदिनादामअभिष्यंदेऽपि लोचने ॥ १ ॥
गंडूषांजननस्यादिहीनानां कफकोपतः ॥
षट्सप्ततिर्नेत्ररोगा दुःसहाः स्युरुपेक्षिताः ॥ २ ॥

रसादि वर्त्तिः रसरत्नप्रदीपे ।

रसटंकणसिंधूत्थव्योषखर्परतुत्थकैः ॥
सचेतसाम्लैः सक्षौद्रैर्वर्तिर्नेत्रगदापहा ॥ ३ ॥
लंघनालेपनस्वेदशिराव्यधनरेचनैः ॥
उपाचरेदभिष्यंदमंजनाश्च्योतनादिभिः ॥ ४ ॥

अक्षिकुक्षिभवा रोगाः प्रतिश्यायव्रणज्वराः ॥
पंचैते पंचरात्रेण रोगा नश्यंति लंघनात् ॥ ५ ॥

पट्सप्ततिर्लोचनजा विकारा-
स्तेषामभिष्यंदसमुद्भवानां ॥
श्लेष्माश्रयत्वादिह लंघनं प्राक्
प्रशस्यते मुद्गरसौदनं च ॥ ६ ॥
आश्चयोतने सत्रिफला सलोध्रा
सचंदना दारुनिशा प्रशस्ता ॥
आलेपने चंदनगैरिकं च
सताक्ष्यशैलाभयमेतदिष्टम् ॥ ७ ॥
अतः परंच त्रिफलाकषायः
पाने पटोलाद्यफलत्रिकाद्ये ॥
घृते हिते कायविशोधनं च
मरक्तसंशोधनमंजनादि ॥ ८ ॥

ततः सपक्वदोषस्य प्रासमंजनमाचरेत् ॥
हेमंते शिशिरे चैव मध्याह्नेऽजनमिष्यते ॥ ९ ॥
पूर्वाह्णे चापराह्णे च ग्रीष्मे शरदि चेष्यते ॥
वर्षास्वनभ्रे नात्युष्णे वसंते तु सदैव हि ॥१०॥
प्रथमं सव्यमंजीयात्पश्चाद्दक्षिणमंजयेत् ॥
शलाकया सांजनया तच्चांतर्नयनं स्पृशन् ॥११॥

पटोलादि घृत ।

साद्रोणैः सपटोलनिंबकटुकाद्रायंतिकाचंदनै-
र्दार्वीयासगुणैः फलत्रयशतस्यार्द्धेन तुल्यैः शृतैः ॥
कृष्णाचन्दनकौटजाब्दमधुकैर्भूलिंबयुक्तैः शृतम्
श्रोत्रघ्राणमुखाक्षिरुक्प्रशमनं सर्पिः पटोलादिकम् ॥१२॥

महात्रिफला घृतं ।

त्रिफलाया रसप्रस्थं प्रस्थं भृंगरसस्य च ॥
वृषस्य च रसप्रस्थं शतावर्याश्च तत्समम् ॥१३॥
आजं क्षीरं गुडूच्याश्च आमलक्या रसं तथा ॥
उत्पलं मधुकं क्षीरं काकोली त्रिफला कणा ॥१४॥

द्राक्षासितोपला व्याघ्री चैषां कल्कैर्विपाचयेत् ॥
गव्यं घृतं च तत्सिद्धं महात्रैफलनामकम् ॥१५॥
ऊर्ध्वपानमधःपानं मध्यपानं च शस्यते ॥
यावन्तो नेत्ररोगाः स्युस्तावन्तोप्यपकर्षति ॥१६॥

नक्तांध्ये तिमिरे काचे नीलिकापटलेर्बुदे ॥
अभिष्यंदेधिमंथे च पक्ष्मकोपे च दारुणे ॥१७॥
नेत्ररोगेषु सर्वेषु रक्तपित्तकफेषु च ॥
अदृष्टिं मंददृष्टिं च कफवातप्रदूषिताम् ॥१८॥

स्रवतो वातपित्ताभ्यां सकंड्वासन्नदूरदृक् ॥
पटुदृष्टिकरं सद्यो बलवर्णाग्निवर्धनम् ॥
सर्वनेत्रामयं हन्यान्महात्रैफलकं घृतम् ॥१९॥

लघु त्रिफला घृतं राजमार्तंडे ।

क्वाथेन कल्कविधिना च फलत्रिकस्य
पक्कं घृतं जयति नेत्ररुजः समस्ताः ॥
कुष्ठप्रमेहमुखकर्णकपोलनासा-
रोगान्भगंदरगतिव्रणगंडमालाः ॥२०॥

श्वेतकरवीरकिसलयविच्छेदरसेन पूरिताक्षस्य ॥
तत्कालसमुत्पन्नो नयने कोपः शमं याति ॥२१॥

लाक्ष्योतन ।

सर्सैंधवं लोध्रमथाज्यभ्रष्टं
सौवीरपिष्टं सितवस्त्रबद्धम् ॥
आश्च्योतनं तन्नयनस्य कुर्यात्
कण्डूञ्जानाहविनाशहेतुः ॥२२॥

निम्बादि गुटी ।

निंबत्वचोदुंबरवल्कलेन
धान्यारियष्टीमधुचन्दनेन ॥
पिंडीकृतातीव हिताक्षिकोपे
वातेन पित्तेन कफेन वापि ॥२३॥

हरीतक्यादि लेप ।

हरीतकीसैंधवतार्क्ष्यशैलैः
सगैरिकैः स्वच्छजलप्रपिष्टैः ॥
बाह्ये प्रलेपं नयनस्य कुर्यात्
सद्योक्षिरोगोपशमार्थमेन ॥२४॥

अभिष्यन्दहर क्काथ ।

वासामृताव चाव्याघ्रीपटोलत्रिफलादलैः ॥
प्रतिमान्पाययेत्क्वाथ सर्वाभिष्यंदनाशनम् ॥२५॥

नेत्रपूरण । ।

निशाद्वत्रिफलादार्वीसितामधुसमन्वित ॥
अभिवाताक्षिशूलेघ्न नारीक्षीर सुपूरितम् ॥२६॥

कृष्णात्रेयात् ॥

प्रत्यक्पुष्पीमूल ताम्रमये भाजने ससिंधूत्थम् ॥
मधुना सहितं घृष्टं चक्षुःकोप हरत्याशु ॥२७॥

वातारिपत्रे पुटपाचितानां
द्रवं दलानां वरमल्लिकायाः ॥
संमर्दयेत्सिंधुफलेन कांस्ये
तेनांजनेनांजितलोचनस्य ॥
सद्योक्षिनिष्यंदमकांडकंडू-
रथाधिमंथादिगदान्निहंति ॥२८॥
आटरूषाभयानिंबधात्रीमुस्ताक्षकूलकैः ॥
स्रावरक्तकफं हन्ति चक्षुष्यं वासकादिकम् ॥२९॥

वासादि क्वाथः ।

वासा घनं निंबपटोलपत्रं
तिक्तामृता चंदनवत्सकं च ॥
कालिंगदार्वीदहनं च शुंठी
भूनिंबधात्री त्रिजया बिभीतम् ॥३०॥
तथा यवक्वाथमथाष्टशेषं
पिबेदिमं पूर्वदिने कषायम् ॥
तैमिर्यकंडूपटलार्बुदं च
शुक्रं तथा सव्रणमव्रणं वा ॥
दाहं सरागं सरुजं सपिल्लं
हन्यात्समस्तानपि नेत्ररोगान् ॥३१॥

पटोलादिगण क्वाथः ।

पटोलवासकारिष्टगुडूचीत्रिफलाघनं ॥
पंचमूली सयष्ट्याह्वा चंदनं विश्वभेषजम् ॥३२॥
पटोलादिर्गणः प्रोक्तः सर्वनेत्रामयापहः ॥
वातिकं पैत्तिकं चैव श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् ॥३३॥
स्रावं रक्तप्रकोपं च पटोलादिर्व्यपोहति ॥३४॥

तिमिरहर कषाय. ।

चित्रकमूलत्रिफलापटोलयवसाधितं पिबेद्भः ॥
सघृत निशि चक्षुष्यं तिमिरं च विशेषतो हृति ॥३५॥

शुक्रहर योगः ।

धात्रीफलं निंबकपित्थपत्र
यष्टयाह्वलोध्रं खदिरं तिलाश्च ॥
क्वाथः सुशीतो नयने निषिक्तः
सर्वप्रकार विनिहंति शुक्रम् ॥३६॥

शुक्रहर वटक्षीर योग. ।

वटक्षीरेण संयुक्त श्लक्ष्ण कर्पूरज रजः ॥
क्षिप्रमंजनतो हंति शुक्र चातिघनोन्नतम् ॥३७॥

पुष्पहरावर्ति' ।

किंशुकस्वरसभावित मुहु
र्नक्तमालतरुबीजजं रजः ॥
वर्तियोगविधिना विनाशय-
त्याशु नेत्रगतपुष्पपांडुनाम् ॥३८॥
यम्त्रिफलं चूर्णमपथ्यवर्ज्जी
सायं समश्नाति समाक्षिकाज्यं ॥
स मुच्यते नेत्रगतैर्विकारै
र्भृत्यैर्यथा क्षीणधनो मनुष्यः ॥३९॥

इति मतिमुकुरात् ॥

जाता रोगा विनश्यति न भवति कदाचन ॥
त्रिफलायाः कषायेण प्रातर्नयनधावनात् ॥४०॥

चंद्रोदया वर्ति' ।

हरितकी वचा कुष्ठं पिप्पली मरिचानि च ॥
बिभीतकस्य मज्जा च शंखनाभिर्मनःशिला ॥४१॥

सर्वमेतत्समीकृत्य छागीक्षीरेण पेषयेत् ॥
नाशयेत्तिमिरं काचं पटलान्यर्बुदानि च ॥४२॥
अधिकान्यपि मांसानि रात्र्यंधं पुष्पकं तथा ॥
वर्तिश्चंद्रोदया नाम्ना नृणां नेत्रप्रदायिनी ॥४३॥

सौगतांजनं ।

निशाद्वयाभयामांसीकुष्ठकृष्णा विचूर्णितैः ॥
सर्वनेत्रामयान्हन्यादेतत्सौगतमंजनम् ॥४४॥

नयनामृतांजनं ।

रसेंद्रभुजगौ तुल्यौ तयोर्द्विगुणमञ्जनम् ॥
ईषत्कर्पूरसंमिश्रमंजनं नयनामृतम् ॥४५॥
तिमिरं पटलं काचं शुक्रममर्बुदानि च ॥
क्रमात्पथ्याशिनो हंति तथान्यानपि दृग्गदान् ॥४६॥

कामलाहरः ।

हिंगुना द्रोणपुष्प्या वा रसेनांजितलोचनः ॥
अचिरात्कामलां व्याधिं नरो जयति निश्चितम् ॥४७॥
गुंजामूलं वस्तमूत्रेण पिष्टं
निर्घृष्टं वा वारिणा भद्रमुस्ता ॥
आंध्यं सद्यस्तैमिरं हंति
पुंसामत्युद्गाढं नेत्रयोरंजनेन ॥४८॥
कलितरुफलमज्जास्निग्धपट्टे प्रपिष्टा
हरति नयनपुष्पं स्तन्ययोगांजनेन ॥

रात्र्यांध्यहर योगः ।

श्रवणमलसमेतं मारिचं पंकमक्ष्णोः
क्षपयति किल नैशीमंधतां स्त्रीप्रियोक्तम् ॥४९॥
इति वैद्यदर्शनात्

गुटिकाञ्जन ।

पिप्पली त्रिफला लाक्षा लोध्रऋ च ससैंधव ॥
भृंगराजरसे घृष्ट गुटिकांजनमिष्यते ॥५०॥
अर्म सतिमिरं काच कंडूं शुक्रं तथार्जुनम् ॥
अंजनं नेत्रजान्रोगान्निहन्त्येव न संशयः ॥५१॥

इति अश्विनी कुमार संहितायां ॥

श्वेतस्य कांचनारस्य मूलं दुग्धेन पोषितः ॥
घृष्ट ताम्रेजित हंति सद्यो नेत्ररुजं पृथुम् ॥५२॥
तुलस्या बिल्वपत्रस्य रसौ ग्राह्यौ समांगकौ ॥
ताभ्यां तुल्य पयो नार्य्यास्त्रितय कांस्यपात्रके ॥५३॥
गजधरया दृढं मर्द्य ताम्रेण प्रहरं पुनः ॥
कज्जल तत्समुत्पाद्य तेनांजितविलोचनः ॥
सद्यो नेत्ररुजं हृति समूलां पाकसंभवाम् ॥५४॥
भुक्त्वा पाणितले घृष्ट्वा चक्षुषो यदि दीयते ॥
अचिरेणैव तद्वारि तिमिराणि व्यपोहति ॥५५॥

चंद्रकला वर्ति. ।

मुक्तापिष्टिमिताभ्रपौररसऋस्त्रोतोंजनैर्नाडजा-
तुल्यांभोभवशंखनाभिचपलाभृंगोत्तमामज्जभिः ॥
वर्त्तिश्चंद्रकला निहंति तिमिरं चित्र किमत्र स्फुट
कंडूमंडलकाचशुक्रतिमिरांभःस्रावपिल्लानपि ॥५६॥

नक्तांध्यहरी वर्ति. ।

हरेणुकां सैंधवसंप्रयुक्तां
स्त्रोतोंजयुक्तामुपकुल्यया च ॥
पिष्ट्वाजमूत्रेण कृता च
वर्त्तिर्नक्तांध्यविध्वंसकरी नराणाम् ॥५७॥

नेत्रसंजीवनी । नागशलाका ।

निर्वापयेत्त्रैफलके कषाये
नागं विधिज्ञः शतधा हुताशे ॥
संताप्य संताप्य ततः शलाकां
कृत्वास्य शुद्धेन रसेन लिंपेत् ॥५८॥

तयांजिताक्षो मनुजः क्रमेण
सुपर्णदृष्टिर्भवति प्रसह्य ॥
जयेदभिष्यंदमथाधिमंथ-
मर्माजुनौ वै तिमिराणि पिल्लान् ॥५९॥

शाकाम्लमद्यमत्स्यांश्च धूममैथुनमाषकान् ॥
तीक्ष्णानि धूलिं घर्मं च चक्षूरोगी विवर्जयेत् ॥६०॥

इतिश्री योगतरंगिणी संहितायां नेत्ररोगचिकित्सा नामैक-
सप्ततितमस्तरंगः ॥ ७१ ॥

अथ द्विसप्ततितमस्तरंगः ॥ ७२ ॥

॥ अथ नासारोगः ॥

अर्शांसि पीनसः स्रावः क्वचिच्छोणितपूययोः ॥
रोगा नसोद्भवास्तेषां क्षयो नस्यादिभिर्भवेत् ॥ १ ॥

गुडमरिचविमिश्रं पीतमाशु प्रशामं
हरति दधि नराणां पीनसं दुर्निवारम् ॥
यदि तु सघृतमन्नं क्षुण्णगोधूमचूर्णैः
कृतमपहरतेसौ स्यात्कुतोऽस्यावकाशः ॥ २ ॥

पिवति शिशिरमंभो यः प्रभूतं निशायां
तदनु च शयनीयेधिष्ठितो याति निद्राम् ॥
ध्रुवमतिविषमोपि क्षीयतेस्य त्रिरात्रात्
अधिगतपरिपाकः पीनसः स्निग्धहेतुः ॥ ३ ॥
नवोत्पन्नं प्रतिश्यायं स्नातस्य हस्तेऽचिरात् ॥
मरिचं क्षौद्रसंयुक्तं सगुड दधि भक्षितं ॥ ४ ॥

चित्रकहरीतकी अवलेह ।

चत्वार्यत्र शतानि चित्रकजटायुक्पंचमूलामृता-
धात्रीणामुदकार्मणैस्त्रिभिरपां द्रोणेन च क्वाथयेत् ॥
पादस्थे क्वथने गुडस्य च शत पथ्याढकेनान्वित
पक्तव्यं गुनशीतले च मधुनः प्रस्थार्द्धमात्रं क्षिपेत् ॥ ५ ॥
व्योषस्य त्रिसुगंधिकस्य च पलान्यत्रैव षट् प्रक्षिपे-
त्क्षारस्यार्द्धपल रसायनमिद संसेव्यते सर्वदा ॥
शोषश्वासप्रलापकासवमथुश्लेष्मप्रतिश्यायिभिः
क्षीणोरःक्षतहिक्किभिः कफशिरोरुग्भिः प्रणष्टाग्निभिः॥ ६ ॥

पीनस हर तैलं ।

पाठाद्विरजनीमूर्वापिप्पलीजातिपल्लवैः ॥
दंत्या च तैल संसिद्धं नस्यतः पीनसापहम् ॥ ७ ॥

हिंग्वादि तैलम् ।

हिंगुव्योषविडंगकट्फलवचारुक्तीक्ष्णगंधायुतै-
र्लाक्षाश्वेतपुनर्नवाकुटजजैः पुष्पोद्भवैः सौरसैः ॥
इत्येभिः कटुतैलमेतदनले मंदे समूत्रं शृतं
पीतं नासिकया यथाविधि भवेन्नासामयिभ्यो हितम् ॥ ८ ॥

इतिश्री योगतरंगिणी संहितायां नासारोगचिकित्सा नाम
द्विसप्ततितमस्तरंगः ॥ ७२ ॥

अथ त्रिसप्ततितमस्तरंगः ॥ ७३ ॥

॥ अथ शिरोरोगचिकित्सा ॥

अकालपलितं पीडासूर्यावर्तार्द्धभेदकाः ॥
इत्यादयः शिरोरोगास्तान्यथादोषमाचरेत् ॥ १ ॥

मस्तक शूले ।

कुष्ठमेरंडजं मूलं लेपात्काञ्जिकपेषितम् ॥
शिरोऽर्तिं नाशयत्याशु पुष्पं वा मुचकुंदजम् ॥ २ ॥

मस्तके लेपः ।

देवदारुनतं कुष्ठं नलदं विश्वभेषजम् ॥
लेपः कांजिकसंपिष्टस्तैलयुक्तः शिरोर्तिनुत् ॥ ३ ॥

सूर्यावर्ते ।

सारिवोत्पलकुष्ठानि मधुकं चाम्लपेषितम् ॥
सर्पिस्तैलयुतो लेपः सूर्यावर्तार्द्धभेदयोः ॥ ४ ॥

अर्धभेदके नस्यं ।

सितोपलायुतं घृष्टं मदनं गोपयोन्वितम् ॥
नस्यतोनुदिते सूर्ये निहंत्येवार्द्धभेदयोः ॥ ५ ॥

मदनादि नस्यं ।

स्मरफलतिलपर्णीबीजसंधुककमूला
कुशदलघटबीजत्वग्रजोऽर्द्धांशतुल्याम् ॥
प्रधमनविधिना तद्दत्तमात्रं शिरोरु-
क्प्रलपनकफतंद्रासन्निपातं निहन्यात् ॥ ६ ॥

शर्करादि नस्यं ।

सशर्करं कुंकुममाज्यभृष्टं
नस्यं विधेयं पवनासृगुत्थे ॥
भ्रूकर्णनासाक्षिशिरोर्धशूले
दिनादिवृद्धिप्रभवे च रोगे ॥ ७ ॥

षडबिन्दु तैलं ।

एरंडमूलं तगरं शताह्वा
जीवंतिरास्ना सहसैंधवं च ॥
भृंग विडंगं मधुयष्टिका च
विश्वौषधं कृष्णतिलस्य तैलं ॥८॥
आज पयस्तैलचतुर्गुणं च
चतुर्गुणं भृंगरसं च दत्वा ॥
पक्वं च षड्बिंदव एतदीया
नस्येन हन्युः शिरसो विकारान् ॥९॥
च्युतांश्च केशांश्चलितांश्च दंता-
श्चिपद्धमूलांश्च दृढीकरोति ॥
सुपर्णदृष्टिप्रतिमां च दृष्टिं
बाह्वोर्बलं चाप्यधिकं ददाति ॥१०॥

केशरोहण तैलं ।

वटप्ररोहकेशिन्याश्चूर्णेनादित्यपाचितम् ॥
गुडूचीस्वरसैस्तैलमभ्यगात्केशरोहणम् ॥११॥

केशवर्धनं ।

मांसी कुष्ठ तिलाः कृष्णाः सारिवामूलमुत्पलं ॥
सक्षौद्रक्षीरपिष्टानि केशसंवर्धनं परम् ॥१२॥
मार्कवस्वरसभावितगुंजाबीजचूर्णपरिपाचिततैलम् ॥
मिश्रित त्रुटिजटासुरकाष्ठैः केशभारजननं जनतायाः ॥१३॥

केशपतन रोधन ।

मांसीबलाबकुलजामलकैः सकुष्ठैः
पिष्टैः प्रलिप्तशिरसो न पतंति केशाः ॥
स्निग्धायतातिकुटिलाकृतयो भवंति
ये प्रच्युता अपि मिलिंदकुलप्रकाशाः ॥१४॥

इन्द्रलुप्तहर लेपः ।

बृहतीफलरसपिष्टं गुंजायाः फलमथापि वा मूलं ॥
हेमनिघृष्टं लिप्तं व्यपहरति महेंद्रलुप्ताख्यम् ॥१५॥

खालित्यहर लेपः ।

नीलोत्पलाक्षफलमज्जतिलाजगंधाः
सार्द्धं प्रियंगुलतया मधूकवल्कैः ॥
संपेष्य यः प्रकुरुते बहुशः प्रलेपं
खालित्यमस्य न पदं विदधाति मूर्ध्नि ॥१६॥

केशकृष्णीकरणं ।

फलत्रयं माजुफलं हरीतक्याः पलं तथा ॥
आमलक्यास्तु सप्तैव पलैकं खदिरस्य च ॥१७॥
तुत्थस्यापि पलैकं तु नीलीवट्या दशैव तु ॥
नवसादरकस्यैकं लोहचूर्णस्य चैककम् ॥१८॥
तुवर्याः पलमेकं तु पलं ताम्रविषस्तथा ॥
अतिश्लक्ष्णमिदं घृष्टं भृंगराजरसैस्त्रिसम् ॥१९॥
संधितं त्रिदिनं लोहे भिन्नांजनसमप्रभम् ॥
रूक्षीकृत्य कचानादौ पुनस्तेनावलेपयेत् ॥२०॥
वातारिपत्रैराबेष्ट्य क्षुपि कुर्याद्विचक्षणः ॥
प्रातस्तैलामलैः स्नात्वा नरो जायेत निश्चितम् ॥
भिन्नकज्जलभृंगालीनिभकुंतलसंततिः ॥२१॥

इतिश्री योगतरंगिणी संहितायां शिरोरोगचिकित्सा नाम त्रिसप्ततितमस्तरंगः ॥ ७३ ॥

अथ चतुःसप्ततितमस्तरंगः ॥ ७४ ॥

॥ अथ प्रदररोगः ॥

अतिमार्गाश्वगमनप्रभूतसुरतादिभिः ॥
प्रदरो जायते स्त्रीणां योनिरक्तस्रुतिः पृथुः ॥ १ ॥

अशोक योगः ।

अशोकवल्कज क्वाथं शृतं दुग्धं सुशीतलम् ॥
यथाबल पिबेत्प्रातः शीघ्रासृग्दरनाशनम् ॥ २ ॥

जीरकावलेह. ।

जीरकप्रस्थमेकं तु क्षीरस्याढकमेव च ॥
घृतप्रस्थार्द्धसंयुक्तं शनैर्मंदाग्निना पचेत् ॥ ३ ॥
सुशीते शर्कराप्रस्थद्वय चापि विनिक्षिपेत् ॥
चातुर्जातकणाविश्वमजाजी च घनं जलम् ॥ ४ ॥
दाडिमं रसजं धान्यं रजनी पडवासकम् ॥
यवजातं लवक्षारं प्रत्येकं तु पलार्धकम् ॥ ५ ॥
जीरकस्यावलेहोयं प्रदरापहरः परः ॥
ज्वरप्रमेहतृड्दाहकृच्छ्रक्षैण्यविनाशनः ॥ ६ ॥

प्रदरहर कषाय ।

दार्वीरसांजनवृषाब्दकिरातबिल्व-
भल्लातकैरपि कृतो मधुना कषायः ॥
पीतो जयत्यतिबलं प्रदरं सशूलं
पीतासितारुणविलोहितनीलशुक्लम् ॥ ७ ॥

कुशमूल योग ।

कुशमूल समुद्धृत्य पेषयेत्तंदुलांबुना ॥
एतत्पीत्वा त्र्यहं नारी प्रदरात्परिमुच्यते ॥ ८ ॥

भूम्यामलकी योगः ।

भूम्यामलकमूलं हि पीतं तंदुलवारिणा ॥
दिनद्वयं त्र्यहं वापि स्त्रीरोगं नाशयेद् ध्रुवम् ॥ ९ ॥

धात्री योगः ।

धात्रीरसं सितायुक्तं योनिदाहापहं पिबेत् ॥

लोध्रयोगः ।

शर्कराघृतसंयुक्तं लोध्रं प्रदरनाशनम् ॥१०॥

क्वाथैस्तिलानां विनिधाय पीतः
कटुत्रयं ब्राह्मणयष्टिचूर्णं ॥
निहंति सद्यः कुसुमं सलोध्रं
स्त्रीणामसृग्दाहमतिप्रवृद्धम् ॥११॥

गुह्यरोगारि रसः । कल्पतरोः ।

पारदं टंकणं गंधं पृथग्भागं समाहरेत् ॥
शुष्कं कमलिनीकंदं वेदभागं विमर्दयेत् ॥१२॥
लिंगीरसेन तत्सर्वं दिवसत्रितयं बुधः ॥
मधुना मिश्रितं पश्चात् खादेद्वल्लचतुष्टयम् ॥१३॥
सिताकर्षं क्षीरपलमनुपानं पिबेदनु ॥
प्रदरं योनिशूलं च रक्तातिसारमुल्बणम् ॥
रक्तमेहं मूत्रकृच्छ्रं त्रिदिनान्नाशयेद् ध्रुवम् ॥१४॥

इतिश्री योगतरंगिणी संहितायां प्रदरचिकित्सानाम
चतुःसप्ततितमस्तरंगः ॥ ७४ ॥
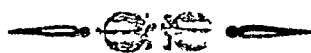
अथ पञ्चसप्ततितमस्तरंगः ॥ ७५ ॥

॥ अथ गर्भरोगाधिकारः ॥

गर्भस्थितिः ।

ऋतोः समेहनि सुतो विषमे च सुता मता ॥
अतः समदिने गच्छेत्पुत्रकामा वरांगना ॥ १ ॥
क्षीरेण श्वेतबृहतीमूलं नासापुटे पिबेत् ॥
पुत्रार्थं दक्षिणा नासा वामा च कन्यकाप्रदा ॥ २ ॥
पयसा लक्ष्मणामूलं पुत्रोत्पत्तिस्थितिप्रदम् ॥
नासयास्येन वा पीत वटशुंगाष्टकं नवम् ॥
वारिणा शुक्लपक्षे हि पुष्येण तु समाहृतम् ॥ ३ ॥
एरंडस्य च बीजानि मातुलुंगस्य चैव हि ॥
सर्पिषा परिपिष्टानि पिबेद् गर्भप्रदानि तु ॥ ४ ॥

इति चक्रदत्तात् ॥

गोघृतेन सह नागकेसरं
श्लक्ष्णचूर्णितमृतौ नितंबिनी ॥
गव्यदुग्धनिरता पिबेद्यदा
सा तदा नियतमेव वीरसूः ॥ ५ ॥
लिंगाकारं लक्ष्मणायाश्च मूलं
योगे लब्धं सर्पिषा नस्ययोगात् ॥
पीत्वा सूते पुत्रमत्यंतवीर्यं
पश्चादन्यानप्यमंदांगयष्टिः ॥ ६ ॥

पुत्रकर योग ।

वस्तमूत्रं च सघृतं नवनीत च माहिषम् ॥
पलत्रयं पिबेन्नारी वंध्या सूते सुतोत्तमम् ॥ ७ ॥

अथ गर्भनिवारणं वंध्यात्वकर पोटली ।

तैलाविलं सैंधवखंडमादौ-
निधाय रंडा निजयोनिमध्ये ॥
नरेण सार्द्धं रतमातनोति
या सा न गर्भं लभते कदाचित् ॥ ८ ॥

गर्भ निवारणं ।

धत्तूरमूलिकापुष्ये गृहीत्वा कटिसंस्थिता ॥
गर्भं निवारयत्येव रंडावेश्यादियोषिताम् ॥ ९ ॥

गर्भ निवारणं ।

तंदुलीयकमूलानि पिष्ट्वा तंदुलवारिणा ॥
ऋत्वंते त्र्यहं पीतानि वंध्याः कुर्वंति योषितः ॥१०॥

गर्भ निवारणं ।

धूपिते योनिरंध्रे च निंबकाष्ठेन युक्तितः ॥
ऋत्वंते रमते या स्त्री न सा गर्भमवाप्नुयात् ॥११॥

गर्भपातनं ।

गृंजनबीजं टंकत्रितयं तावच्च दाडिमीमूलम् ॥
तुवरीटंकत्रितयं सिंदूरं टंकयुगलं च ॥१२॥
संमर्द्य खल्वमध्ये तोयेनैतन्निपीय गर्भवती ॥
रंडा योषिद् गर्भं वेश्या वा पातयत्याशु ॥१३॥

वंध्यात्वकर मलमः । गर्भ निवारणं ।

पलाशबीजमध्वाज्यलेपात्सामर्थ्ययोगतः ॥
योनिमध्ये ऋतौ गर्भं न धत्ते स्त्री कदाचन ॥१४॥

गर्भ निवारणं ।

तालीसगैरिके पीते बिडालपदमात्रके ॥
शीतांबुना चतुर्थेऽह्नि वंध्या नारी प्रजायते ॥१५॥

गर्भस्राव निवारण ।

मधुकं शाकबीजं च पयस्या सुरदारुकम् ॥
अश्मंतकः कृष्णतिलास्ताम्रवल्ली शतावरी ॥१६॥
वृक्षादनी पयस्या च तथैवोत्पलसारिवा ॥
अनंता सारिवा कृष्णा पद्मा मधुकमेव च ॥१७॥
बृहतीद्वयकाश्मर्यः क्षीरशृंगात्वचो घृतम् ॥
पृथक्पर्णीबलाशिग्रुश्वदंष्ट्रामधुयष्टिकाः ॥१८॥
शृंगाटकं बिसं द्राक्षा कशेरुर्मधुक सिता ॥
च सैते सप्त योगाः स्युरर्द्धश्लोकसमापनाः ॥१९॥
यथक्रम प्रयोक्तव्या गर्भस्रावे पयोयुताः ॥
कपित्थबिल्वबृहतीपटोलं च निदिग्धिका ॥२०॥
मूलानि क्षीरसिद्धानि दापयेद्भिषगष्टमे ॥
नवमे मधुकानंतापयस्याशारिवाः पिबेत् ॥२१॥
योजयेद्दशमे मासि क्षीरं सिद्ध पयस्यया ॥
लज्जालुधातकीपुष्पमुत्पलं मधु लोध्रकम् ॥२२॥
जलस्थया स्त्रिया पीत गर्भपात निवारयेत् ॥
पततं स्तम्भयेद्--गर्भं कुलालकरमृत्तिका ॥२३॥

अथ गर्भरक्षणं ।

मधु च्छागीपयः पीता किंवा श्वेताद्रिकर्णिका ॥
पागवतमलं पीत त्र्यहं तण्डुलवारिणा ॥
गर्भिणीगर्भतो रक्तं स्तंभयेत्रिपतद् द्रुतम् ॥२४॥
शर्करातिलसतिल समांशकं
माक्षिकेण सह भक्ष्यते यया ॥
नास्ति गर्भपतनोद्भवं भयं
पापभीतिरिव तीर्थसेवया ॥२५॥

शृंगाटकं बिसं द्राक्षा कशेरुर्मधुकं सिता ॥
निवारयंत्यमी गर्भं पीताः परमवेदनम् ॥२६॥
कंकतीमूलमाबद्धं कुमारीसूत्रकैर्दृढम् ॥
कटिदेशे नितंबिन्या गर्भं स्तंभयते ध्रुवम् ॥२७॥
कशेरुशृंगाटकजीवनीय
पद्मोत्पलैरंडशतावरीभिः ॥
सिद्धं पयः शर्करया समेतं
संस्थापयेद् गर्भमुदीर्णशूलम् ॥२८॥
कुशकाशरुबूकाणां मूलैर्गोक्षुरकस्य च ॥
शृतं दुग्धं सितायुक्तं गर्भिण्याः शूलनुत्परम् ॥२९॥
उन्नते दक्षिणे कुक्षौ गर्भे च परिमंडले ॥
पुत्रं प्रसूयते वामे कन्यां क्लीबं समेऽगना ॥३०॥
प्रत्यक्पुष्प्याः पारिभद्रस्य यद्वा
मूलं यद्वा काकजंघासमुत्थम् ॥
कट्यां बद्धं योषितां सत्प्रसूति
योगे युक्त्या संहतं साधु कुर्यात् ॥३१॥

सुखप्रसवकरं ।

मूलं प्रत्यक्पुष्प्याः पाठाया वा निवेशिते तु मुखे ॥
स्त्रीणां दुःप्रसवानां प्रसवं कुरुते सुखेनैव ॥३२॥
यदि तत्प्रत्यक्पुष्प्यास्त्रुटयति मूलं तदर्थमुद्धरतां ॥
कन्या भवति तदानीमत्रुटितं तत्र पुत्रः स्यात् ॥३३॥

अंजनं ।

पुटदग्धभुजगकंचुककज्जलमधुपूरितेक्षणद्वंद्वा ॥
सद्यो भवति विशल्या विमूढगर्भापि गर्भवती ॥३४॥

इति राजमार्तंडाद् ॥

सुख प्रसवकरः लेपः ।

पाठासुरससिंहास्यमयूरकजटाः पृथक् ॥
नाभिवस्तिभगे लिप्त्वा सुखं नारी प्रसूयते ॥३५॥
हिमवद्दक्षिणे पार्श्वे सुरसा नाम यक्षिणी ॥
तस्या नूपुरशब्देन विशल्या भव गर्भिणि ॥३६॥
मुक्ताः पाशा विपाशाश्च मुक्ताः सूर्यस्य रश्मयः ॥
मुक्तः सर्वभयाद्गर्भ एहि माचिर माविर ॥ स्वाहा ॥३७॥
इहामृतं च सोमश्च चित्रभानुश्च भामिनि ॥
उच्चैःश्रवाश्च तुरगो मंदिरे निवसंतु ते ॥३८॥

इत्यक्षतान्क्षिपेत् ॥

इदममृतमपां समुद्धृत वै
तव लघुगर्भविमोक्षणाय देवि ॥
तदनलपवनार्कवासवास्ते
सहलवणांबुधरैर्दिशंतु शांतिम् ॥३९॥

जल च्यवनमंत्रेण सप्तवाराभिमंत्रितम् ॥
पीत्वा प्रसूयते नारी दृष्ट्वा वा चक्रवर्धनम् ॥४०॥
कलापक्षार्कऋतुदिङ्मन्वष्टाष्टादशांबुधीन् ॥
विलिखेन्नवकोष्ठेषु त्रिशाल्य यंत्रमुत्तमम् ॥४१॥

१६	२	१२
६	१०	१४
८	१८	४

गुंजामूलस्य खंडानि सप्तसप्तदलानि च ॥
खंडितानि कटिस्थानि सुप्रसूतिं प्रकुर्वते ॥
बाणपुंखा जटा वाथ विशल्यां कुरुतेंगनाम् ॥४२॥

इति मूढगर्भचिकित्सा ॥

हेमसुंदर तैलम् ।

आर्द्रहेमफलं पिष्ट्वा कटुतैलं चतुर्गुणम् ॥
विपचेद् घटिकायुग्मं तत्तैलं हेमसुंदरम् ॥
दुष्टप्रस्वेदशमनं सूतिकादोषनाशनम् ॥४३॥

कनकसुंदर तैलम् ।

रसे कनकसंभवे कटुकतैलमापाचये-
द्वचाकनकदुग्धिकारजनिनागरैः कल्कितैः ॥
इदं कनकसुंदरं भवति दुष्टसंस्वेदजित्
समस्तपवनामयप्रणुदनल्पकांतिप्रदम् ॥४४॥

वज्रकांजिकम् ।

पिप्पली पिप्पलीमूलं चव्यं शुंठी यवानिका ॥
जीरके द्वे हरिद्रे द्वे विडं सौवर्चलं तथा ॥४५॥
एतैरेवौषधैः पिष्टैरारनालं विपाचयेत् ॥
आमवातहरं वृष्यं कफघ्नं वह्निदीपनम् ॥४६॥
कांजिकं वज्रकं नाम बलवर्णाग्निदीपनम् ॥
मक्कल्लशूलशमनं परं क्षीराभिवर्धनम् ॥४७॥

सौभाग्य शुंठी-खण्डनागरं ।

आज्यस्यांजलियुग्ममत्र पयसः कंसं तुलार्द्धं तथा
खंडस्यापि पचेद् विचूर्णितमिदं विश्वौषधं पाचयेत् ॥
अस्यार्द्धं गुडवद्विपाच्य विधिना मुष्टित्रयं धान्यकं
मिस्याः पंचपलं पलं कृमिरिपोः साजाजि जीरं तथा ॥४८॥
व्योषांभोददलारगद्रविडिका भृंगस्य च प्रक्षिपे-
त्तृट्कासज्वरपांडुरोगशमनं विड्भेदविध्वंसनम् ॥
शूलारोचकनाशनं कृमिहरं मंदाग्निसंदीपनं
सूतानां खलु खंडनागरमिदं सौभाग्यशुंठ्याः शुभं ॥४९॥

प्रतापलंकेश्वर रस ।

सूताभ्रगंधोपणलोहशंखो
वन्योपलाभस्मविष सुपिष्टम् ॥
एकेंदुचद्रानलवार्द्धिकुभि-
कलैकभागैः क्रमशो विवृद्धम् ॥५०॥
प्रसूतिवातानिलदत्तबंध-
मार्द्रा युना घोरसुसंनिपाते ॥
निजानुपानैर्निजपथ्ययोगैः
सर्वातिसारग्रहणीगदेषु ॥
प्रतापलंकेश्वरनामधेयो
रसः प्रयुक्तो गिरिराजपुत्र्या ॥५१॥

सूतिका शूले ।

अमृतानागरसहचरभद्रोत्कटपंचमूलजलदजलम् ॥
शृतशीतं मधुसहित हरति परं सूतिकाशूलम् ॥५२॥

वरांगगंध हर घृतं ।

सयोजितं पल्लवपंचकेन
जातीप्रसूनैर्मधुकान्वितैश्च ॥
सूर्यांशुतप्तं घृतमंगनाना-
मभ्यगतो हन्ति वरांगगंधम् ॥५३॥

स्मरमंदिर शोधन तैलं ।

मृणालपद्मोत्पलबीजयुक्तं
तैल तथोशीरयुतं विपकम् ॥
पैच्छिल्यशैथिल्यविगंधितानां
नाशं करोति स्मरमंदिरस्य ॥५४॥

लोमनाशन लेपः ।

हरितालभागपंचकमेको भागः पलाशभस्मभवः ॥
भागश्च यवक्षारः स्याल्लेपाद्योनिलोमहरः ॥९५॥

इति राजमार्तंडात् ॥

दग्ध्वा शंखं क्षिपेद्रंभारसे च क्षारयोजितम् ॥
तुल्यांशं लेपितं हंति लोमं गुह्यादिसंभवम् ॥९६॥

इतिश्री योगतरंगिणी संहितायां गर्भरोगचिकित्सा नाम
पञ्चसप्ततितमस्तरंगः ॥ ७५ ॥

अथ षट्सप्ततितमस्तरंगः ॥ ७६ ॥

॥ अथ बालकरोगाः ॥

त्रिविधः कथितो बालः क्षीरान्नोभयवर्त्तनः ॥
स्वास्थ्यं ताभ्यामदुष्टाभ्यां दुष्टाभ्यां रोगसंभवः ॥ १ ॥

बालारोग्य लेहः ।

कुष्ठं वचाभयाभार्ङ्गी कलकं क्षौद्रसर्पिषा ॥
वर्णायुःकांतिजननो लेहो बालस्य सर्वथा ॥ २ ॥
स्तन्याभावे पयश्छागं गव्यं वा तद्गुणं पिबेत् ॥

नाभिशोथे योगः ।

मृत्पिंडेनाग्नितप्तेन क्षीरसिक्तेन सोष्मणा ॥ ३ ॥
स्वेदयेदुत्थितां नाभिं शोथस्तेनोपशाम्यति ॥

नाभिपाक हर तैलं अभ्यंजन चूर्णं च ।

नाभिपाके निशालोध्रप्रियंगुमधुकैः शृतम् ॥ ४ ॥
तैलमभ्यंजने शस्तमेभिर्वाप्यथ चूर्णकम् ॥ ५ ॥

ग्रहबाधा हर लेप ।

वचाकुष्ठशंखाब्जलोहैः शिशूनां
शरीरे घृतैर्याति रक्षांसि नाशम् ॥
कुनठ्यर्कदुग्धाज्यबिम्बैः सकुष्टैः
प्रलेपोथ वा नित्यमेषां विधेयः ॥ ६ ॥

दंतोद्भेद वेदनाहर प्रयोगः ।

प्राचीगतं पांडुरसिंदुवार-
मूलं शिशूनां गलके निबद्धम् ॥
करोति दंतोद्भववेदनाया
निःसंशयं नाशमकांड एव ॥ ७ ॥

बालांग वृद्धिकर उद्वर्तनं स्नान ।

ससच्छदार्कच्छदनक्तमाल-
मूलैस्तुरंगारिजटासमेतैः
उत्सादितांगः पशुमूत्रपिष्टै-
र्हविरमुंडीसलिलाभिषिक्तः ॥
दिने दिने याति शिशुः प्रवृद्धिं
पतिर्निशानामिव शुक्लपक्षे ॥ ८ ॥

इति राजमार्तंडात् ॥

शिशुज्वरातिसार हर कषायः ।

हरिद्राद्वययष्ट्याह्वसिंहीशक्रयवैः कृतम् ॥
शिशोर्ज्वरातिसारघ्नं कषायं सर्वरोगजित् ॥ ९ ॥

बालरोगहर लेह. ।

पृष्टिपर्णी शताह्वा च लीढा माक्षिकसर्पिषा ॥
ग्राहिणी दीपनी हंति मारुतार्तिं सकामलाम् ॥१०॥
ज्वरातिसारपांडुघ्नी बालानां सर्वरोगनुत् ॥११॥

शिशुरोगहर लेहः ।

शृंगीं सकृष्णातिविषां विचूर्ण्य
लेहं विदध्यान्मधुना शिशूनाम् ॥
कासज्वरच्छर्दिभिरर्दितानां
समाक्षिकां वातिविषामथैकाम् ॥१२॥
द्विवार्ताकीफलरसं पंचकोलं च लेहयेत् ॥
एकद्वित्राणि घस्राणि वातपित्तकफज्वरे ॥१३॥

बालातिसारहर लेहः ।

बिल्वं च पुष्पाणि च धातकीनां
जलं च रोध्रं गजपिप्पली च ॥
क्राथावलेहौ मधुना विमिश्रौ
बालेषु योज्यावतिसारितेषु ॥१४॥

बालातिसारे कषायः ।

नागरातिविषामुस्तावालकेंद्रयवैः शृतम् ॥
बालकं पाययेत्प्रातः सर्वातीसारनाशनम् ॥१५॥

बालछर्दिहर योगः ।

कल्कः प्रियंगुकोलास्थिमध्यमुस्तरसांजनैः ॥
क्षौद्रलीढं कुमारस्य च्छर्दितृष्णातिसारनुत् ॥१६॥

बालरक्षक धूपः ।

यस्ताम्रचूडविहगोभयपार्श्वपक्ष-
पुच्छैर्गवाज्यसहितैः कृतधूपकोंगे ॥
आरभ्य जन्मदिवसाद्दिनसप्तकं हि
बालस्य तस्य न कुतश्चन भीतिरेति ॥१७॥

इति राजमार्तंडात् ॥

बाल रक्तस्रावहर लेह. ।

लेहस्तैलमिताक्षौद्रतिलयष्टयाह्वकल्कितः ॥
बालस्य रुंध्यान्नियतं रक्तस्रावं प्रवाहिकाम् ॥१८॥

बालुकंटकहर योगः ।

हरीतकीवचाकुष्ठकल्कं माक्षिकसंयुतम् ॥
पीत्वा कुमारः स्तन्येन मुच्यते तालुकंटकात् ॥१९॥

बालत्वचारोगे लेपः ।

गृहधूमनिशाकुष्ठराजिकेंद्रयवैः शिशोः ॥
लेपस्तक्रेण हंत्याशु सिध्मापामाविचर्चिकाः ॥२०॥

हिक्काहर पयः ।

पंचमूलीकषायेण सघृतेन पयः शृतम् ॥
सशृंगवेरं सगुडं शीतं हिक्कार्दितः पिबेत् ॥२१॥
द्राक्षायासाभयाकृष्णाचूर्णं सक्षौद्रसर्पिषा ॥
लीढं श्वासं निहत्याशु कास च तमकं तथा ॥२२॥
भेषजं पूर्वमुद्दिष्टं महातापज्वरादिषु ॥
कार्यं तदेव बालानां तेषु दाहादिकं विना ॥२३॥
त एव दोषा दुष्यास्ते ज्वराद्या व्याधयश्च ते ॥
अतस्तदेव भैषज्यं किंतु मात्रा कनीयसी ॥२४॥

बालज्वरे लेप ।

अतसीकारवीमुस्तासर्षपैः सपयोधरैः ॥
दार्वीनिंबमूर्वार्कहरिद्राभिश्च लेपकः ॥
ज्वरं निहंति बालस्य महांतमपि वासरैः ॥२५॥
गंधकमेको भागो भागद्वितयं च जातिफलम् ॥
जातीपत्रं तावद्भागत्रितय च खदिरस्य ॥२६॥

वल्कलजातैः क्वाथैः संमिलितं कांचनारस्य ॥
पीतः स्तन्यविमिश्रो नाशयति शिशोरवश्यमेवैतत् ॥२७॥
जिह्वापिडिकापाकं गुदपाकं लेपनाच्च पानाच्च ॥
धावनतस्तत्तोयैर्नश्यंति शिशोर्गुदे रोगाः ॥२८॥

सर्वग्रहनिवारण धूपः ।

सर्पत्वग्लशुनं मूर्वा सर्षपारिष्टपल्लवाः ॥
बिडालविड्जालोम मेषशृंगी वचा मधु ॥२९॥
धूपः शिशोर्ज्वरघ्नोयं सर्वग्रहनिवारणः ॥३०॥
क्षणादुद्विजते बालः क्षणाद् हसति रोदिति ॥
नखैर्दंतैर्दारयति धात्रीमात्मानमेव च ॥३१॥
ऊर्ध्वं निरीक्षते दंतान्खादेत्कूजति जृंभते ॥
भ्रुवौ क्षिपति दंतौष्ठं फेनं वमति चासकृत् ॥३२॥
क्षामोतिनिशि जागर्त्ति शूनांगो भिन्नविट्स्वरः ॥
मत्स्यशोणितगंधश्च न चाश्नाति यथापुरा ॥३३॥
सामान्यं ग्रहजुष्टानां लक्षणं समुदाहृतम् ॥

अष्टमंगल घृतम् ।

वचा कुष्ठं तथा ब्राह्मी सिद्धार्थकमथापि वा ॥३४॥
सारिवा सैंधवं चैव पिप्पली घृतमष्टमम् ॥
मेध्यं घृतमिदं सिद्धं पातव्यं च दिने दिने ॥३५॥
दृढस्मृतिः क्षिप्रमेधाः कुमारो बुद्धिमान्भवेत् ॥
न पिशाचा न रक्षांसि न भूतानि न मातरः ॥
प्रभवंति कुमाराणां पिबतामष्टमंगलम् ॥३६॥

अष्टमंगलमुद्वर्त्तनम् ।

शटीकिरातसिद्धार्थमूर्वामुस्तोपकुंचिकाः ॥
श्वेता शिरीष इत्येषां छागीक्षीरेण लेपनम् ॥३७॥

ज्वरदाहवमीरेकरक्षोतृड्नाशनं शिशोः ॥

इति वैद्यालंकारात् ॥

अश्वगंधादि घृतम् ।

पादकल्केऽश्वगंधायाः क्षीरेऽष्टगुणिते पचेत् ॥
घृतं देयं कुमाराणां पुष्टिकृद्बलवर्द्धनम् ॥३८॥

बालाभ्यंग तैलं ।

लाक्षारससमं सिद्धं तैलं मस्तु चतुर्गुणम् ॥
रास्नाचंदनकुष्ठाब्दवाजिगंधानिशायुतैः ॥३९॥
शताह्वादारुयष्ट्याह्वमूर्वातिक्ताहरेणुभिः ॥
बालानां ज्वररक्षोघ्नमभ्यंगं बलवर्णकृत् ॥४०॥

इतिश्री योगतरंगिणी संहितायां बालरोगचिकित्सा नाम षट्सप्ततितमस्तरंग ॥ ७६ ॥
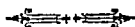
॥ अथ सप्तसप्ततितमस्तरंगः ॥ ७७ ॥

॥ अथ विषम् ॥

स्थावरं जंगमं चैव द्विविधं विषमुच्यते ॥
स्थावरं वत्सनाभादि सर्पादीनां तु जंगमम् ॥ १ ॥
यः पिबति पुष्यदिवसे जलपिष्टं सितपुनर्नवामूलं ॥
तत्संनिधौ न वर्ष वृश्चिकभुजगाः प्रसर्पंति ॥ २ ॥
मसूरं निंबपत्राभ्यां खादेन्मेषगते रवौ ॥
अब्दमेकं न भीतिः स्याद्विषात्तस्य न संशयः ॥ ३ ॥
तंडुलीयकमूलं तु पीतं तंडुलवारिणा ॥
तक्षकेणापि दष्टं हि निर्विषं कुरुते नरम् ॥ ४ ॥

शिरीषपुष्पस्वरसे सप्ताहं मरिचं सितम् ॥
भावितं सर्पदष्टानां पाननस्यांजने हितम् ॥ ५ ॥
दंशोपरि विबध्नीयात्तत्क्षणाच्चतुरंगुलत् ॥
क्षौमादिभिर्वेणिकया सिद्धैर्मंत्रैश्च मंत्रयेत् ॥ ६ ॥
अंबुवत्सेतुबंधेन स्तंभ्यते विषमं विषम् ॥

विषहरांजनं ।

नक्तमालफलव्योषबिल्वमूलनिशाद्वयम् ॥ ७ ॥
सौरसं पुष्पमाजं वा मूत्रं बोधनमंजनम् ॥
वंध्याकर्कोटकीमूलं छागमूत्रेण भावितम् ॥ ८ ॥
नस्यं कांजिकसंपिष्टं विषोपहृतचेतसः ॥

वृश्चिक विष चिकित्सा ।

अजाक्षीरेण संपिष्टा शिरीषफलमिश्रिता ॥
उपकुल्या विषं हंति वृश्चिकस्य प्रलेपतः ॥ ९ ॥
कार्प्पासपत्रैः संपिष्टैः साज्यैर्लेपो विषापहः ॥
वृश्चिकस्याथवा वत्सनागलेपः प्रशस्यते ॥१०॥

वृश्चिक विष हरी ।

मनःशिलाकुष्ठकरंजबीज-
शिरीषकाश्मीरभवैः समांशैः ॥
विनिर्मितास्ये विधृता च लिप्ता
संहारिणी वृश्चिकवैकृतस्य ॥११॥

शरपुंखा मूल योगः ।

अवतारयत्यधोनीतमूर्द्ध्वमारोपितं तु वर्द्धयति ॥
वृश्चिकगरलं विधिवत्सायकपुंखाभवं मूलम् ॥१२॥

वृश्चिक विष हरी ।

द्विरदपुरीषसमुत्थच्छत्रकवहुवारफलकृता गुटिका ॥
वृश्चिकविषस्य कुरुते संक्रमणमाशु करे विधृता ॥१३॥

अथ मंत्रो लिख्यते ।

ॐआदित्य रथवेगेन विष्णुबाहुबलेन च ॥
सुपर्णपक्षवातेन भूम्यां गच्छ महाविष ॥१४॥
ॐपक्षयोगिपादाज्ञा श्रीशिवोत्तमप्रभु ।
पादाज्ञा भूम्यां गच्छ महाविष ॥१५॥

इति मंत्र वृश्चिकविद्धस्य कर्णे जपेत् एकविंशतिवारं दंश स्पृष्ट्वैकविंशतिवारं चाभिमंत्रयेन्निर्विषो भवतितरा

अथ कृत्रिमविषम् ।

अंकोलमूलनिःक्राथ फाणितं सघृतं लिहेत् ॥
तैलाक्तश्चित्रनानांशगरदोषविषापहः ॥१६॥
शर्करानूर्णसयुक्तं चूर्ण ताप्यसुवर्णयोः ॥
लेहः प्रशमयत्युग्रं नानायोगकृत विषम् ॥१७॥

अथ श्वान विषं ।

काकोडुंबरिकामूलं धत्तूरकफलान्वितम् ॥
पीत तडुलतोयेन सारमेयविषापहम् ॥१८॥

नखदंतविष ।

पिचुमंदशमीवटकल्कयुतं
क्वथितं जलमाशु विलेपनतः ॥
नखदतविषाणि निहंति नृणां
विषमान्यखिलान्यपि सत्यमिदम् ॥१९॥

अथ पिडिकामक्षिकाविषम् ।

सोमवल्कोश्वकर्णश्च गोजिह्वा हंसपद्यपि ॥
रजन्यौ गैरिकं लेपः पिडिकामक्षिकाविषे ॥२०॥

अथ वरटीविषम् ।

मरिचं नागरोपेतं सिंधुसौवर्चलान्वितम् ॥
नागवल्लीरसो हन्याल्लेपनाद्वरटीविषम् ॥२१॥

अथ भ्रमरविषम् ।

नागरं गृहकपोतपुरीषं
बीजपूरकरसो हरितालम् ॥
सैंधवं च विनिहंति विलेपा-
दाशु भृंगजनितं विषमेतत् ॥२२॥

अथ मूषकविषम् ।

आगारधूममंजिष्ठारजनीलवणोत्तमैः ॥
लेपो जयत्याखुविषं कोशातक्यथवा सिता ॥२३॥

अथ मंडूकविषम् ।

शिरीषबीजैः कुलिशद्रुमस्य
क्षीरेण पिष्टैः कृतलेपनानां ॥
विषं विनाशं व्रजति क्षणेन
मंडूकदंशप्रभवं नराणां ॥२४॥

अथ स्त्रीवन्ध्यमोचनं ।

शनौ निमंत्र्य यष्टिं च पूर्वपुष्करिणीस्थितां ॥
रवौ प्रातस्तत्र गत्वा विद्वान्संयतमानसः ॥२५॥
तडागसंस्थितस्तस्मात्काष्ठमानीय खंडशः ॥
पिबेद्दुग्धः प्रक्षुण्णेन नार्यो वन्ध्यापि च ॥२६॥

अथ शृंगिमत्स्यविषचिकित्सा ।

कृष्णवेत्रस्य निःक्वाथः कल्को घृतविमिश्रितः ॥
शृंगिमत्स्यविषं हंति बर्हिपक्षेण धूपनम् ॥२७॥

अथ पिपीलिकाविषम् ।

पिपीलिकाभिर्दष्टानां मक्षिकामशकैस्तथा ॥
गोमूत्रेण वरालेपः कृष्णवल्मीकमृत्कृतः ॥२८॥

अथ खर्जूरविषम् ।

लेपः प्रदीपतैलस्य खर्जूरविषनाशनः ॥
हरिद्राद्वयलेपो वा सगैरिकमनःशिलः ॥२९॥

इतिश्री योगतरंगिणी संहितायां विषचिकित्सा नाम सप्ततितमस्तरंगः ॥ ७७ ॥

॥ अथ अष्टसप्ततितमस्तरंगः ॥ ७८ ॥

॥ अथ रसायनम् ॥

यज्जराव्याधिशमनं भेषजं तद्रसायनम् ॥
पूर्वे वयसि मध्ये वा शुद्धकायः समाचरेत् ॥ १ ॥
अविशुद्धशरीरस्य युक्तो रासायनो विधिः ॥
न भाति वाससि क्लिष्टे रंगयोग इवार्पितः ॥ २ ॥

अभया रसायनं ।

सिंधूत्थशर्कराशुंठीकणामधुगुडैः क्रमात् ॥
वर्षादिष्वभया सेव्या रसायनगुणैषिणा ॥ ३

रसायन योगाः ।

मंडूकपर्ण्याः स्वरसः प्रयोज्यः
क्षीरेण यष्टीमधुकस्य चूर्णम् ॥
रसो गुडूच्यास्तु समूलपुष्प्याः
कल्कः प्रयोज्यः खलु शंखपुष्प्याः ॥ ४ ॥

आयुः प्रदान्यामयनाशनानि
बलाग्निवर्णस्वरवर्द्धनानि ॥
मेध्यानि चैतानि रसायनानि
सेव्या विशेषेण तु शंखपुष्पी ॥ ५ ॥

कुष्ठ रसायनं ।

यः कुष्ठचूर्णं रजनीविरामे
मध्वाज्यसम्मिश्रितमत्ति नित्यम् ॥
समत्तमातंगबलः सुगंधि-
र्वाग्मी चिरायुश्च भवेन्मनुष्यः ॥ ६ ॥

शिशिरे योऽश्वगंधायाः कंदचूर्णं पलोन्मितम् ॥
मासमत्ति समध्वाज्यं स वृद्धोऽपि युवा भवेत् ॥ ७ ॥
घृतामलकशर्करातिलपलाशबीजानि यः
समानि शयनस्थितो मधुयुतानि खादेन्निशि ॥
वलीपलितवर्जितस्तरुणनागतुल्यो बली
बृहस्पतिसमः पुमान्भवति सोऽचिरेण ध्रुवम् ॥ ८ ॥

भृंगराज योगः ।

ये मासमेकं स्वरसं पिबंति
दिनेदिने भृंगसमुत्थमत्र ॥
क्षीराशिनस्ते बलवर्णयुक्ताः
समाः शतं जीवितमाप्नुवंति ॥ ९ ॥

भृंगराज योगः ।

असिततिलविमिश्रान्पल्लवान्भक्षयेद्यः
ससुरभिपयसो वै भृंगराजस्य मासम् ॥
भवति च चिरजीवी व्याधिभिर्निर्विमुक्तो
भ्रमरसदृशकेशः कामचारी मनुष्यः ॥१०॥

अश्वगंधा योगः ।

पीताश्वगंधा पयसार्द्धमासं
घृतेन तैलेन सुखांबुना वा ॥
कृशस्य पुष्टिं वपुषो विभर्ति
नरस्य सस्यस्य यथांबुवृष्टिः ॥११॥

आयु स्थैर्यकर प्रयोगः ।

सततमरुष्करपिप्पलिवृद्धि-
र्वपुषि निरामयतां विदधाति ॥
कनकशिलाजतुगुग्गुलुधात्री
फललशुनत्रिफलामययोगः ॥१२॥

घृतदधिमधुरपयोदधिमण्डै-
रुषसि कृतः करिकर्णपलाशैः ॥
स्थगयति हि स्थिरतां स्थविराणां
विदधाति च वपुषो बलवत्ताम् ॥१३॥

वलीपलितहारि तैल ।

एरंडतैलमथ निंबफलास्थितैल-
मेतद्रसायनमनामयकायकारि ॥
ज्योतिष्मतीफलपलाशफलोद्भवं वा
तैल वलीपलितहारि भिषक्प्रदिष्टम् ॥१४॥

धात्रीयोग. ।

धात्रीफलानि पयसा पतिवारिणा वा
स्विन्नानि यः शिशिरकालसमुद्भवानि ॥
॥ ० ॥ निष्केवलान्यथ तिलैः सितैः समानि
स्वादेदनामयवपुः स पुमान् शतायुः ॥१५॥

रसायनं ।

[illegible]
त्रिफलया [illegible] घृतमिश्रया [illegible] ॥
[illegible]
[illegible] हि [illegible]मुच्यते ॥१६॥

प्रातर्जलपानं ।

अंभसां प्रसृतीरष्टौ रवावनुदिते पिबेत् ॥
वातपित्तकफाञ्जित्वा जीवेद्वर्षशतं दृढम् ॥१७॥
व्यंगवलीपलितघ्नं पीनसवैस्वर्यकासशोषघ्नम् ॥
रजनीक्षयेंबुनस्यं रसायनं दृष्टिजननं च ॥१८॥

षड्गुण वलि जारित सूतयोगः ।

मलकंचुकपरिमुक्तः सूतः
षड्गुणगंधकजारितसूतः ॥
निजसेवकजननूतनकल्पः ॥
सुरतविधौ दलितोत्तमतल्पः ॥१९॥

रससिंदूर योगः ।

सिंदूराख्यः सूतो वरया
प्रातर्जग्धो घृतमधुपरया ॥
वितरति तरुणिरूपमुदारं
वृद्धस्यापि विमोहति दारम् ॥२०॥

गंधक योगः ।

बलिरेको घृतमरिचनियुक्तः
पलितवलिघ्नः प्रातर्भुक्तः ॥

अभ्रक योगः ।

तद्वन्मारितमभ्रं सत्वं
किमपरमस्ति रसायनतत्वं ॥२१॥

इति चर्पटितः ॥

इतिश्री योगतरंगिणी संहितायां रसायनाधिकारो नाम
अष्टसप्ततितमस्तरंगः ॥ ७८ ॥
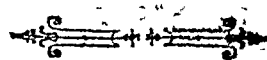
अथ एकोनाशीतितमस्तरंगः ॥ ७९ ॥

॥ अथ वाजीकरणम् ॥

अतिव्यवायशीलो वा न च वाजीक्रियारतः ॥
ध्वजभंगमवाप्नोति स शुक्रक्षयहेतुक ॥ १ ॥
प्रसाध्य सहज क्लैब्य मर्मच्छेदाच्च जायते ॥
साध्यानामवशिष्टानां कार्यो वाजीकरो विधिः ॥ २ ॥

वस्तांड योगः ।

पिप्पलीलवणोपेतौ वस्तांडौ क्षीरसर्पिषा ॥
साधितौ भक्षयेद्यस्तौ स गच्छेत्प्रमदाशतम् ॥ ३ ॥

वस्ताड सिद्ध तिल योग ।

वस्तांडसिद्धे पयसि भावितानसकृत्तिलान् ॥
यः खादेत्स पुमान्गच्छेत्स्त्रीणां शतमपूर्ववत् ॥ ४ ॥

विदारीकद योग ।

चूर्णं विदार्याः सुकृत स्वरसेनैव भावितम् ॥
शर्करामधुसर्पिर्भ्यां युक्त लीढ्वा पयः पिबेत् ॥ ५ ॥
एतेनाशीतिवर्षोपि युवेव परिहृष्यति ॥
विदारीकदचूर्ण तु घृतेन पयसा नरः ॥
उदुंबरसम खादेद्वृद्धोपि तरुणायते ॥ ६ ॥

गोक्षुरादि योग ।

गोक्षुरुकः क्षुरकः शतमूली
वानरिनागबलातिबला च ॥
चूर्णमिद मधुना निशि पेय
यस्य गृहे प्रमदाशतमस्ति ॥ ७ ॥

वाजीकर योगः ।

शतावरीनागबलाविदारिका-
त्रिकंटकैरामलकीफलान्वितैः ॥
विचूर्णितैः पंचभिरेकशः पृथक्
प्रकल्पितैर्वा घृतमाक्षिकप्लुतैः ॥ ८ ॥
इति प्रयोगाः षडिमे भिषग्वरै-
रुदीरिताः शर्करया समन्विताः ॥
नृणामनेकप्रमदोपसर्पिणां
प्रधानधातोरतिरेककारणाः ॥ ९ ॥

त्रिबला योगः ।

सघृतमधुबलात्रयस्य चूर्णं
समधुसिताघृतमुच्चटोद्भवं वा ॥
समधुकमथ माषमुद्गपर्ण्यो-
रमृतलतामलकत्रिकंटकं वा ॥१०॥
इति कथितमिदं हि पुष्पिताग्रा-
चरणचतुष्टयवेष्टनेन शिष्टैः ॥
अभिमतमसकृद्व्यवायभाजा-
मिह खलु योगचतुष्कमाकलय्य ॥११॥

त्रिकंटकादि योगः ।

पिबति यः पयसा कृतशोधन-
स्त्रिकटुकं मधुकं बहुपुत्रिकाम् ॥
अतिबलामथ नागबलां बला-
मिह हि नागबलः स पुमान्भवेत ॥१२॥

कामदेव वटी सौगतसिंहकृता ।

कुष्ठं कट्फलसैंधवं त्रिकटुकं मेथीयवानीद्वयं
वासा मोचरसं विदारिमुशली जातीफलं चित्रकम् ॥
जीरं चापरजीरकं गजकणा द्राक्षाभया वानरी
तालीसं त्रिसुगंधिकं त्रिलवणं वैभीनकं शृंगिका ॥१३॥

रंभा कंदशतावरीद्वयसटीयष्टीप्रियालामृता
जातीपत्रलवंगकेसरजलं गोक्षूरक शाल्मली ॥
धात्रीमाषपुनर्नवाश्च कनकं शृंगाटकं मस्तकी
मांसी चापि बलात्रयं च नलद भार्गीभ कर्णास्तिलाः ॥१४॥

कक्कोल करहाटक च विजया श्रीकच्छगाधा कुट-
मज्जापद्मकबीजभेदमखिलं चूर्णीकृतं स्निग्धकम् ॥
एतत्कर्षमितं पृथक् पृथगथो तुर्यांशतुल्यां जयां
तस्याद्वांशमित मृताभ्रकमहर्वंगं तदर्धे क्षिपेत् ॥१५॥

लोह मारितमेतदर्धममल सूत तदर्धं मृतं
सर्वेभ्यो द्विगुणा सिताथ मधुना चाज्येन संमिश्रयेत् ॥
कार्यास्तस्य पलप्रमाणवटिकाः खादेद्यथाग्नि प्रगे
नक्तं चापि जराविपत्तिशमनीमेकां च दुग्धं पिबेत् ॥१६॥

एषा सौगतसिद्धनामभिषजा लोके प्रकाशीकृता
हम्मीराय महीभुजे शतवधूसभोगभाजे भृशम् ॥
एषा वीर्यकरी महामयहरी क्षुद्दोघतेजस्करी
कांतिस्थैर्यमतिप्रकाशजननी चितामयध्वंसिनी ॥१७॥

तारुण्योद्धतकामिनीजनमहादर्पद्विपानां महा- ॥
सिंही सर्वमनोविनोदनकरी श्रीकामदेवाभिधा ॥१८॥

अथ महासुगंधि तैलम् ।

कर्पूरागुरुचोचबोलनलिकालाक्षासटीधातकी-
पुष्पैः सप्तदलैलवालुसुरसाशैलेयमांसीप्लवैः ॥
एलाकुंकुमरोचनादमनकश्रीवासजातीफलैः
कंकोलकमुकाजटामदमुराकौंतीलवंगामयैः ॥१९॥

वालोशीरमृणालजातिकुसुमस्थौणेयचंडानखै-
र्जातीपत्रकुलीरपद्मकयुतैः स्पृक्कान्वितैः पालिकैः ॥
लाक्षायोजनवल्लिलोध्रसलिलैस्तैलं विपाच्याढकं
तेनाभ्यज्य तनुं जरन्नपि भवेत्स्त्रीणां परं वल्लभः ॥२०॥

शुक्राढ्यो सुसिमाननल्पतनयः षंढोपि रत्युत्सुको
वंध्या गर्भवती भवेदपि तथा वृद्धापि सूते सुतम् ॥
कंडूस्वेदविचर्चिकामलहरं दौर्गंध्यकुष्ठापहं
दस्राभ्यां परिकीर्तितं बहुगुणं तैलं सुगंधाभिधम् ॥२१॥

कामदेव चूर्णम् ।

पलं गोक्षुरबीजस्य द्विपलं कपिकच्छुरा ॥
पलं नागबलाबीजं पलमेकं शतावरी ॥२२॥
विदारीकंदचूर्णस्य पलद्वयमथापरम् ॥
द्विपलं त्रपुसीबीजं वाजिगंधापलत्रयम् ॥२३॥
वासा च तालमूली च गुडूची रक्तचन्दनम् ॥
त्रिसुगंधिकणा धात्री लवंगं नागकेसरम् ॥२४॥
एतानि कर्षमात्राणि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥
बालशाल्मलिमूलं च भावयेदेकविंशतिः ॥२५॥
कुशकाशशिफाखर्जूशर्करासमयोजितम् ॥
दुष्टं शुक्रं वीर्यहानिं मूत्रकृच्छ्राणि यानि च ॥२६॥
मूत्राघातं मूत्रदोषं जयेच्छुक्रविवर्धनम् ॥
शतं गच्छति च स्त्रीणां हयतुल्यपराक्रमः ॥२७॥
वंध्या पुत्रमवाप्नोति भुक्त्वा चूर्णमिदं क्रमात् ॥
कामदेवाभिधं चूर्णं धन्वंतरिनिरूपितम् ॥॥२८॥

वाजीकर योगः-भैरवानंदी।

चत्वारो व्योमभागास्तदनु
निगदितं भागयुग्मं च वंगं ॥
भागैकं शंभुबीजं त्रितयमपि
मृतं तत्समा सिद्धमूली ॥२९॥
चातुर्जातं सजातीफलमरिच
कणानागरं देवपुष्प ॥
जातीपत्रं च भागद्वितयमथ
पृथक्सर्वमेकत्र चूर्ण्यम् ॥३०॥
सर्वस्यांशा सिता स्याद् घृतमधु
सहिता मोदकीकृत्य चैतत् ॥
खादेदग्निं समीक्ष्य प्रसभम-
भिनवानंदसंवर्द्धनाय ॥३१॥
योगो वाजीकराख्योऽयमिह
निगदितो भैरवानंदनाम्ना ॥
निःशेषव्याधिहंता दलित-
बहुवधूदामकंदर्पदर्पः ॥३२॥

अथ वीर्यस्तभनम्। रसप्रयोग १ स्तंभन।

कपित्थ बीजानि विचूर्णितानि
तनूनपात्पत्रवधूपयोभिः ॥
छायासु सम्यक्षु निशो विभाव्य
तैलं ततः पुष्करतो गृहीत्वा ॥३३॥
तेन मर्दितमिदं शिवबीजं
गुंजया परिमितं परितोल्य ॥
भक्षितं पलितनाशनंभवे-
द्वीर्यरोधकरमेव सत्यता ॥३४॥

स्त्रीद्रावण प्रयोगः ।

सदहिफेनविमर्दितपारदे
कनकबीजरसेन विमर्दिते ॥
समसिताविजये यदि भक्षिते
न रजनी न दिवा न दिवाकरः ॥३५॥

जातीफलादि स्तंभन वटी ।

जातीफलार्ककरहाटलवंगशुंठी-
कंकालकेसरकणाहरिचंदनं च ॥
एतत्समानमहिफेनकचंद्रभस्मं
सर्वैःसमं न सहते रतिबिंदुपातम् ॥३६॥
सर्वैः समांशा खलु शर्करा स्यात्
देया भिषग्भिरखिलार्थविद्भिः ॥
घृतेन साकं मधुना च सार्द्धं
कृत्वा वटीं टंकमितां च दद्यात् ॥३७॥

लोहादि स्तंभनवटी ।

लोहं ताम्राभ्रसूतं सुरकुसुमजलं चंद्रसंजातिपत्रं
पद्मं जातीफलैलासमरिचकरहाटाजमोदाहिफेनम् ॥
सामुद्री सिंधुशोषावपि घृतमधुना मर्दयित्वास्य टंकं
खादेदन्नेतिजीर्णे नियतमिह रतौ स्तंभनं रेतसः स्यात् ॥३८॥

स्तंभन योगः ।

खसफलशुंठीक्वाथः षोडशशेषेण गुडेन निशि पीतः ॥
कुरुते रते न पुंसो रेतःपतनं विनाम्लेन ॥३९॥

स्तंभनपाद लेपः ।

चटकांडं तु संगृह्य नवनीतेन पेषयेत् ॥
तेन प्रलिप्तपादस्य शुक्रस्तंभः प्रजायते ॥
यावन्न स्पृशते भूमिं तावत्स्यान्नात्र संशयः ॥४०॥

निष्पेपयेद्दशदशांतरतश्च तेषां
तोयैरपूपमुपकल्प्य विशुष्कमर्के ॥
तत्कर्दमैः प्रतिपुटं प्रविधाय दिग्ध-
मेव पुटे दधिशतं रसराज एषः ॥५८॥
रेतःस्तंभं विधत्ते वपुषि च
घनतामाग्रमांद्यं निहन्याद् ॥
यक्ष्माणं च क्षणेन क्षपयति
सहसा पौरुषं व्यातनोति ॥५९॥
उच्चैः शूलप्रमेहानिलकफगदहृ-
द्रोगपांडुप्रतिश्या ॥
कासश्वासोदराक्षिश्रवणमुख-
गदानाशु खादत्यवश्यम् ॥६०॥

रसराज रस वीर्यस्तंभकः सर्वरोगे ।

नागाहिफेनफलिनीविषमुष्टिविलेपिते ॥
वस्त्रे निबध्य विधिवद्रसगंधकखर्परी ॥६१॥
गौर्यां पचेल्लाघपुटैः शतेन विनियोजयेत् ॥
ऊर्ध्वाधो हेमबीजानि पेषयेद्दशतः क्रमात् ॥६२॥
तेषां तोयैः पुनः कृत्वा पूपिकामर्कशोषिताम् ॥
तत्कर्दमैः प्रतिपुटं दिग्धां कृत्वा पुटेच्छतम् ॥६३॥
रसराजो भवत्येष सर्वरोगहरो रसः ॥
जवुवर्णोनिकठिनो रूक्षो जीर्णबलिर्भवेत् ॥६४॥
जातीफललवंगाभ्यां रतौ वीर्यं निरोधयेत् ॥
पटुदीप्यशिवाविश्वैर्वैश्वानरविवर्द्धनः. ॥६५॥
क्षयघ्नस्तु तथाशोघ्नस्तक्रकृष्णाभयान्वितः ॥
ग्रहिण्यां जातिकोशेन रेके कुटजवारिणा ॥६६॥

प्रमेहे शाल्मलीद्रावैर्बद्धर्याक्षिगदे हितः ॥
सामे वापि निरामे वा समे वा विषमे ज्वरे ॥६७॥
देयो नताब्दकटुकावारिविश्वशृतेन वै ॥
रास्नांभसा वातरोगे पित्तरोगे सिना त्रुटिः ॥६८॥
अश्वत्वचाकफव्याधौ पांडुरोगेऽजमूत्रकैः ॥
अश्मर्यामश्मभेदेन कुष्ठेवल्गुजवायसैः ॥६९॥
भगंदरे गुडेनैव व्रणे पुरूवरायुतः ॥
मेदो रोगेंबुमधुना प्रदरेऽशोकवारिभिः ॥७०॥
शूले हिंगुकरंजाभ्यामरुचौ रुचकेन च ॥
छर्द्यां धात्रीरसेनैव क्षैण्ये पर्णेन दापयेत् ॥७१॥
द्राक्षारसेन शोषे च संज्ञानाशे किरातकैः ॥
मूर्च्छायां चंदनांभोभिर्विद्रधौ वरुणांबुना ॥
सर्वेष्वन्येषु रोगेषु तांबुलीपर्णयोगतः ॥७२॥

इत्यपरो रसराज रसः ॥

खसवल्कल प्रयोगःस्तंभने ।

काथं पिबेद्वा खसवल्कलानां
सर्पिर्जवानीगुडमिश्रितं यः ॥
लभेत दार्ढ्यं सुरतेषु भूयो
भवेद्रिरंसुः कलविंकवत्सः ॥७३॥

द्रावणो लेपः ।

सकर्पूरो रसः क्षौद्रजातीरसविमर्दितः ॥
लिंगलेपात्करोत्येष द्रावणं हरिणीदृशाम् ॥७४॥

वृद्धिकरो लेपः ।

लिंगनाडीषु कर्पूरं पातयित्वा विमर्दयेत् ॥
महिषीनवनीतेन तद्भवेत्खरलिंगवत् ॥७५॥

स्तंभकरी लेप वटी।

श्वेताश्वमारमूलत्वक्करहाटाजमोदकम् ॥
कृष्णधत्तूरबीजानि सम्यग् जातीफलं तथा ॥
एतेषां वारिपिष्टानां गुटिकामरिचोन्मिता ॥७६॥
एकया मणिलेपो हि नरमूत्रनिघृष्टया ॥
वीर्यं संस्तंभयत्येव सत्यमेतन्न संशयः ॥७७॥

स्तंभने तांत्रिक प्रयोग।

किरिनव्यवसापूर्णे कूर्मखर्परके धिया ॥
रक्तकार्पासिकावर्त्या दीपः शुक्रनिरोधकः ॥७८॥

अथ ध्वजवृद्धि स्थूली करणम्।

भल्लातकास्थिजवशूकमथाब्जपत्र-
मंतर्विदह्य मतिमान्सह सैंधवेन ॥
एतद्विरूढबृहतीफलतोयपिष्ट-
मालेपयेन्नह्रिप्रविद्धिमलीकृतेंगे ॥७९॥
स्थूलं महत्करतुरगमतुल्यमाशु
शेफ करोत्यभिमतं न हि संशयोऽत्र ॥८०॥

स्तनादि वृद्धिकर तैलं।

कासीसतुरगगंधारुचिरागजपिप्पलीविपक्केन ॥
तैलेन याति वृद्धिं स्तनकर्णवरांगलिंगानि ॥८१॥

क्षीण शुक्रलक्षणं।

दौर्बल्यं मुखशोषश्च पांडुत्वं सदनं श्रमः ॥
क्लैब्यं शुक्रविसर्गश्च क्षीणशुक्रस्य लक्षणं ॥८२॥

ध्वज स्थूल वृद्धिकर मलम।

शैवालसैंधवसरोरुहिणीदलानि ॥
भल्लातकानि च फलानि च कंटकार्याः ॥
हैयंगवीनमपि माहिषमश्वगंधा-
कंधे सुधीः प्रणिदधीत दिनानि सप्त ॥८३॥

तैरद्भुतैस्तदनु यन्महिषीमलेन
चोद्वर्त्य लिंगमुपलेप्य तमादरेण ॥
तस्याग्रतः खरतुरंगमतंगजानां
लिंगानि लाघवपदं परमं प्रयांति ॥८३॥

ध्वजवृद्धिकरणम् ।

उन्मत्तकस्वरसपेषितवाजिगंधा-
कंडोपगूढमहिषीनवनीतमादौ ॥
धार्यं फले वृषभवाहनवल्लभस्य-
निःशेषबीजरहिते कतिचिद्दिनानि ॥८४॥
उद्वर्तितं तदनु यन्महिषीपुरीषै-
र्धत्तूरकांबुनवनीतविलेपितं च ॥
तत्साधनं निधुवनप्रणयोद्धतानां
नारीवरांगदलनक्षमतां दधाति ॥८५॥

स्तनादि वृद्धिकर लेप ।

क्षौद्रः क्षुद्रानागरमरिचैः पिप्पलीसैंधवाभ्यां
प्रत्यक्पुष्पीयवतिलगुडश्वेतसिद्धार्थमाषैः ॥
श्लक्ष्णीभूतैर्भवति मिलितं वाजिगंधासनाथैः
श्रोणीश्रोत्रस्तनयुगशिरःशेफसोवृद्धिकारि ॥८६॥

इति राजमार्तंडात् ॥

गुह्य संकोचनी वटी ।

उत्पलानि सपद्मानि क्षीरेणाज्येन पेषयेत् ॥
गुटिकां सकृशां कृत्वा नारीयोनौ प्रवेशयेत् ॥
दशवारप्रसूतापि पुनर्भवति कन्यका ॥८७॥

संकोचनी वटी ।

भंगपोटलिका दत्ता प्रहर काममंदिरे ॥
नितंबिन्याः करोत्येषा कुमारीभगवद्भगम् ॥८८।

जातिफलाद्या वटी ।

जातीफलमहिफेनं दार्वी चेति त्रिभिः समा भंगा ॥
वटीछत्रसमासौ गुटिका संकोचनी योनेः ॥८९॥

इतिश्री योगतरंगिणी संहितायां वाजीकरणचिकित्साशुक्रस्तंभ
योनिसंकोचनाधिकारो नामैकोनाशीतितमस्तरंगः ॥ ७९ ॥

॥ अथ अशीतितमस्तरंगः ॥ ८० ॥

॥ अथ षड्ऋतुचर्याधिकारः ॥

वसंतः-मल्लीवल्लीसमूहे समुदितकुसुमा
मोदमत्तालिमाला-
मूर्छज्झंकारनादाकुलबकुलकुल
व्याकुलप्रोषितासु ॥
माकंदास्वादमाद्यन्मधुरपिककुला
लापहृद्यन्मनोज्ञः
प्राप्तः कांतो वसंतस्त्रिभुवनविजयी
प्राणबंधुः स्मरस्य ॥ १ ॥
क्षौद्रेणार्द्रं विधाय प्रकृतमभयजं
चूर्णमभ्यर्णसिद्ध्यै
प्राश्नीयादुष्णरश्मिप्रतपनसहनः
पंचकर्मैककर्ता ॥

कुर्यादार्यः शिवाग्रे भ्रमणमनुदिनं
तोयपानं तटिन्याः
शाल्यन्नं सिद्धमुद्गं कफमलहरणं
पथ्यमेतद्वसंते ॥ १ ॥

ग्रीष्मः–ग्रीष्मे गृह्णन्मयूखैरखिलरसमयं
चंडधामातिकामा-
न्नित्यं दाहोपशांत्यै प्रभवति च विधुः
खिन्नजन्मांशुजन्मा ॥
दंपत्योश्चंदनाद्यैरुपचितवपुषोः
शीतकल्पे सुतल्पे
कर्पूरांभः सुसिक्तव्यजनपरिचर्या
द्वायुरायुःस्वरूपः ॥ २ ॥
ज्येष्ठे श्रेष्ठं गुडाद्यं लवणमयजं
चूर्णमभ्यर्णसिद्ध्यै
संसिक्तं शीततोयैर्गृहमधिशयनं
स्वादुशीतांबुपानम् ॥
न व्यायामो न रौक्ष्यं प्रतपनसहनं
नैव पथ्यं कटूष्णं
न क्षारो नारनालो न दिननिधुवनं
स्वप्नभावः प्रशस्तः ॥ ४ ॥

वर्षा-गर्जद्भीमांबुवाहः क्षणरुचिरुचिरा
चुंबितव्यंचदूविहंगः
कामं कूजत्कलापी निशि तरुशिखर
याति खद्योतपोतः ॥
धारासंपातजातश्रवणसुखलस-
द्भेकभेरीनिनादः
प्रावृट्कालागमोऽयं कुसुमशरसुहृ-
द्भृंगसंगीतसंगी ॥ ५ ॥

पेयं कूपजलं ससैंधवयुता
भक्ष्याभया प्रावृषि
स्थेयं सौधतले सुखोष्णसलिलैः
स्नानं मुहुर्मर्दनम् ॥
स्नेहैर्गाति विधीयते निधुवनं
भोज्यं च योज्यं जनैः
साज्य सामिषमाषमीनमुषितं
साम्लं सदध्यादिकम् ॥ ६ ॥

शरद्- संशुष्यत्पंकसंघा रविकिरणरुचा
फुल्लराजीवराजी
राजत्कल्हारवल्लीकुसुमचयमिल-
द्वासनावासिताशा ॥
दुग्धांभोधेस्तरंगद्युतिरिव विलसत्
काशपुष्पप्रकाशा
चचच्चन्द्रांशुशोभा सकलजनमुदे
शारदी रीतिरास्ताम् ॥ ७ ॥

खादेच्चूर्णं शिवायाः शरदि समसितं
रेचनं रक्तमुक्तिस्तोयं
पेयं विशुद्धं रविशशिकिरणै
रुत्तमं वा सरोंबु ॥ ८ ॥

शाल्यन्नं सिद्धमुद्गं सघृतमनुपयः
पानकं शर्कराढ्यं
पथ्यं तिक्तं कषायं रतिरतिरहिता
सायमिन्दुर्हिताय ॥

हेमंतः-आलिंग्यालिंग्य गाढं सुखशयनगता
न्वल्लभान्भावयंत्यः
सोत्कंठं कंठदेशे पुनरपि सुरते
शक्तिमुद्भावयंति ॥ ९ ॥

हेमंते शीतभितिव्यथिततनुरिति
व्याजमुत्पाद्य सद्यः
प्रारब्धाकालवृष्टिध्वनितिमिरवह-
द्वातविद्युत्पयोदे ॥
पथ्याद्याः सूक्ष्मचूर्णं समगुणतुलितं
नागेरणात्र भक्ष्यं
शाल्यन्नं भुक्तमुष्णं बहुविधरचितं
माषमल्लार्द्रयोगः ॥१०॥

शिशिरः-सर्पिर्मांसं समीनं दधिलवणयुतं
दुग्धमुष्णं च पथ्यं
वातश्लेष्मानुसारे हिमवति सततं
सेवयेदग्निभानु ॥
मंदंमंदं दिनांते ज्वलति हुतवहे
पृष्ठतो वाग्रतो वा
धन्यो लोकस्तरुण्याः स्तनजघनपरी-
रंभसंभोगसंगी ॥११॥

उच्चैस्तूलीविधानं सुललितशयनं
क्वापि तैलं सुगंधं
तांबूलं तप्ततोयं भजति सुखवहं
वासरे शैशिरेस्मिन् ॥

· हेमंते यद्यदुक्तं हितमिह भिषजा
वासरे शैशिरेऽस्मि-
न्नत्तत्सर्वं हिताय प्रभवति करणा-
त्प्राणिनां प्राणभूतम् ॥१२॥
किंचाप्यन्यत्सतूलीशयनमभिनवा
प्राणरामाभिरामा
श्रेयस्याः श्लक्ष्णचूर्णं सुचिरमगधजा
युक्तमुक्तानुपानम् ॥१३॥

वैद्य योग्यता ।

कर्कशः कश्मलः स्तब्धः कुग्रामी स्वयमागतः ॥
पंच वैद्या न पूज्यंते धन्वन्तरिसमा यदि ॥१४॥
आतुरस्य पिता वैद्यः स्वस्थीभूतस्य बांधवः ॥
अतिस्वस्थतरे जाते न पिता न च बांधवः ॥१५॥
सद्वैद्यस्ते न चेऽसाध्यानारभते चिकित्सितुम् ॥
कुवैद्ये जीविनां सिद्धिः स्याद्घुणाक्षरवत्कचित् ॥१६॥
आयुर्हिताहित व्याधिर्निदानं शमनं तथा ॥
विद्यते यत्र धीमद्भिः स आयुर्वेद उच्यते ॥१७॥
ब्रह्मदक्षाश्विरुद्रेंद्रभूचन्द्रार्कानिलानलाः ॥
ऋषयः सौषधिग्रामा भूतसंघास्तु पांतु नः ॥१८॥

स्वार्थं चापि परार्थमादरतया दृष्ट्वा चतुःपंचषान्
ग्रथान्वैद्यकृतान्प्रसिद्धपथगान्भट्टैस्त्रिमल्लाभिधैः ॥
एषा योगतरंगिणीसमभिधा साध्वी कृता संहिता
संक्षिप्तासरसा सुखेन सुचिरं जीयादनेकाः समाः ॥१९॥

इतिश्री योगतरंगिणी संहितायां त्रिमल्लभट्टग्रथितायां षड्ऋतुचिकित्सा वैद्यप्रशसाग्रंथान्तमंगलं नाम अशीतितमस्तरंगः ॥ ८० ॥

॥ इति योग तरंगिणी संहिता समाप्ता ॥

रसशाला प्रिन्टिंग प्रेस-गोंडल, १०००, ५२, २८-११-५६